

व्यक्तित्व निर्माण एवं समाज निर्माण की आधारशिला

परिवार निर्माण



- व्यक्ति की उत्कृष्टता और समाज की समर्थता बढ़ाने के दोनों उद्देश्य एक ही प्रकार पूरे हो सकते हैं कि पारिवारिक वातावरण में सुव्यवस्था एवं सुसंस्कारिता का समावेश किया जाये।

- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

संकलन- ब्रह्मवर्चस शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार



व्यक्तित्व निर्माण एवं समाज निर्माण की आधारशिला परिवार निर्माण

वाङ्मय - ४८

(समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र से संकलित)



प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
गायत्री नगर, श्रीरामपुरम्-शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) पिन-249411



पुनरावृत्ति-सन् 2012

मूल्य-38/-

प्रथम संस्करण

संकलित-

वाङ्मय - ४८

समाज का मेरुदण्ड

सशक्त परिवार तंत्र से

प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट

शान्तिकुंज हरिद्वार

उत्तराखण्ड

Phone: 91-(0)1334-260602 / 261955

Website: www.awgp.org

E-mail: shantikunj@awgp.org

भूमिका

युग निर्माण योजना का मध्य बिन्दु परिवार निर्माण है। व्यक्ति और समाज निर्माण इसके ओर-छोर के दो सिरे हैं। परिवार निर्माण का कार्य हाथ में लेने वाले को अनिवार्य रूप से अपना सुधार करना पड़ेगा। गीली मिट्टी से वैसा ही खिलौना बन सकता है, जैसा कि साँचा हो। कुलपति को अपने गुण, कार्य, स्वभाव का ऐसा परिष्कार करना होता है जिसे घर के दूसरे सदस्य अपने अनुसरण में ला सकें। इस प्रकार परिवार निर्माण का कार्य आत्मनिर्माण का सबसे सरल तरीका है। इसी प्रकार परिवारों का सुधार कर समाज-सुधार एवं विश्व-कल्याण का उद्देश्य भी सहज ही पूरा हो सकता है। लोग अपने-अपने परिवारों को सुधार लें तो फिर समस्त विश्व के सुधार जाने में और क्या कठिनाई रह जाएगी?

हम अपने विचार परिवार को परिष्कृत बना लें तो यह एक सर्वोत्कृष्ट समाज सेवा मानी जाएगी। इस प्रकार की पुण्य परम्पराएँ चलती रहने से ही इस देश को स्वर्गीय सुख लूटने का अवसर मिला है। आगे भी यही हमारी स्वर्गीय सुख-समृद्धि का आधार होगा। परिवार ही देश, समाज तथा वैयक्तिक उन्नति के आधार होते हैं। उनके निर्माण की पुण्य प्रक्रिया फिर से प्रारंभ होनी ही चाहिये।

कर्मयोग की सर्वोत्तम साधना है-परिवार निर्माण। उससे आत्म निर्माण की प्रक्रिया भी सम्पन्न होती है और समाज निर्माण का क्रम भी अनायास चलता रहता है। मिशन की गरिमा को समझने वाले प्रत्येक नर-नारी को अपना समय, श्रम और मनोयोग जितना संभव हो, उतना परिवार निर्माण में लगाने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये। इस हेतु समर्पित किये गये अनुदान नकद रुपये की तरह हैं, जिनका प्रतिफल हाथों-हाथ मिलता है। अन्य पुण्यों का फल प्राप्त करने के लिये देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है, किन्तु यह शुभ कार्य ऐसा है, जिसका प्रतिफल दूसरों को, समाज को जितना मिलना है उससे अनेक गुना उन्हें मिलेगा, जो उसमें संलग्न होंगे, समय देंगे और श्रम करेंगे।

वाङ्मय ४८, पृ० २.४६

अनुक्रमणिका

१. परिवार का दर्शन (अवधारणा)५
२. परिवार को सफल बनाने के लिये सच्ची पारिवारिक भावना जरूरी७
३. परिवार परम्परा का विराट् उद्देश्य : व्यक्तित्व निर्माण१४
४. हमारा परिवार तथा भिन्न-भिन्न संबंध१९
५. परिवार को सुसंस्कृत बनाएँ३६
६. परिवार निर्माण के स्वर्णिम सूत्र४२
७. स्वच्छता एवं सुव्यवस्था परिवार भर को सिखाएँ६९
८. परिवार और हमारे कर्तव्य७४
९. परिवार निर्माण की धुरी-नारी७८
१०. पारिवारिक जीवन की समस्याएँ व समाधान८४
११. संयुक्त परिवार-सौभाग्य और समुन्नति का द्वार१०३
१२. परिवार निर्माण के लिए मानसिक पोषण भी आवश्यक है११३
१३. परिवारों का पुनर्निर्माण- एक अनिवार्य उपयोगी आवश्यकता१२१
१४. परिवार की आन्तरिक व्यवस्था१२५
१५. सुख का आधार सम्पन्नता नहीं आत्मीयता१३०
१६. साधारण गृहस्थी के खर्च विभाग१४०
१७. व्यक्ति, परिवार और समाज निर्माण के लिए त्रिविध आयोजन१४५

१. परिवार का दर्शन (अवधारणा)

यह सारी सृष्टि एक ही सत्ता का विस्तार है। कोई उसे ईश्वरीय परिवार कहता है, तो कोई अन्य उसे माया का परिवार कहता है, पर है यह विश्व ब्रह्माण्ड एक ही परिवार, यह बात सभी को स्वीकार है। सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने चाहा—“एकोऽहं बहुस्याम्” एक से अनेक बनूँ। आत्म विस्तार का यह संकल्प सृष्टि परिवार के रूप में सामने आया। यही है—ब्रह्म का विराट् रूप।

इस प्रकार परिवार के सम्बन्ध में दो बातें आधारभूत महत्व की हैं—पहली यह कि यह सम्पूर्ण सृष्टि एक ही परिवार है—‘वसुधैव कुटुम्बकम्।’

वा. ४८/१.५

भारतीय मनीषियों की एक विशेषता रही है, वह यह कि उनके प्रयोग केवल स्थूल पक्ष अथवा भौतिक मूल्यों तक ही सीमित नहीं रहते थे। वे सूक्ष्म क्षेत्रों में विश्व का संचालन करने वाले सार्वभौमिक तथ्यों की खोज करते थे और फिर उन्हें भौतिक विधानों में व्यवस्थित करते थे। परिवार निर्माण के मूल में भी किसी ऋषि के इसी तरह के सूक्ष्म अन्वेषण का रहस्य छुपा हुआ है।

ऋषियों ने जीवन में विभिन्न पहलुओं का एकीकरण करते हुए परिवार संस्था का एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया था, जो व्यावहारिक, सहज, सुलभ, सुखकर सिद्ध हुआ। परिवार संस्था ने मनुष्य के जीवन को आदिकाल से ऐसा मार्गदर्शन किया है, जैसा अन्य किसी भी संस्था ने नहीं किया होगा। इतिहास बदल गये, दुनिया का नक्शा बदल गया, समाज संस्थाओं में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए, लेकिन भारतीय समाज में परिवार संस्था आज भी ध्रुव बिन्दु की तरह जीवित है।

वा. ४८/१.६

परिवार निर्माण मूलतः एक दर्शन है, एक दार्शनिक संकल्प एवं प्रक्रिया है, पद्धति है। जिसका लक्ष्य है— आत्मविकास, आत्मीयता की परिधि विस्तृत हो रही है अथवा नहीं। परिवार निर्माण की समस्त प्रक्रियाओं की यह आधारभूत कसौटी होनी चाहिये कि उसके परिवार के प्रत्येक सदस्य का आत्मविकास हो रहा है या नहीं। प्रत्येक सदस्य की आत्मीयता की परिधि विस्तृत हो रही है अथवा नहीं। जहाँ चिंतन और आचरण में यह विकास परिलक्षित न हो पा रहा हो, वहाँ परिवार की व्यवस्था और रीति रिवाजों का

स्वरूप कोई भी क्यों न हो, परिवार निर्माण की प्रक्रिया वहाँ नहीं चल रही है- यही मानना चाहिये।

वा. ४८/१.६

नारी और पुरुष परिवार संस्था के दो मूल स्तंभ हैं। दोनों मानो नदी के दो तट हों, जिसके मध्य से परिवार के जीवन की धारा बहती है। वैदिक साहित्य में स्त्री पुरुष की उपमा पृथ्वी और द्युलोक से दी गई है। विवाह संस्कार के अवसर पर भी पुरुष स्त्री से कहता है- द्यौरहं पृथ्वी त्वम्। मैं द्यौ हूँ तू पृथ्वी। आकाश और धरती, पुरुष और प्रकृति के संयोग से ही विश्व परिवार का उदय हुआ, ठीक इसी तरह स्त्री और पुरुष के संयोग से परिवार संस्था का निर्माण होता है। भारतीय संस्कृति में परिवार संस्था की मूल भावना में स्थूल और नश्वर का संबंध विश्वव्यापी चिरंतन नित्य सूक्ष्म सत्ता के विधान से मिलाया गया है।

स्त्री पुरुष की अभेदता को व्यक्त करते हुए पुरुष स्त्री से कहता है- सामोऽहस्मि ऋकत्वम्, मैं यह हूँ, तू वह है। तू वह है, मैं यह हूँ। मैं साम हूँ तू ऋक् है। किसी वस्तु का व्यास अथवा परिधि परस्पर अभिन्न होते हैं। व्यास न हो तो परिधि का अस्तित्व नहीं, परिधि न हो तो व्यास कहाँ से आये? सृष्टि के मूलभूत हेतु में जिस तरह द्युलोक और पृथ्वी का स्थान है, उसी तरह परिवार संस्था में स्त्री-पुरुष का। कैसी विशाल कल्पना थी हमारे समाज शिल्पी मनीषी की पारिवारिक जीवन के अंतराल में।

यहाँ स्त्री-पुरुष दोनों को समान महत्व दिया गया है। लिंग भेद की दृष्टि से कोई श्रेष्ठ अथवा गौण नहीं है।

परिवार संस्था में जहाँ स्त्री-पुरुष की अभेदता का प्रतिपादन किया गया है वहाँ पूरे संस्थान को कर्तव्य धर्म की मर्यादाओं में बाँधकर उसे सभी भाँति अनुशासन, सेवा, त्याग, सहिष्णुताप्रिय बनाया जाता है और इन पारिवारिक मर्यादाओं पर ही समाज की सुव्यवस्था, शांति विकास निर्भर करता है। परिवार में माता-पिता, पुत्र, बहिन, भाई, पति-पत्नी, नातेदार-रिश्तेदार परस्पर कर्तव्य धर्म से बँधे हुए होते हैं। कर्तव्य की भावना मनुष्य में एक दूसरे के प्रति सेवा, सद्भावना, उत्सर्ग की सत्प्रवृत्तियाँ पैदा करती हैं।

भारतीय संस्कृति में परिवार में समस्त व्यवहार कर्तव्य भावना पर टिका हुआ है। सभी सदस्य एक दूसरे के लिये सहर्ष कष्ट सहन करते हैं, त्याग करते हैं। दूसरों के लिये अपने सुख और स्वार्थ का प्रसन्नता के साथ त्याग करते हैं। शास्त्रकारों की भाषा में यही स्वर्गीय जीवन है।

वा. ४८/१.७

२. परिवार को सफल बनाने के लिये सच्ची पारिवारिक भावना जरूरी

स्मरण रखा जाना चाहिए कि “आनन्द पाने से अधिक बाँटने में मिलता है।” यदि पति-पत्नी यह दृष्टिकोण अपनाएँ कि हमें अपने जीवन-साथी को सुखी व संतुष्ट रखना है तथा उसके लिए स्वयं असुविधाग्रस्त रहते हुए भी जीवन-साथी के लिए सुविधाएँ जुटाते रहना है तो पारिवारिक जीवन के प्रति आ गयी निराशा को भी दूर हटाया-भगाया जा सकता है। वस्तुतः पारिवारिक जीवन में कलह, असंतोष, खिन्नता और उदासी की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती भी इसीलिए हैं कि पति-पत्नी अपने साथी के लिए स्वयं की आकाक्षाओं को कुर्बान करने के स्थान पर उन्हें पूरा करने की माँग को प्रधानता देते हैं। वा. ४८/१.२

घर में जब प्रत्येक सदस्य दूसरे के लिए त्याग करने को तत्पर रहे, उसका अपना स्वार्थ दूसरों के स्वार्थ के साथ जुड़ा हो, एक की पीड़ा सबकी पीड़ा और एक की उन्नति सबकी उन्नति बनकर प्रकट हो, तब समझना चाहिए कि हम पारिवारिक जीवनयापन कर रहे हैं। दूसरे हमसे अच्छा खायें, पहनें, घर की सुख-सुविधा का उपभोग पहले दूसरे लोग करें, हमारी खुशी इसी में है। हमारा कर्तव्य तो अधिकाधिक त्याग और दूसरों की सुख-शांति और विकास में सहायक होना है। ‘मेरे रहते किसी को दुःख तकलीफ न हो’ आदि की उदार भावना ही पारिवारिक भावना को प्रकट करती है। वा. ४८/१.८

परिवार एक पवित्र तथा उपयोगी संस्था है। इसमें मानव की सर्वांगीण उन्नति का आधार सहयोग, सहायता और पारस्परिकता का भाव रहता है। यह भाव वह शक्ति है जिसके आधार पर मनुष्य आदि-जंगली स्थिति से उन्नति करता-करता आज की सभ्य स्थिति में पहुँचा है। सहयोग की भावना ही मनुष्य जाति की उन्नति का मूल कारण रही है। एकता, सामाजिकता, मैत्री आदि की सहयोगमूलक शक्ति ने आज मानव सभ्यता को उच्चता पर पहुँचा दिया है। सभ्यता के प्रारम्भिक युग में जिस व्यक्ति ने सहयोग की शक्ति समझकर उसका प्रकटीकरण तथा प्रवर्तन किया होगा, वह निश्चित ही एक बड़ा दार्शनिक तथा समाज हितैषी महापुरुष रहा होगा। सहयोग की शक्ति जानकर लोगों ने अपनी

स्थूल तथा सूक्ष्म विशेषताओं को मिलाकर संगठन की चेतना प्रबुद्ध की होगी और कन्धे-से-कन्धा, विचार से विचार, शक्ति से शक्ति तथा साधन से साधन मिलाकर एक तन-मन से काम किया होगा, जिसके फलस्वरूप सभ्यता तथा मानवीय समृद्धि के एक के बाद एक द्वार खुलते चले गये होंगे।

आज भी तो पूरा समाज सहयोग और पारस्परिकता के बल पर ही चल रहा है। यदि समाज से सहयोग की भावना नष्ट हो जाये तो तुरन्त ही चलते हुए कारखाने, होती हुई खेती और बढ़ती हुई योजनाएँ व विकास पाती हुई कलाएँ, शिल्प, साहित्य आदि की प्रगति रुक जाये और कुछ ही समय में समाज जड़ता से अभिभूत होकर नष्ट हो जाये। सहयोग मानव विशेषताओं में एक बड़ी विशेषता है, परिवार में जिसका होना नितान्त आवश्यक है। इसी पर परिवार बनता, चलता और उन्नति करता है।

वा. ४८/१.९

परिवार की प्रतिष्ठा हमारी प्रतिष्ठा, परिवार की उन्नति हमारी उन्नति, उसकी समृद्धि हमारी समृद्धि और उसकी लाभ-हानि हमारी लाभ-हानि है, ऐसी आत्म-भावना पारिवारिकता का विशेष लक्षण है। हम कोई ऐसा काम न करें, जिससे परिवार की प्रतिष्ठा पर आँच आये। किसी सदस्य पर कोई अवांछनीय प्रभाव पड़े, परिवार की उन्नति में अवरोध उत्पन्न हो अथवा उसकी समृद्धि एवं वृद्धि में प्रतिकूलता आये, ऐसा सतर्क भाव ही तो पारिवारिकता कहा जायेगा। जहाँ यह सब बातें पाई जायें, वहाँ समझना चाहिए कि लोग वास्तविक रूप में परिवार बनकर रह रहे हैं। जहाँ स्वार्थ, वैमनस्य, भाव-वैषम्य, अथवा सुख-दुःख में विषमता की गन्ध पाई जाये, वहाँ मानना होगा कि एक साथ अनेक के रहने पर भी वहाँ परिवार भावना नहीं है। लोग किसी कारणवश एक साथ रहे जा रहे हैं।

परिवार में जब तक सच्ची पारिवारिक भावना नहीं होती, उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता। आज सच्ची पारिवारिक भावना के अभाव में ही तो परिवार टूटते, बिखरते जा रहे हैं। उनकी शक्ति तथा दक्षता नष्ट होती जा रही है। उनकी वृद्धि-समृद्धि रुकती जा रही है और दिन-दिन उन्हें दीनता, दरिद्रता घेरती चली आ रही है। पारिवारिक भावना के अभाव में ही भाई-भाई लड़ते, बहिनें एक दूसरे से मन-मुटाव मानती, सास-बहू के बीच बनती नहीं और देवरानी-जेठानी एक दूसरे से डाह व ईर्ष्या करती हैं। जितने मुकदमे दूसरों से विवाद के नहीं चलते, उससे कई गुना मुकदमे पारिवारिक कलह के कारण दायर होते और चलते रहते हैं। चाचा-ताऊ, बाप-बेटों और बाबा-पोतों तक में संघर्ष होता रहता है। इस अनिष्ट का एकमात्र कारण यही है कि एक परिवार होते हुए भी वे सब पारिवारिक भावना से

रहित हैं। अपना भिन्न तथा पृथक् अस्तित्व मानते और तदनुरूप ही आचरण करते हैं। सच्ची पारिवारिक भावना का विकास तो तब ही होता है, जब परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना अस्तित्व पूरे परिवार में मिलाकर अभिन्न हो जाता है। इस आत्मविसर्जन के पुण्य से ही लोगों में सच्चे प्रेम और सच्ची आत्मीयता का विकास होता है। परिवारों से मिलकर समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। यदि परिवार संगठित, शक्ति-सम्पन्न और समृद्ध हो जायें तो समाज अपने आप ही बन जायेगा। उसके लिये अलग से कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता न रह जायेगी। परिवारों में सच्ची पारिवारिक भावना का अभाव किन कारणों से हुआ है या हो रहा है, यदि इस पर विचार करते हैं, तो यह विदित होता है कि आज का हमारा रहन-सहन और आचार-विचार इसके लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है।

वा. ४८/१.९

गृहस्थ-जीवन को पृथ्वी पर स्वर्ग कहा गया है। मनुष्य का युग-युग का अनुभव बतलाता है कि जो सुख पारिवारिक जीवन जीने में है वह किसी अन्य प्रकार की जीवन पद्धति में नहीं है। आश्रम व्यवस्था का प्रचलन करने वाले ऋषि-मुनियों ने गृहस्थ आश्रम को सबसे पुनीत एवं उपयोगी बताया है। जीवन की सारी व्यवस्था परिवार पर निर्भर रहती है। शेष तीन आश्रम भी गृहस्थ आश्रम पर निर्भर रहते आये हैं। पारिवारिक जीवन एक प्रकार की सुन्दर, स्वस्थ सहकारी जीवन पद्धति है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का सुख-दुःख एक-दूसरे से जुड़ा रहता है। सभी एक-दूसरे की सुख-सुविधा में सहायक होते हैं। गृहपति यदि परिवार चलाने के लिये श्रम करता है तो गृहस्वामिनी उसके लिये समय पर भोजन तथा आराम की व्यवस्था करती है।

पति जो कुछ कमा कर लाता है, पत्नी उसे सँजोती है; उसका इस प्रकार से अधिक से अधिक सदुपयोग करती है, जिससे कि घर की व्यवस्था रोचक, मनोरम एवं प्रसन्नतापूर्ण बनी रहे। माता-पिता बच्चों का पालन-पोषण करने में श्रम करते हैं तो बच्चे भी उन्हें अपनी किलकारियों तथा आज्ञानुवर्तिता से आनन्दित करते रहते हैं। बूढ़े हो जाने पर अपने माता-पिता के हाथ-पाँव बनकर उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते।

सम्मिलित परिवारों में अनेक की कमाई एक साथ घर आती और एक साथ भोजन व्यवस्था होने से घर-बार भरा-पूरा बना रहता है। एक सदस्य के बीमार हो जाने पर सारे सदस्य उसकी चिन्ता एवं सेवासुश्रूषा करते हैं, जिससे रोगी बड़ा ही आश्वस्त अनुभव करता और शीघ्र अच्छा हो जाता है। सदस्यों के

मिल-जुलकर रहने से परिवार की प्रतिष्ठा एवं शक्ति बढ़ती है, जिससे कोई दुष्ट अनायास उसे हानि पहुँचाने की हिम्मत नहीं कर पाता। इस प्रकार यदि परिवार संगठित, सुव्यवस्थित तथा सुमतिपूर्ण है तो उसकी तुलना में स्वर्ग का सुख भी तुच्छ आँका जायेगा।

वा. ४८/१.६७

पारिवारिकता अपनाने में ही मनुष्य का कल्याण है

पारिवारिकता एक दर्शन है, जो गृहस्थी के लिए ही नहीं, विरक्तों के लिए भी अपनाये जाने योग्य है। कुमार और कुमारी उसमें बँधे रहते हैं। स्त्री-बच्चों का परिवार भी परिवार की परिधि में गिना जा सकता है, किन्तु इस महान् संस्था को इतने ही लोगों तक सीमित कर दिया जाना सर्वथा आपत्तिजनक है। घर में स्वभावतः कई व्यक्ति रहते हैं और वे कई स्तर के होते हैं। वयोवृद्ध, कामकाजी, प्रौढ़, विद्यार्थी, किशोर, नन्हें-मुन्ने, वयस्क महिलाएँ, छोटे-बड़े बहिन-भाई, विधवाएँ, आश्रित सम्बन्धी आदि कई सम्बन्ध सूत्रों से जुड़े हुए कई व्यक्तियों को मिलाकर एक परिवार बनता है। इन सबकी मनःस्थिति एवं परिस्थिति एक दूसरे से भिन्न होती हैं। कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व भी भिन्न-भिन्न होते हैं। उनकी आवश्यकताएँ एवं अपेक्षाएँ भी एक दूसरे से भिन्न प्रकार की होती हैं। इस सबका तालमेल बिठाना, हर एक को उचित सुविधा देना और हर किसी में पनपने वाली सहज विशृंखलता का नियमन करना-देखने में छोटा, किन्तु समझने में बहुत बड़ा काम है। इसे ठीक तरह सम्पन्न करने के लिए कुशल प्रशासक की दूरदर्शिता, सन्त जैसी उदार निस्पृहता और माता जैसी ममता चाहिए। इन तीनों का जो समन्वय कर लेगा, वही सफल परिवार-संचालक सिद्ध हो सकेगा। अन्यथा कांजीहाउस में बन्द पशुओं को जिस तरह एक ग्वाला भूसा-पानी देता और उछल-कूद करने वालों को डण्डे से पीटता रहता है, उसी प्रकार कोई भी अनाड़ी, अविचारी कुटुम्ब को बढ़ाता और उसकी दुर्गति का भौंडा खेल खेलता रह सकता है।

वा. ४८/१.१४

परिवार की आवश्यकता और महत्ता

समाज निर्माण की बात सोचने वालों को यह तथ्य भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि समाज की स्वतंत्र सत्ता कुछ नहीं वह मात्र परिवारों का समुच्चय है। परिवार जैसे हों उनका मिला जुला स्वरूप ही समाज का भला बुरा स्तर बन कर सामने आ खड़ा होगा। सरकारी कर्मचारी और प्रजाजन दोनों ही परिवारों की फैक्टरियों में ढलते हैं। शिल्पी, व्यवसायी, श्रमिक, कलाकार, बुद्धिजीवी वर्ग के

अग्रणी समझे जाने वाले लोग भी अपनी कुशलता पर पारिवारिक दृष्टिकोण की छाप लादे रहते हैं। उदण्डताओं और अपराधों की वर्षा बादलों में से नहीं होती, यह सारी फसल परिवार के खेत-खलिहानों में से इकट्ठी होती है। आलसी, प्रमादी, सनकी, दुर्गुणी, छली, भीरू, व्यसनी प्रकृति के गये-गुजरे लोगों से अपना समाज भरा पड़ा है। यह टिड्डियों की तरह कहीं से उड़ते नहीं चले आये हैं। सारे परिवारों की कीचड़ में से इन कृमि-कीटकों की उत्पत्ति हुई है।

समाज निर्माण का स्वर-संगीत, वस्तुतः परिवार के स्वर-सप्तकों की झंकार करने में निनादित हो सकेगा। परिवार निर्माण हृदय एवं उसका क्षेत्र विस्तार धड़ है। व्यक्ति उसका सिर और समाज हाथ पैर का ढाँचा ढकोसला। यदि विश्व मानव की स्थिति सुधारनी है तो रुग्ण हृदय की चिकित्सा करनी होगी अन्यथा धड़कन, रक्तचाप, शोथ से लेकर गतिरोध होने पर मरण संकट की आशंका बनी ही रहेगी।

वा. ४८, / २.७७

जीवन निर्माणकारी साहित्य के एक लेखक ने एकाकी जीवन को एक अभिशाप बताते हुए लिखा है-“यह अभिशाप अपना भयंकर रूप तब धारण करता है, जब व्यक्ति जीवन यात्रा के बिलकुल मध्यवर्ती पड़ाव पर पहुँच जाता है। उस समय अनुभव होता है कि खाली घर का सूनापन किस कदर उबाऊ हो जाता है। घर में प्रवेश करते ही जब अन्दर से स्वागत करने वाली कोई आवाज नहीं होती तो व्यक्ति अपने को बाहरी दुनिया से निकलने पर, जहाँ अधिकांश सम्बन्ध स्वार्थी के सम्बन्ध होते हैं, अधिकांश रिश्ते केवल औपचारिक होते हैं और वातावरण में बनावटीपन भरा रहता है-ऐसी दुनिया से बाहर आने पर घर की खामोशी व्यक्ति को अपने अकेलेपन का अहसास कराती है। विशेषतः ऐसे व्यक्ति जिन्हें विवाह के बाद यह अकेलापन मिला है वे अनुभव करते हैं कि सूने घर में प्रवेश और पत्नी की मुस्कान के स्वागत का अनुभव करते हुए घर में प्रवेश करने में कितना भारी अन्तर होता है?”

पारिवारिक जीवन में, जीवन-साथी उस मित्र की आवश्यकता को पूरा करता है, जो पूर्णतया निष्पक्ष, निर्दोष और यथासम्भव सही परामर्श देता है। इसलिए कि परिवार में पति-पत्नी के लाभ व हित एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं, उन्हें दोनों का लाभ साथ-साथ दीखता है और वे परस्पर दूसरे पक्ष की भलाई में अपनी भलाई समझते हैं। केवल उत्तरदायित्वों के बोझ से खिन्न होकर पारिवारिक जीवन के प्रति निराश और उदास दृष्टिकोण अपना लिया जाय तो दुःखी व परेशान रहने के अलावा और कोई परिणाम नहीं निकलता।

वा. ४८ / १.१

सुसंस्कृत परिवार सर्वोत्तम मित्र-मंडली की भूमिका भी बखूबी निभाहता है। दुःख-सुख, उतार-चढ़ाव, व्यथा-विनोद में गहरी सहभागिता की प्रवृत्ति सुसंस्कृत परिवार को एक श्रेष्ठ मित्र-मंडली ही बनाये रखती है। उनमें पारस्परिक हितों का टकराव भी नहीं होता, क्योंकि सभी के हित एक ही होते हैं। बच्चों की मीठी बोली, तोतली बोली, माँ का प्राणशक्तिदायक वात्सल्य, भाई-बहनों का सौन्दर्य-उल्लास, पत्नी का प्रेमपूर्ण समर्पण, पारस्परिक घनिष्ठ सहयोग ये सब मित्र मंडली के सभी तत्वों का समुचित स्वरूप ही तो होता है। छोटे बच्चों का खेलना, बड़े बच्चों का पढ़ना, कहीं कढ़ाई-बुनाई, कहीं संगीत, कहीं अध्ययन, कहीं आगन्तुकों से शिष्ट, मधुर-कुशल वार्तालाप, अनुभवपूर्ण बातें, धर्मचर्चा और प्रेरक कहानियाँ, परिवार द्वारा मनोरंजन, उल्लास और प्रेरणा आदि के वे सभी कार्य अधिक उत्तम रीति से पूरे हो जाते हैं, जो एक श्रेष्ठ मित्र-मंडली में होते हैं। प्रगाढ़ आत्मीयता के भाव से युक्त सुसंस्कारवान परिवारों से हर विषय में जितना उत्तम एवं हितपरक परामर्श मिल सकता है, उतना अन्य मित्रों से कदाचित् ही मिल सके। परिवार से प्राप्त होने वाले इस प्रकार के साधन-सुविधा एवं समर्थन सहयोगपरक अनेक लाभ हैं, जिन्हें पाने के लिए मनुष्य परिवार बनाता है।

बच्चों के निर्माण में पिता का व्यक्तिगत आचरण बहुत महत्त्व रखता है। बच्चे सहज ही अनुकरणशील होते हैं, वे जैसा पिता को करते देखते हैं, वैसी ही सीख लेते हैं। अतः पिता को अपना रहन-सहन, आचार-विचार और स्वभाव उसके अनुकूल रखना चाहिए, जिस आदर्श में वह अपने बच्चों को ढालना चाहता है। यदि पिता अपने इस महान दायित्व को समझे और अपने को त्याग, प्रेम, परिश्रम, पुरुषार्थ, सदाचार के आदर्श के रूप में प्रस्तुत करे तो कोई कारण नहीं कि उसके बच्चे वैसे न बन जायें। जो पिता स्वार्थी, क्रोधी, कर्कश, और व्यसनी, विलासी होता है, वह न तो आदर का पात्र होता है और न उसके बच्चे ही अच्छे बन पाते हैं।

माता के व्यक्तिगत आचरण का प्रभाव कन्याओं पर विशेष रूप से पड़ता है। जो माताएँ अधिक साज-सज्जा, श्रृंगार, फैशन, पाउडर, लिपस्टिक और गहनों में रुचि रखती हैं और सास, ननद, देवरानी, जेठानी आदि से लड़ती-झगड़ती रहती हैं, उनकी कन्याएँ भी फैशनेबुल, छबीली और विलासप्रियता की शिकार बन जाती हैं और उनके स्वभाव में भी विवाद, असहयोग और कलह के अंकुर उग आते हैं। माता-पिता को चाहिए कि परिवार के सारे सदस्यों तथा व्यक्तियों से यथायोग्य प्रेम और आदर का व्यवहार करें सबके लिये त्याग तथा उदार भावना को प्रश्रय दें, अधिक से अधिक सादगी और शालीनता से रहें, इससे

उनके बच्चों पर पारिवारिकता के अनुकूल प्रतिक्रिया होगी। वे प्रेमभाव की मिठास और त्याग का महत्व समझेंगे।

अभिभावकों के व्यक्तिगत आचरण के साथ परिवार का वातावरण भी बच्चों और सदस्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। जिन घरों में दिन-रात लड़ाई-झगड़ा तथा आपा-धापी होती रहती है, उस परिवार के बच्चे और अन्य सदस्य परस्पर सहयोग का मूल्य नहीं समझ सकते। उनमें स्वार्थ और कलह की प्रमुखता हो जायेगी। चाचा-ताऊ आदि जो भी सदस्य एक परिवार में रहते हों, जो भी भाई-बहिन एक घर में रहते हों उन सबको अपना तथा अपने बच्चों से अधिक ख्याल भाई-बहन के बच्चों और उन खुद का रखना चाहिए। परिवारों में बच्चों के प्रति अपना-अपना भाव रखने से ही अधिकतर कलह के अंकुर उगते हैं। यदि सब बच्चों को अपना बच्चा और अपने को उनका सगा अभिभावक समझा जाये और वैसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाये तो कोई कारण नहीं कि सब समान रूप से सारे गुरुजनों का आदर न करें अथवा अनुशासन न मानें। सारे प्रौढ़ सभी बच्चों को अपने बच्चे और सारे बच्चे सभी गुरुजनों को अपना शुभचिन्तक और अभिभावक मानकर वैसा ही आचरण करने लगे, तो निश्चय ही परिवार में दृढ़ता और स्थिरता के साथ-साथ सुख-शांति की परिस्थितियाँ रहने लगे।

इसके साथ ही परिवार का वातावरण अधिक से अधिक पवित्र तथा शालीन रहना चाहिए। घरों में ऐसा साहित्य, ऐसे चित्र तथा ऐसे मनोरंजन को नहीं घुसने देना चाहिए जिससे बच्चों के स्वभाव अथवा आचरण पर अवांछनीय प्रभाव पड़े। घरों में गन्दी मजाक, तानाकशी और हल्का विनोद अथवा गाली-गलौज का वातावरण नहीं होना चाहिए। रूढ़िवादिता, कुरीतियाँ और कुप्रथाओं के बहिष्कार से बच्चों के निर्माण में बहुत कुछ सहायता मिलेगी। पारिवारिक रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास बच्चों पर इतना बुरा प्रभाव डालते हैं कि वे जीवन भर के लिये पढ़े-लिखे होने पर भी विचारों की स्वतन्त्रता तथा नवीनता से वंचित रह जाते हैं। यह विकृति उन्हें निश्चित रूप से पक्षपाती, दुराग्रही तथा स्वार्थी बना देती है।

इस प्रकार व्यक्तिगत आचरण, घरेलू वातावरण तथा विचार विकृति दूर कर परिवार का निर्माण कीजिये, आपके घरों से कलह, क्लेश तथा फूट-टूट की दूषित विकृति दूर हो जायेगी और उसके स्थान पर सच्ची पारिवारिकता, सहयोग, प्रेम तथा पारस्परिकता की भावना बढ़ेगी, जिससे परिवार के साथ समाज तथा देश का कल्याण होगा। वा. ४८/१.१८



3. परिवार परम्परा का विराट् उद्देश्य : व्यक्तित्व निर्माण

परिवार परम्परा को प्रोत्साहन करने में ऋषियों का मन्तव्य केवल इतना ही नहीं रहा कि व्यक्ति एक से बहुत होकर रहे। दुःख तकलीफ पड़ने पर उसका हाथ बँटाने वाला उसके साथ हो, व्यक्ति व्यवस्थित रूप में स्थाई होकर रहे और परिजनों के साथ अधिक उल्लासपूर्ण जीवनयापन करे। इस साधारण मन्तव्य के साथ उनका एक इससे कहीं ऊँचा मन्तव्य भी रहा है, वह यह-कि परिवार के माध्यम से मनुष्य आत्म-कल्याण की ओर भी अग्रसर हो। उसमें सामाजिकता, नागरिकता और सबसे बड़ी बात-विश्व मानवता का कल्याणकारी भाव जागे। वह अपने जैसे अन्य मनुष्यों के लिये त्याग, सहानुभूति सोहार्द्र एवं आत्मीयता का अभ्यस्त हो सके। मनुष्य की संकीर्णता दूर होकर उसकी आत्मा का व्यापक विकास हो, यही आत्म-कल्याण का राजमार्ग है, मनुष्य दूसरे का दुःख-दर्द समझकर उसके साथ सहानुभूति रख सके, उसकी सेवा-सुश्रूषा तथा सहायता करने को तत्पर रहे, यही आत्म-उन्नति के लक्षण हैं। पारिवारिक जीवन में इन आध्यात्मिक गुणों के विकास का पूरा-पूरा अवसर रहता है।

एक पिता जब वह बालक रहा होगा तब निश्चित ही आज की तुलना में अधिक संकीर्ण, अधिक स्वार्थी तथा अपने तक अधिक केन्द्रित रहा होगा। वह यही चाहता रहा होगा कि उसे सबसे अधिक और अच्छा खाने-पहनने को मिले, सबसे अधिक खर्च करने को मिले और सबसे अधिक सुख-सुविधा के साथ स्नेह-दुलार भी उसे ही मिले। अपनी इस स्वार्थ-भावना के वशीभूत वह दूसरों के हितों का ध्यान रखे बिना ही अपना हठ पूरा कराने का प्रयत्न करता रहा होगा। दूसरों के प्रति वह पूर्ण उदासीन रहा होगा। दूसरों के प्रति अनुदारता एवं कृपणता उसके स्वभाव के अंग रहे होंगे, किन्तु अनन्तर जब उसने विवाह किया होगा और उसकी एकान्तिक स्वार्थपरता एवं संकीर्णता में दरार पड़ गई होगी तो वह केवल अपने स्वार्थ के प्रति आग्रही न रहकर पत्नी की सुख-सुविधा, उसकी इच्छाओं एवं हँसी-खुशी के विषय में सोचने लगा होगा। एक चीज यदि अपने लिये लाता होगा तो एक पत्नी के लिये भी और इस प्रकार उसकी आत्मीयता की परिधि बढ़

गई होगी। उसका प्रेम, स्नेह एवं सहानुभूति अपने से बढ़कर दूसरे तक जा पहुँची होगी और वह अपने अतिरिक्त अपनी पत्नी का भी आत्मीय बन गया होगा।

वा. ४८/१.३

आज जब वह अनेक बच्चों का पिता बन गया है तो उसका सारा जीवन ही, उसके परिवार का हो गया है। उसका अपना कुछ नहीं रहा है। कहने के लिये उसका जो कुछ है उसके बच्चों का है। न वह पूर्ववत् स्वार्थी है, न संकीर्ण और न अनुदार। उसमें त्याग, संतोष, सहानुभूति, संवेदना तथा आत्मीयता के गुण अपनेआप विकसित हो गये हैं। उसकी संकुचित आत्मा अनेक तक निःस्वार्थ भाव से विस्तृत हो गई है। यह आत्मिक विकास कैसे हुआ-पारिवारिक जीवन अपनाने से। यदि उसने पारिवारिक जीवन न अपनाया होता और उत्तरदायित्व न समझा होता, तो न तो उसकी आत्मा का विस्तार पत्नी तक होता और न बच्चों तक फैलता। वह यथावत् स्वार्थी एवं संकीर्ण बना हुआ पशुओं की तरह जड़ एवं अविकासशील जीवन बिता रहा होता। त्याग, सहानुभूति, संवेदना, स्नेह तथा अन्यो से आत्मीयता का क्या सुख होता है इस अनुभव से सदा-सर्वथा अनभिज्ञ रहता। यह पवित्र पारिवारिक जीवन का ही प्रभाव है कि उसकी आत्मा के संकीर्ण बन्धन शिथिल हुए और विस्तार हो सका। इसी प्रकार पत्नी से परिवार, परिवार से परिजनों, परिजनों से पार्श्वजनों और पार्श्वजनों से गुरुजनों में फैलती हुई उसकी आत्मीयता विश्व तक जा पहुँचे तो सहज ही एक-एक कड़ी करके उसकी आत्मा के बन्धन निःशेष हो जायें और वह मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति अथवा मोक्ष की उपलब्धि कर ले। पारिवारिक जीवन एवं गृहस्थ आश्रम की व्यवस्था देने में ऋषियों का मुख्य उद्देश्य यही था-सांसारिक सुख-सुविधा तो स्वाभाविक एवं गौण थी।

वा. ४८/१.४

हम परिवार तो बड़े शौक से बसा लेते हैं, किन्तु उसका उचित निर्माण नहीं करते। वह अपने आप स्वतंत्र रूप से कुशकंटकों की भाँति जिधर चाहता बढ़ता और विकसित होता चला जाता है। यदि किसी चतुर माली की तरह हम अपने परिवार को एक सुन्दर वाटिका मान कर उचित पालन और निर्माण करें तो निःसन्देह उसका एक-एक सदस्य खुशनुमा फूल की तरह गुणों की सुगन्ध से भर कर खिल उठे, जिससे न केवल परिवार को ही बल्कि अन्य लोगों को भी सुख की प्राप्ति हो। परिवार का निर्माण बच्चों के निर्माण से प्रारम्भ होता है। बच्चों का समुचित निर्माण तभी सम्भव है, जब हमारे उतने ही बच्चे हों जितनों का ठीक से पालन और देख-रेख की जा सके, जिनको शिक्षित और सुयोग्य बनाने के लिये

हमारे पास साधन हों। परिस्थिति से परे अनावश्यक बच्चे पैदा करते जाने वाला गृहस्थ लाख प्रयत्न करने पर भी अपने परिवार का वांछित निर्माण नहीं कर सकता। जिस बोज़ को उठाया ही नहीं जा सकता उसको लक्ष्य तक नहीं ले जाया जा सकता। इसलिए परिवार-निर्माण का मुख्य आधार छोटा तथा नियोजित परिवार ही मानकर चलना चाहिए। बच्चों को केवल भोजन-वस्त्र दे देना और उनकी शिक्षा के लिये प्रबन्ध कर देने मात्र से उनका निर्माण नहीं हो सकता। स्कूलों में बच्चों को केवल पुस्तकीय शिक्षा ही मिल पाती है। आचरण की शिक्षा, गुण, कर्म तथा स्वभाव की शिक्षा जो उनके निर्माण के लिए अत्यावश्यक है, वह आज के शिक्षालयों में नहीं मिलती है।

वा. ४८/१.९

वातावरण का मनुष्य पर प्रभाव

यह सही है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है और मनःस्थिति के आधार पर परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, पर इसी तथ्य के साथ जुड़ी हुई सच्चाई यह भी है कि वातावरण का मनुष्य का व्यक्तित्व ढालने में बहुत बड़ा योगदान रहता है। जैसे वातावरण और सम्पर्क में रहने का अवसर मिलता है, सामान्य व्यक्ति उसी ढाँचे में ढलने लगता है। आदर्शों के प्रति आस्था सघन हो और अवांछनीयता को अस्वीकार करने का मनोबल हो तो बाहरी आकर्षणों और दबावों को निरस्त भी किया जा सकता है, किन्तु ऐसे मनस्वी कम ही होते हैं। अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करने की बात में जितनी सच्चाई है, उतनी इस बात में भी है कि सशक्त वातावरण अपने दबाव में अनेक को अपने साथ घसीटता ले चलता है। आँधी के साथ पत्ते, तिनके और धूलिकण जैसे हलके पदार्थ सहज ही उड़ने लगते हैं। आँधी जिस दिशा में भी चलती है इन हलके पदार्थों के साथ उड़ने की दिशा एवं गति भी प्रायः वैसी ही बन जाती है। वातावरण के सम्बन्ध में यही बात भली प्रकार कही जा सकती है। व्यक्तिगत प्रशिक्षण की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही इस बात की है कि पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण ऐसा बनाया जाय, जिसके प्रभाव से श्रेष्ठतासम्पन्न प्रतिभाएँ ढलने, उभरने लगें। बुरा वातावरण यदि मनुष्य को दुर्गति के गर्त में धकेल सकता है तो कोई कारण नहीं कि उसी अवलम्बन उत्कर्ष का पथ प्रशस्त न हो सके।

वा. ४८/१.७७

भारतीय समाज में परिवार-प्रणाली आदि-काल से अपना अस्तित्व बनाये चली आ रही है। हाँ, यह बात अवश्य है कि समय के परिवर्तन के साथ-साथ परिवार प्रणाली में भी अनेक परिवर्तन होते आये हैं। परिवार मानव जीवन

के विकास की प्रथम पाठशाला, संस्था, प्रणाली, प्रयोगशाला आदि कहा जाता है। बालक जब अपनी माँ के गर्भ में होता है, तभी से उसका परिवार में विकास-क्रम प्रारम्भ हो जाता है।

परिवार का निर्माण तभी हो सकता है, जब हम पहले व्यक्ति निर्माण करें। जब बालक का जन्म होता है, तभी से हमें उसके विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके पूर्व हमारे लिए भी यह आवश्यक है कि हम कोई ऐसा आचरण नहीं करें, जिससे बालक पर उसका गलत प्रभाव पड़े। जब बालक जन्म लेता है तो सबसे पहले उसके स्वास्थ्य संरक्षण और बलवर्द्धन की लाभप्रद प्रक्रियाएँ अपनाएँ। माँ का कर्तव्य होता है कि वह बच्चे को उचित समय पर दूध पिलाये, टट्टी करने पर उसकी सफाई आदि करे। आवश्यकतानुसार स्नान करवाये एवं उसे अधिक से अधिक आराम देने का प्रयत्न करे। जब बालक लगभग एक-डेढ़ वर्ष का हो जाता है तो उसमें अनुकरण करने की प्रवृत्ति का उदय होता है। यह समय उसके उचित विकास का होता है। इस समय परिवार के प्रत्येक सदस्य को ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसा व्यवहार अथवा आचरण न करें, जिसका बालक अनुकरण करे और आगे चलकर इसका उस पर गलत प्रभाव पड़े। धीरे-धीरे बालक अनुकरण की प्रवृत्ति से जब थोड़ा-थोड़ा बोलना, चलना सीख लेता है तो वह परिवार के लोगों को अपना समझने लगता है। माँ, बाप, भाई, बहिन आदि सम्बोधन करने लगता है। परिवार के सदस्यों के आचरणों की नकल करने लगता है। तरह-तरह के प्रश्न करने लगता है। यह समय विशेष सावधानी का है। ऐसे समय में बालक को उचित उत्तर व संस्कारों की शिक्षा देना चाहिए। इस समय उसकी उम्र लगभग ४-५ साल की हो सकती है। अतः परिवार में सुबह से रात तक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि बालक में सद्गुणों का विकास हो। हम घर को साफ-सुथरा रखने का प्रयास करें। घर के काम-काज अपने हाथों से करें। ऐसा करते देख बालक भी घर के कार्य करने में रुचि लेगा। परिवार के सदस्य प्रार्थना, पूजा, शिष्टाचार करें तो बालक में भी अनुकरण की प्रवृत्ति से इन गुणों का विकास हो सकता है।

अभिभावकों का कर्तव्य है कि अपने बच्चों के लालन-पालन का, खिलाने-पिलाने का, लाड़-प्यार का, सुख-सुविधा एवं पढ़ाई-लिखाई आदि का वह अवश्य ही ध्यान रखें। इतना ही नहीं वह अपने बच्चों को सभ्य और सद्गुणी बनाये। यदि बालक में अच्छी आदतों का, सत्प्रवृत्तियों का एवं सद्भावनाओं का समुचित विकास नहीं किया गया तो वह सदा दुःखी ही रहेगा। जो अभिभावक

अपने बच्चों को सचमुच सुखी बनाना चाहते हों, उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहते हों तो वे अपने बच्चों को सद्गुणी बनावें। परिवार में बालक जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अपना जीवन-निर्वाह करता है। अतः परिवार व अपने को सुखी बनाने के लिए सद्गुणों को अपनाना होगा। सद्गुणों की पूँजी पहले हमें अपने स्वभाव में संचित करनी होगी, पहले हमें सद्गुणी बनना होगा, तब हम बच्चों को सद्गुणी बना सकते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते तो बच्चों को अच्छा बनाने की बात सोचना व्यर्थ है।

वा. ४८/२.११२

परिवार के साथ आत्मनिर्माण का दुहरा लाभ

बाल्यावस्था में मनुष्य की संकीर्णता एवं स्वार्थपरता का अनगढ़ रूप स्पष्ट रहता है। वह यही चाहता है कि सबसे अच्छा और सबसे अधिक खाने, पहनने को उसी को मिले, खर्च करने को मनचाहे पैसे, अधिकाधिक सुख-सुविधाएँ और सबका स्नेह-दुलार उसे ही मिले। अपने इन निहित संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति के लिये हठ करने में उसे न तो संकोच होता है, न ही लज्जा आती है। दूसरों के प्रति उसमें उतनी ही दिलचस्पी होती है, जितने अंश तक वे उनके इन छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति में सहायक होते हैं। अन्य मामलों में उदासीनता का ही भाव उसमें होता है।

वा. ४८. २.७४

धीरे-धीरे उसका यह आत्मभाव विकसित होता है। त्याग, सहानुभूति, संवेदना और आत्मीयता से उत्पन्न सुख की भी उसे जानकारी होती है। भाई-बहिन, माता-पिता, पत्नी और बच्चों के प्रति उसका आत्मभाव फैलता जाता है। परिवार-जनों से बढ़ते-बढ़ते यह आत्मीयता पुरजनों, देशजनों तक बढ़ती हुई मानव-मात्र एवं प्राणिमात्र के प्रति विस्तृत होती जाती है। विस्तार का यह स्वरूप भौतिक आवश्यकताओं के क्षेत्र में नहीं देखा जाता। भौतिक आवश्यकताओं के स्वरूप में इतना अधिक अन्तर नहीं आता। इससे भी यही स्पष्ट होता है कि मनुष्य की संरचना में भौतिक आवश्यकताओं से कई गुना अधिक स्थान बौद्धिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं का है। उनकी पूर्ति के लिये वांछित गुणों एवं सामर्थ्य का प्रशिक्षण भी परिवार में ही होता है। परिवार-व्यवस्था आत्मोन्नति का एक प्राकृतिक, स्वाभाविक एवं सर्वसुलभ माध्यम है। बशर्ते उसके पीछे क्रियाशील दर्शन को समझा जाय। उसे स्वार्थों की खींचतान का कुरुक्षेत्र न बनने दिया जाय, अपितु उन सत्प्रवृत्तियों के विकास का साधना-स्थल बनाया जाये, जो जीवन को सार्थक बनाती हैं। वा. ४८/२.७५



४. हमारा परिवार तथा भिन्न-भिन्न सम्बन्ध

परिवार स्वयं ही एक आनन्द-उल्लास, संतोष, समाधान, निर्वाह, सहयोग जैसी सुखद सम्बेदनाओं एवं परिस्थितियों का भरापूरा गुल्दस्ता है। उस कल्पवृक्ष की छाया में सभी सदस्यों की अपने-अपने ढंग की विभूतियों से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है। पति-पत्नी गृहस्थ के बन्धनों में बँधकर एक प्रकार का रसास्वादन करते हैं। भाई-भाई दूसरी तरह का, बहिन-बहिन तीसरी तरह का, भाई-बहिन चौथी तरह का, माता-सन्तान पाँचवीं तरह का, अतिथि-आगन्तुक आठवीं तरह का, पड़ोसी-सम्बन्धी नौवीं तरह का। इन रसास्वादनों को कल्पना सम्बेदना की अनुभूति से घर के सभी सदस्यों की आपबीती से भी बढ़कर अन्य बीती की गुदगुदी का आनन्द मिलता रहता है। पोषण, सुरक्षा, सुविधा, सहायता, शिक्षा की अनेकानेक उपलब्धियाँ हर किसी को मिलती हैं। साथ ही अनुशासन, उत्तरदायित्व और शिष्टाचार के निर्वाह का ऐसा अभ्यास बनता है, जिसके बिना मनुष्य का स्तर वनमानुष से बढ़कर नहीं हो सकता। सभ्यता और संस्कृति का आरम्भिक और अमिट प्रभाव छोड़ने वाला विद्यालय परिवार का वातावरण ही है।

वा. ४८/१.१६

परिवार समाज की एक छोटी इकाई है। जिसके आधार पर मनुष्य स्वयं में सामाजिक गुणों का विकास करके दुर्लभ लाभ प्राप्त करता है। इस तथ्य के अनुसार एक महत्वपूर्ण सूत्र उभरकर सामने आता है, वह यह कि परिवार का अर्थ मात्र पति-पत्नी और एकाध बच्चा नहीं। सामाजिक जीवन का अभ्यास तदनुकूल गुणों का विकास उतने मात्र से सम्भव नहीं। उसके लिए तो भारतीय पद्धति के संयुक्त परिवार जिसमें पति-पत्नी एवं बच्चों के अतिरिक्त चाचा, ताऊ, बाबा, दादा, मौसी, बुआ, भतीजे, भतीजियाँ आदि अनेक तरह के अनेक स्तर के व्यक्तियों का समावेश रहता है। विदेशों में बड़े परिवारों को बेकार का झंझट समझकर उनकी उपेक्षा करके पति-पत्नी एवं बच्चों के छोटे परिवार बसाने के प्रयोग किए गये हैं। निश्चित रूप से ऐसे परिवारों की रचना व्यक्तिगत मौज-मजे को लक्ष्य करके की जाती है। उसमें भी वे कितनी सफलता पाते हैं यह बात भिन्न है, किन्तु ऐसा करके वे परिवार संस्था के मूल उद्देश्य से ही भटक जाते हैं।

वा. ४८/१.२

परिवार एक प्रकार का प्रजातन्त्र है, जिसमें मुखिया प्रेसीडेन्ट तथा परिवार के अन्य सज्जन प्रजा हैं। पिता-माता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, चाचा-चाची, भईया-भाभी, नौकर इत्यादि सभी का इसमें सहयोग है। यदि सभी अपने सम्बन्ध आदर्श बनाने का प्रयत्न करें, तो हमारे समस्त झगड़े क्षण मात्र में दूर हो सकते हैं।

वा. ४८/१.१८

क्या आप पिता हैं? यदि हैं तो आप पर उत्तरदायित्व का सबसे अधिक भार है। घर का प्रत्येक व्यक्ति आपसे पथप्रदर्शन की आशा करता है। संकट के समय सहायता, मानसिक क्लेश के समय सान्त्वना और शैथिल्य में प्रेरणात्मक उत्साह चाहता है। पिता बनना सबसे कठिन है क्योंकि इसमें छोटे-बड़ों सभी को इस प्रकार संतुष्ट रखना पड़ता है कि किसी से कटुता भी न हो और कार्य भी होता रहे। घर के सब झगड़े भी दूर होते चलें और किसी के मन में गाँठ भी न पड़े। परिवार के सब सदस्यों की आर्थिक आवश्यकताएँ भी पूर्ण होती रहें और कर्ज भी न हो, विवाह, उत्सव, यात्राएँ, दान भी यथाशक्ति दिये जाते रहें। आज के युग में पिता-पुत्र में जो कड़ुवाहट आ गयी है वह नितान्त संकुचित है। पुत्र अपने अधिकार माँगता है, किन्तु कर्तव्यों के प्रति मुख मोड़ता है। जमीन, जायदाद में हिस्सा माँगता है, किन्तु वृद्ध पिता के आत्म-सम्मान, स्वास्थ्य, उत्तरदायित्व, इच्छाओं पर कुठाराघात करता है। पुत्र ने परिवार के बन्धन शिथिल कर दिये हैं। घर-घर में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अनुशासन विरोध का कुचक्र फैल रहा है। यह प्रत्येक दृष्टि से निन्दनीय एवं त्याज्य है।

वा. ४८/१.१९

सन्तान के साथ हमारा व्यवहार

यह कभी न भूलें कि हमारे गृह में पदार्पण करने वाले हमारे आत्मस्वरूप ये बालक भावी नागरिक हैं, जो समाज और देश का निर्माण करने वाले हैं। ईश्वर की ओर से हमारा यह कर्तव्य है कि उनकी सुशिक्षा, शिष्टता तथा परिष्कार की समस्या में हम पर्याप्त दिलचस्पी लें। अपनी सन्तान को केवल जीवन के सुख और इच्छापूर्ति मात्र की ही शिक्षा न दो, वरन् उनको धार्मिक जीवन, सदाचार और कर्तव्यपालन, आध्यात्मिक जीवन की भी शिक्षा प्रदान करो। इस स्वार्थमय समय में ऐसे माता-पिता विशेषतः धनवानों में विरले ही मिलेंगे, जो संतान की शिक्षा के भार को, जो उनके ऊपर है, ठीक-ठीक परिमाण में तौल सकें।

जैसा वातावरण तुम्हारे घर का है, उसी साँचे में ढल कर तुम्हारी सन्तानों का मानसिक संस्थान, आदतें, सांस्कृतिक स्तर का निर्माण होगा। जबकि

तुम अपने भाइयों के प्रति दयालु, उदार और संयमी नहीं हो, तो अपनी सन्तान से क्या आशा करते हो कि वे तुम्हारे प्रति प्रेम दिखलाएँ। जब तुम अपना मन विषय-वासना, आमोद-प्रमोद तथा कुत्सित इच्छाओं से नहीं रोक सकते, तो भला वे क्यों न कामुक और इन्द्रिय लोलुप होंगे। यदि तुम माँस, मद्य या अन्य अभक्ष्य पदार्थों का उपयोग करते हो, तो वे भला किस प्रकार अपनी प्राकृतिक पवित्रता और दूध जैसी निष्कलंकता को दूर रख सकेंगे। यदि तुम अपनी अश्लील और निर्लज्ज आदतों, गन्दी गालियों, अशिष्ट व्यवहारों को नहीं छोड़ते, तो भला तुम्हारे बालक किस प्रकार गन्दी आदतें छोड़ सकेंगे।

तुम्हारे शब्द, व्यवहार, दैनिक कार्य, सोना, उठना-बैठना ऐसे साँचे हैं, जिनमें उनकी मुलायम प्रकृति और आदतें ढाली जाती हैं। वे तुम्हारी प्रत्येक सूक्ष्म बात देखते और उनका अनुकरण करते हैं। तुम उनके सामने एक मॉडल, एक नमूने या आदर्श हो, जिसके समीप वे पहुँच रहे हैं। इसलिए यह तुम्हीं पर निर्भर है कि तुम्हारी सन्तान मनुष्य हो या मनुष्याकृति वाले पशु। वा. ४८/१.२१

बड़ों के आदेश और उनका सम्मान

परिवार का संतुलन बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें वयोवृद्धों के प्रति क्या दृष्टिकोण है? सद्भाव सम्पन्न परिजनों में सभी एक दूसरे के सम्मान का ध्यान रखते हैं, किन्तु वयोवृद्धों के प्रति विशेष रूप से सम्मान व्यक्त करना आवश्यक है। उस सद्भाव के आधार पर ही उनके अनुभव एवं मार्गदर्शन का समुचित लाभ उठाया जा सकता है। वा. ४८/२.८५

बड़ों के प्रति सम्मान और अनुशासन होना पारिवारिक संगठन का आधार है। यह संगठन जहाँ प्रेम मूलक होता है, वहाँ पारस्परिक आत्मीयता होती है। एक सदस्य दूसरे सदस्य का ध्यान रखता है और अधिकार के स्थान पर कर्तव्य की प्रधानता रहती है। इस स्थिति में सुख और अमन के लिए बाह्य साधनों पर नितान्त अवलम्बित नहीं होना पड़ता। लोगों में पारस्परिक स्नेह और आत्मीयता हो तो कोई कारण नहीं कि घरेलू वातावरण कष्टप्रद लगे।

पारस्परिक अनुशासन सुख और व्यवस्था का मेरुदण्ड है, इसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि लोगों में बड़ों के प्रति आदर का भाव बना रहे। ऐसा होने से उस वातावरण में श्रद्धा और विश्वास में कमी नहीं होने पाती और वह संगठन सुदृढ़ स्थिति में कायम बना रहता है। जब तक यह संगठन कायम बना रहता है तब तक धन-धान्य की भी कमी नहीं

रहती और बाहरी लोगों के आक्रमण भी सफल नहीं होते। इसलिए इस भावना को पवित्र दैवी तत्व माना गया है। पितरों को पूजने की प्रथा बड़ों के प्रति आस्था का ही चिह्न है।

वा. ४८/२.८७

परिजनों के सुधार की पूर्ण प्रक्रिया

माता-पिता का दायित्व

अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन की शिक्षा अर्जुन ने तब दी थी, जब वह अपनी माता सुभद्रा के गर्भ में था। प्रत्येक बालक अभिमन्यु की परिस्थिति में होता है, उसे जो कुछ सिखाया जाता है, वह हम अर्जुन की तरह अपनी वाणी, क्रिया द्वारा उसे सिखा सकते हैं। रानी मदालसा ने अपने बच्चों को गर्भ में ही ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देकर ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न किया था। जब उसके पति ने एक बालक राजकाज के उपयुक्त बनाने का अनुरोध किया तो मदालसा ने उन्हीं गुणों का एक तेजस्वी बालक उत्पन्न कर दिया। हर माता की स्थिति मदालसा की-सी होती है। यदि वह अपने गुण, कर्म, स्वभाव में आवश्यक सुधार कर ले तो वैसे ही गुणवान् बालक को जन्म दे सकती है, जैसा कि वह चाहे। ऊसर खेत और सड़े बीज के संयोग से जैसे बेतुके अविकसित पौधे पैदा हो सकते हैं, आज वैसे ही बच्चे हमारे घरों में जन्मते हैं। गुलाब के फूल बढ़िया खेत में अच्छे माली के पुरुषार्थ से उगाये जाते हैं, पर कँटीली झाड़ियाँ चाहे जहाँ, चाहे जब उपज पड़ती हैं। अच्छी संतान सुसंस्कारी माता-पिता ही प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न कर सकते हैं, किन्तु कुसंस्कारी बालक हर कोई फूहड़ स्त्री-पुरुष उगलते रह सकते हैं। अच्छी सद्गुणी संतान की आकांक्षा गुलाब की फसल उगाने की तरह है, जिसके लिए माँ-बाप को काफी पहले अपने आपको संस्कारवान् बनाने के लिए तत्पर होना पड़ता है। यदि यह कार्य हमें कठिन लगता हो तो संस्कारवान् संतान की आकांक्षा भी छोड़ देनी चाहिए और जैसे भी उद्दंड, दुर्गुणी, कुसंस्कारी, दुर्मति बच्चे जन्में उन्हें अपनी करनी का फल मानकर संतोष कर लेना चाहिए।

भावनात्मक एकरूपता

इस युग में पारिवारिक सम्बन्धों में जो कड़वाहट आ गई है, वह मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही है। स्वार्थपरता आसुरी प्रवृत्ति है जो छीना-झपटी, विग्रह और कलह पैदा करती है। सद्भाव

दैवीय प्रवृत्ति है। उससे प्रभावित परिवार का हर सदस्य एक दूसरे को देवताओं की तरह कुछ न कुछ देना ही चाहता है। इस मार्ग पर चलकर सभी सुख एवं सम्मान पाते हैं, वैसे-वैसे पिता और पुत्र, पिता और पुत्री के सम्बन्ध बड़े कोमल, मधुर और सात्विक होते हैं। इस अध्यात्मिक सम्बन्ध का सहृदयतापूर्वक पालन करने वाले व्यक्ति देव-श्रेणी में आते हैं। उनकी मान और प्रतिष्ठा होनी ही चाहिये।

व्यक्ति का भावनात्मक प्रशिक्षण माता करती है। उसके रक्त, माँस और ओजस् से बालक का निर्माण होता है। कितने कष्ट सहती है वह बेटे के लिए। स्वयं गीले बिस्तर में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाते रहने की कष्टसाध्य क्रिया पूरी करने की हिम्मत भला है किसी में? माता का हृदय दया-पवित्रता से ओत-प्रोत है, उसे जलाओ तो भी दया की ही सुगन्ध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है। ऐसी दया और ममत्व की मूर्ति माता के प्रति हार्दिक सम्मान का भाव रखना कौन अनुचित कहेगा?

इसी क्रम में राम और भरत, गोरा और बादल के आदर्श भ्रातृ-प्रेम को फिर से पुनर्जीवित करना है। इससे हमारी शक्ति हमारी सद्भावनाएँ जाग्रत होंगी। हमारा साहस बढ़ेगा और पुरुषार्थ पनपेगा। स्नेहमयी बहिन, उदारता की मूर्ति भावजों को भी उसी तरह सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये, जिस तरह माता के प्रति अपनी शालीनतापूर्ण भावनाएँ हों। घर का वातावरण कुछ इस तरह का शील-संयुक्त, हँसमुख और उदार बने, जिससे सारा परिवार हरा-भरा नजर आए। इसके लिए धन आदि उपकरणों की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी अपने सम्बन्धियों के प्रति कर्तव्य और सेवा भावना की। परिवार में सौमनस्य हो तो वहाँ न तो सुख की कमी रहेगी, न शांति की। उस घर में आह्लाद फूट पड़ रहा होगा, जहाँ सबके दिल मिले होंगे।

वा. ४८/२.१५

परिवार के सम्बन्धों की चर्चा उठते ही अभिभावकों एवं सन्तान का स्मरण अनायास ही हो जाता है। यह हर छोटे-बड़े परिवार के अनिवार्य घटक हैं। माता-पिता अथवा पुत्री-पुत्र के रूप में संसार के हर व्यक्ति को रहना ही पड़ता है। उनके परस्पर एक दूसरे के प्रति कर्तव्यों के बारे में बहुत कुछ कहा जाता रहा है। माता-पिता के संतान के प्रति तथा संतान के माता-पिता के प्रति कर्तव्यों की सूची बहुत विशद् है। उनका पालन करने वालों को लौकिक यश एवं समृद्धि तथा पारलौकिक पुण्य एवं सद्गति प्राप्त होने की बात कही जाती है। विवेक इस कथन को अलंकारपूर्ण तो मान सकता है, किन्तु निराधार नहीं।

सभी उक्तियों की गरिमा को सांसारिक, स्वार्थपरक दृष्टिकोण से नहीं नापा, आँका जा सकता है। सूक्ष्म संवेदनाओं को भुलाकर यदि स्थूल दलीलों से इन सम्बन्धों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया जाय तो वे मात्र मखौल बनकर रह जावेंगे। उदाहरण के लिए 'माँ' के सम्बन्ध को लें। भारतीय संस्कृति में 'माँ' को सर्वोच्च सम्मान एवं गौरव दिया गया है। उसके द्वारा बालक को गर्भ में रखने, दूध पिलाने, पालने-पोसने जैसी अनेक भाव भरी उक्तियाँ प्रचलित हैं। उसके इस ऋण से उद्गृह्य होने की बात कही जाती है। सन्तान उसके अनुदानों की कल्पना मात्र से पुलकित, रोमांचित हो उठती है। माँ तो सन्तान की कल्पना के आधार पर ही प्रसव जैसे मर्मन्तक पीड़ा पहुँचाने वाले प्रकरण को भूल जाती है। यह संवेदनाएँ उस आत्मिक सुख-संतोष की अनुभूति कराती हैं, जिनके ऊपर संसार का बड़े से बड़ा सुख-वैभव न्योछावर किया जाना भी सामान्य सी बात लगती है।

वा. ४८/२.८१

पिता-पुत्र के सम्बन्ध संसार में सबसे घनिष्ठ होते हैं और कोमल भी। इतने घनिष्ठ कि पुत्र पिता की आत्मा का अंश ही नहीं, उसका प्रतिबिम्ब होता है। पुत्र के गुण, कर्म, स्वभाव देखकर पिता के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुमान किया जा सकता है और पिता के देख लेने के बाद पुत्र के देखने की ही जरूरत हो, ऐसा नहीं। पुत्र अधिकांशतः पिता का सर्वतो उत्तराधिकारी होता है। पिता-पुत्र की यह समानता उनकी घनिष्टता का ही प्रमाण है। यह सम्बन्ध कोमल भी कम नहीं होता। किसी ओर से प्रमाद हो जाने से यह टूट भी जल्दी जाते हैं। अनेक बार तो पिता-पुत्र के सम्बन्ध जब एक बार टूट जाते हैं, तब जीवन भर नहीं जुड़ते। बाहर से वे भले ही पास-पास रहते रहें, एक दूसरे के प्रति अपना कर्तव्य करते रहें, किन्तु अन्तर् में वह एकता नहीं रहती, जो पिता-पुत्र के सम्बन्धों की पवित्र शोभा है। इस सम्बन्ध को यथावत् तथा यथायोग्य बनाए रखने के लिए दोनों ओर से सतर्क और सावधान रहना चाहिये। केवल रक्त अथवा जन्म पर ही निर्भर रहने से प्रमाद हो जाने का डर रहता है।

आज पिता-पुत्र के बीच सम्बन्धों में वह सामीप्य और स्नेह, श्रद्धा कम देखने को मिलती है, जिसकी आशा की जाती है और जिसे होना भी चाहिये। यह अशोभनीय तथा अहितकर है। ऐसा नहीं होना चाहिये। पिता-पुत्र की इस कमी से परिवार का विकास रुक जाता है। आर्थिक पतन हो जाता है। प्रतिष्ठा जाती रहती है। लोग हँसते हैं। परिवार का भावी उत्तराधिकारी टूटकर अलग हो जाये तो पिता के बूढ़े होने पर उस धुरी को कौन धारण करेगा?

कौटुम्बिक कार-व्यापार को कौन सँभालेगा ? पिता-पुत्र में अन्तर होते ही लोग बीच में आकर स्थान बनाने का प्रयत्न करते हैं। दोनों को अलग-अलग पाकर लाभ उठाने और अपना हस्तक्षेप करने के लिये प्रयत्नशील होने लगते हैं। तरह-तरह के कारण गढ़ कर जनश्रुतियाँ बनाते, अफवाहें फैलाते और उपहास उड़ते हैं। पिता को दृढ़ रहने और पुत्र को उत्तराधिकार माँगने के लिये उकसाते, सहायक बनते, परामर्श देते और न्यायालय तक ले जाते हैं। ऐसी दुष्टतायें समाज में कम नहीं चल रही हैं। इसलिए प्रत्येक सद्गृहस्थ को अत्यधिक सावधान रहना चाहिये। यहाँ तक कि पिता-पुत्र ही नहीं, परिवार के किन्हीं भी सदस्यों में फूट न पड़े। इसके लिये कोई भी त्याग करना पड़े, करने को तैयार रहना चाहिये। सहनशीलता तो एक दैवी गुण है, उसे तो ग्रहण करना ही चाहिये।

इस सम्बन्ध की रक्षा में पहला कर्तव्य पिता का है। पुत्र के अस्तित्व में आने से पूर्व ही पिता प्रौढ़, पूर्ण और योग्य हो चुका होता है। पुत्र उसके सामने जन्मता और उसकी गोद में खेलता, देख-रेख और निर्देश में पलता, बढ़ता और जवान होता है। इस बीच में सोलह-सत्रह साल की इतनी पर्याप्त अवधि होती है कि पुत्र को इच्छानुसार ढाला जा सकता है। यदि उसके संस्कार पुत्रोचित बना दिए जाएँ तो कोई कारण नहीं कि पुत्र जीवन भर पिता का आज्ञाकारी एवं अनुगत न बना रहे। तब तक उसका स्वभाव और संस्कार इतने गहरे हो सकते हैं कि बाहर का कोई भी प्रतिकूल प्रभाव उनको बदल सकना तो दूर हिला तक नहीं सकता, किन्तु खेद है कि लोग पिता तो आसानी से बन जाते हैं, किन्तु पुत्र को पुत्र बनाने का प्रयत्न नहीं करते। वे रक्त के नैसर्गिक सम्बन्ध के बलबूते बेखबर पड़े रहते और उसका निर्माण करना आवश्यक नहीं समझते। विधिवत् निर्माण के अभाव में वे जंगली झाड़ी की तरह जिधर चाहते बढ़ते रहते हैं, सँभाली (देख-भाल की हुई) पौध की तरह सुव्यवस्थित नहीं हो पाते।

वा. ४८/२.८२

पुत्र पिता से क्या-क्या सीखता है ?

पिता-पुत्र का सम्बन्ध बड़ा पवित्र है। पिता को पुत्र के मनोविकारों की अच्छी जानकारी होती है। उसका पुत्र के साथ तीन प्रकार का सम्बन्ध होता है—(१) पथप्रदर्शक का, (२) तत्त्व चिन्तक का, (३) मित्र का।

बुद्धिमान तथा सुशील पिता से जितना हम सीख सकते हैं, उतना सैकड़ों शिक्षकों से नहीं। पिता सबसे बढ़कर हितैषी-शिक्षक है, जिसके पाठ हम

न केवल मुख से, वरन् उसके कार्यकलाप, आचार-व्यवहार, चरित्र, नैतिकता सबसे ग्रहण करते हैं। उसके धैर्य, आत्मनिग्रह, कोमल स्वभाव, सम्भावनाओं की तीव्रता, शिष्टता, पवित्रता और धर्म परायणता आदि गुणों का स्थायी प्रभाव पुत्र पर प्रतिपल पड़ता है।

वा. ४८/१.१९

बनने को तो कोई भी पिता बन जाता है, किन्तु यह उत्तरदायित्व कम गम्भीर नहीं है। सन्तान पैदा करने का अर्थ है—समाज में एक नया नागरिक बनाना। यदि वह नागरिक योग्य हुआ तो समाज का हित करेगा, अयोग्य हुआ तो हानि पहुँचायेगा। उसके द्वारा पारिवारिक अशांति के विषय में तो कहा ही क्या जाये। एक अयोग्य संतान परिवार की अतीतकालिन प्रतिष्ठा ही नहीं गिरा देता, भविष्य भी खराब कर देता है। घर में फूट डाल देना, आर्थिक दशा बिगाड़ देना तो उसके लिए साधारण सी बात होती है। ऐसी ही अयोग्य सन्तानों में पिता-पुत्र के बीच नहीं बनती और वे एक-दूसरे के विरोधी तक बन जाते हैं।

पुत्र को पिता का प्रतिबिम्ब बतलाया गया है। जैसा पिता होगा, पुत्र भी बहुत कुछ वैसा ही होगा। पिता के रहन-सहन और आचार-विचार का पूरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। इसलिए पुत्र को सुशील और योग्य बनाने के लिए पिता को स्वयं भी वैसा ही बनना पड़ेगा। व्यसनी, दुर्गुणी, क्रोधी, अनुदार अथवा संकीर्ण स्वभाव वाले पिता यदि यह चाहें कि उनको सुशील, सभ्य और विनम्र सन्तान मिल जाये, यह सम्भव नहीं। उन्हें अपनी ही तरह की सन्तान पाने और वह सब व्यवहार सहने के लिए तैयार रहना चाहिये, जैसा कि वे दूसरों से करते आ रहे हैं। पिता-पुत्र का जनक ही नहीं, उसका पथ-प्रदर्शक और मित्र भी है। जो पिता अपने पुत्र का ठीक-ठीक पथ-प्रदर्शन करते और मित्र की तरह व्यवहार करते हैं, उनके बीच कभी विरोध नहीं होता।

पुत्र को अपने स्नेही और स्पष्ट पिता के प्रति बड़ी श्रद्धा होती है। वे उनकी तरफ इतना आकर्षित रहते हैं कि पिता के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। बहुत बार तो अपने गुणों के कारण पिता पुत्र को वश में करने में माँ को भी पीछे कर दिया करता है। अनेक परिवार ऐसे ढूँढ़े जा सकते हैं, जिनमें बच्चे पिता को ज्यादा चाहते और अधिक देर उन्हीं के पास रहना पसन्द करते हैं, जितनी देर पिता घर में रहता है, वे उसे छोड़कर कहीं जाना ही पसन्द नहीं करते। वे माँ की अपेक्षा पिता के साथ खाना-पीना, घूमना-फिरना और सोना ज्यादा पसन्द करते हैं। माँ के पास सोते रहने पर भी पिता की आहट पाकर

उसके पास से उठ जाते हैं। बच्चों का स्वाभाविक आकर्षण होता तो माँ की तरफ ही है, किन्तु प्रेम की प्रबलता से वे पिता की ओर खिंच जाते हैं। सच बात तो यह है कि भावनात्मक संतुष्टि अन्य सभी आकर्षणों को पीछे छोड़ देती है। जिस परिवार में वह उपलब्ध हो, उस परिवार के लोग क्या छोटे, क्या बड़े, बाहर तरह-तरह की संगति में भटकते नहीं हैं।

देश, विदेश के किशोरों का सर्वेक्षण करने में यह तथ्य उभर कर सामने आये हैं कि जो बालक-बालिकायें, अभिभावकों से भावनात्मक संतुष्टि पाते हैं, वे संगी-साथियों, घूमने-फिरने और खेल-कूद के आकर्षण छोड़ कर भी उन्हीं के साथ अधिक से अधिक समय बिताना पसन्द करते हैं। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार के विद्रोह, अवज्ञा जैसे प्रसंग खड़े होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह सोचना गलत है कि आज के बच्चे अनुशासन में रहना पसन्द नहीं करते। अनुशासन आतंक से नहीं, आत्मीयता से स्थापित होता है। सर्वेक्षण से स्पष्ट हुआ है कि बालक ढीले-पोले माता-पिता को नहीं, व्यवस्थित एवं अनुशासनप्रिय अभिभावकों को अधिक पसन्द करते हैं। हाँ उसका रूप भावनात्मक हो-आतंकपरक नहीं।

वा. ४८/२.८३

भाई-भाई, भाई-बहिन

महत्त्वपूर्ण यह सम्बोधन नहीं, उनमें सन्निहिन भाव हैं। भाव हीन होने पर रक्त सम्बन्धी भाईयों व भाई-बहिन को भी किसी प्रकार औपचारिकता तक निभाना कठिन हो जाता है। और यदि वह भाव जग जाता है तो रक्त और वंश तो क्या यह सम्बन्ध अपनी गोद में सारे विश्व को ही समेट लेने में समर्थ हो जाते हैं। पारिवारिक सद्भाव एवं सुख-शांति से लेकर सामाजिक समानता, संगठन के लिये यह भाव अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। अस्तु हर घर में यह प्रयास किया जाना चाहिये कि प्रत्येक सदस्य में गहन भ्रातृभाव एवं भगिनि भाव का विकास हो सके। भाई-भाई के सम्बन्ध परिवार एवं समाज की सशक्त रचना के प्रमुख आधार हैं। सघनतम मित्र, आदर्श सहयोगी, विश्वस्त मार्गदर्शक, निष्ठावान् अनुगामी, हार्दिक समर्थक सभी भाव एक साथ मिला देने पर जो स्वरूप बनता है वह सब भाई के सम्बन्ध में समाहित हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने परिवार रूपी शरीर में भाई की उपमा हाथ से दी है। शरीर पर वज्र भी टूटे तो यथासाध्य हाथ पहली चोट अपने ऊपर लेकर शरीर को बचाने का प्रयास करते हैं। वास्तव में सच्चे भाई में भी यह सब गुण होते हैं।

वा. ४८/ २.८८

भाई-भाई का झगड़ा स्वाभाविक नहीं; किंतु वे आये दिन लड़ते रहते हैं। अलग होते और एक दूसरे के विरोधी बनते रहते हैं। इसके अनेक कारण हैं जैसे:-

१. अधिकांश माता-पिता लड़कों को प्रकृति पर छोड़ देते हैं। उनके प्राकृतिक विकास में कोई हस्तक्षेप नहीं करते। मनमाने ढंग से बढ़ते हुए पौधे और बच्चे प्रायः गलत रूप ही पकड़ लेते हैं। माता-पिता को छोटेपन से ही यह देखते रहना चाहिये कि कोई लड़का उछूँखल, उदण्ड अथवा व्यतिक्रामक तो नहीं होता जा रहा। वह अपने दूसरे भाईयों का उचित ध्यान रखता है या नहीं। कहीं उसमें स्वार्थ और अपनेपन की भावना तो घर नहीं कर रही। यदि ऐसा है तो तत्काल उस पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक उसकी अनानुकूलमुखी प्रवृत्ति को वांछनीय दिशा में मोड़ा जाना चाहिये।
२. ताड़ना एवं दण्ड का मार्ग उचित नहीं। इससे बच्चा सुधरने के बजाय और बिगड़ सकता है। ढीठ हो सकता है। जिसके सम्मुख ताड़ना दी गई है, उसका अधिक विरोधी हो सकता है।
३. दो छोटे भाईयों का झगड़ा मिटाने के लिये अनेक बार माता-पिता उनको एक दूसरे से बोलने, साथ खेलने और बैठने से मना कर देते हैं और यथा संभव इस निषेध का पालन करने का भी प्रयत्न करते हैं। यह उपाय बड़ा खतरनाक है। इससे पारस्परिक मनोमालिन्य पलता और जमा होता जाता है। कालान्तर में भाई-भाई परस्पर विरोधी बन जाते हैं।
४. रुचि वैचित्र्य भी भाई-भाई के झगड़े का एक कारण है। माता-पिता को चाहिये कि खाने-पहनने और खेल-मनोरंजन में उनकी रुचि वैचित्र्य को प्रोत्साहित न होने दें। भाई-भाई, भाई-बहिन जितना साथ-साथ खेलेंगे-खायेंगे और रहेंगे, वे एक दूसरे के अधिक समीप आते रहेंगे।
५. बच्चों की संगत पर बड़ा ध्यान रखना चाहिये। बहुत बार बाहर के अवांछित तत्त्व भाई-भाई में विरोध पैदा कर देते हैं। किसी बाहरी समवयस्क के प्रभाव में आकर बच्चे अपने भाईयों की उपेक्षा करने लगते हैं जो उनके मनमुटाव का कारण बनता है।
६. छोटे-बड़े का भेद, माता-पिता का पक्षपात भी भाई-भाई में मनोमालिन्य बढ़ा देता है। यह कमी माता-पिता की है। उन्हें इस सम्बन्ध में अपना सुधार कर ही लेना चाहिये। सब बच्चे उनके हैं। उनके लिये सब बराबर हैं। कोई भी कारण उन्हें विषम भाव रखने के लिये विवश न कर सके। यदि वे स्वयं असमान भाव रखेंगे तो कैसे आशा रख सकते हैं कि बालक परस्पर समान भाव रखें।

७. जिस परिवार में बहिन और भाई रहते हैं, वहाँ का वातावरण निस्संदेह कठोर हृदय को भी कोमलता में परिणत करने में सक्षम होता है। किन्तु इस वातावरण की सृष्टि में माता-पिता का योगदान ही प्रमुख रहता है, माता-पिता ही परिवार संस्था के संचालक, व्यवस्थापक तथा सम्पादक होते हैं। यदि उनके द्वारा बेटे और बेटी के प्रति स्वल्प वैषम्य का भाव अभिव्यक्त हुआ तो यह विषबेलि फिर फैलने लगती है। जिसका सूक्ष्म प्रभाव उन अबोध बालक मनो पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ने लगता है जो कालांतर में एक विष वृक्ष ही बन जाता है। विशेषकर बहिन और भाई के मध्य एक हीनत्व और अलगाव की भावना विकसित होने लगती है। साथ ही माता-पिता यदि समान रूप से प्यार तथा दुलार, सुविधा, सहयोग, शिक्षा और संस्कार पुत्र और पुत्री को देते हैं तो इस विसंगति से, इस विघटन से परिवार अछूता रहता है।

८. बड़े दुःख का विषय है, आजकल भाई-बहिन के संबंध में लेन-देन एवं उपहारों ने घुसपैठ कर कहीं खटाई का काम किया है। इस सांस्कृतिक दृष्टि से एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहा जा सकता है। बहिन का तो एक ही अभीष्ट रहना चाहिये - भाई सुखी एवं प्रसन्न रहता है तो इससे बड़ा सद्भाव एवं सम्पदा और कुछ नहीं हो सकती।

वा. ४८/२.८८ से २.९१

आदर्श सहेली-ननद, भाभी

परिवार में जब एक नूतन सदस्य पदार्पण करता है नववधू के रूप में, उस समय ननद अपनी भाभी के लिये मन में न जाने कौन-कौन से स्वप्न सँजोये रहती है, ऐसे अवसर पर ननद के मन में कितनी कमनीय कोमल कल्पनायें होती हैं, उसे एक नई सहेली मिलेगी, उससे अपने मन की खूब बातें करेगी, एक दूसरे की दुःख-सुख की बातें सुनेंगी, सुनायेंगी आदि अन्यान्य मनसूबे बाँधती रहती है ननद। उधर नई भाभी का मन भी हलचल से भरा रहता है, पतिगृह उसके लिये नया है, वह भी सबके लिये नई होगी। नूतन गृह के आचार-विचार, मान-मर्यादाओं से वह पूर्णतः अपरिचित तथा अनभिज्ञ है, कैसे समय कटेगा, परिवार के अधिकांश सदस्य बड़े तथा सम्माननीय होंगे, कैसे उनके समक्ष अपनी आंतरिक, अनुभूतियों को अभिव्यक्त करेगी, किन्तु उसे आशा की किरण इस ऊहापोह के निविड़तम में अन्ततोगत्वा ननद के रूप में मिल ही जाती है। एकमात्र ननद ही उसकी सच्ची सहेली है, जिससे उन्मुक्त प्यार सुलभ होगा, साथ ही घर की समस्त परम्पराओं रीति-रिवाजों का परिचय मिल जायेगा।

वा. ४८/२.९३

दोनों पक्ष जब एक दूसरे से इस तरह आश्वस्त हों, तो साक्ष्य होने पर परस्पर आकर्षण बढ़ता है और सामीप्य पाकर प्रेम में प्रगाढ़ता आने लगती है। परिवार में निरंतर हास-परिहास, उमंग उल्लास का वातावरण सदैव बना रहता है। एक साथ उठना, एक साथ बैठना, एक साथ खाना-पीना, इत्यादि सौहार्द्रपूर्ण सहकारी क्रियाकलाप सतत उत्साह में अभिवृद्धि ही करते हैं। समीपता बढ़ती जाती है, ऐसी अनुभूति होने लगती है जैसे ननद को एक सहेली ही नहीं एक और बहिन मिल गई तथा भाभी को सहोदर बहिन की रिक्तता की पूर्ति ननद के रूप में हो जाती है। भाभी, और कोई तो नहीं ननद के भाई की अर्धांगिनी, सहधर्मिणी तथा सहचरी है। इस दृष्टि से भी वह प्रेम, सौहार्द्र, आत्मीयता और सद्भाव पाने की अधिकारिणी है। वस्तुतः दोनों और से प्रेम पल्लवित हो तभी पुष्पित तथा पल्लवित होने की अपेक्षा की जा सकती है। एकांगी प्रयास सदैव निष्फल रहते हैं। भाभी प्रेम पूर्ण व्यवहार करे और ननद नहीं, तो आत्मीयता की परिकल्पना की ही नहीं जा सकती। इसी प्रकार ननद का व्यवहार शालीन हो, किन्तु भाभी का अशालीन, तब पटरी नहीं बैठ सकती। समानान्तर समान प्रयासों से ही सम्बन्ध सूत्र स्थापित होते हैं।

वा. ४८/ २.९३

परिवार में यदि परिजन विशेषकर भाभी और ननद परस्पर समझदारी, निष्पक्षता, सद्भाव, सम्मान, प्रशंसा आदि का व्यवहार करें तो विग्रह की संभावना ही नहीं रहती। भाई-बहिन तथा ननद-भाभी के बीच के मधुर सम्बन्धों का प्रवाह बहिन के विवाह के बाद भी चलता रहता है। भाभी की गरिमा को बहिन (ननद) यदि आँच नहीं आने देती तो बहिन मायके की समस्त खुशियाँ लूट सकती है।

१. बहिन भाई को यदि पत्र लिखे तो भाभी के प्रति विशेष प्रेम और सम्मान का भाव अभिव्यक्त करे। वह भाभी को अलग से भी पत्र लिख सकती है, जिससे भाभी का मन अपनी सहेली ननद से मिलने के लिये व्यग्र तथा व्याकुल हो उठेगा। पत्र में वह सामर्थ्य होती है कि लोग अपने शत्रुओं को भी पत्राचार के माध्यम से मित्र बना लेते हैं।

२. बहिन का जब मायके जाना हो, उस समय यदि वह भाई-भतीजों के लिये अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ कपड़े खिलौने आदि का उपहार लाती है तो, उस समय उसे भाभी को नहीं भूलना चाहिये। जब सब के लिये कुछ न कुछ लाई है तो भाभी के लिये क्यों नहीं?

३. स्थिति उस समय भी बहिन की दयनीय हो जाती है, जब वह मायके में जाकर केवल माँ के पास बैठकर गप्पें हाँके और भाभी अकेली चूल्हे-चौके के

काम में दिन भर लगी रहे। बहिन के लिये यही उचित होगा कि वह भाभी के कार्यों में हाथ बँटाये, जब ननद भाभी के काम में रुचि लेने लगेगी तो शिष्टाचार वश भी अपने काम को भाभी न करने का आग्रह करेगी। ननद यदि भाभी को सहयोग दे तो इस व्यवहार से वह भाभी के प्रेम और सहानुभूति की अधिकारिणी बन जाती है।

४. कभी ऐसी स्थिति भी आ सकती है, जब उसे न्यायाधीश की भूमिका का निर्वाह करना पड़े। माँ बहू की शिकायत करे और बहू माँ की। दोनों अपनी-अपनी कैफियत देकर अपने आप को निर्दोष सिद्ध करें और एक दूसरे को दोषी ठहरायें। यह क्षण बहिन के लिये बड़ी कसौटी का होता है। बहिन को निष्पक्षता के साथ दोनों पक्षों की बातें ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये व परिस्थिति अनुरूप उचित निर्णय देना चाहिये। यदि ऐसा करने में वह अपने आप को असमर्थ पाती है तो उसके लिये आपद् धर्म यही हो सकता है कि वह मौन रहे, न माँ का पक्ष ले, न भाभी का। उसे रहना ही कितने दिन है, पक्षपात करने में घृणा ही उसके पल्ले पड़ेगी। उसकी उपस्थिति में मायका नर्क न बने, उसके समग्र प्रयास इसी दिशा में होने चाहिये।

५. बहिन को मायके में किसी भी प्रकार की विभ्रान्ति उत्पन्न होने पर ठण्डे दिमाग से सोचने की आदत डालनी चाहिये। इससे भाई-भाभी और माँ का प्यार सदैव सुलभ रहेगा। भाई-भाभी के आपसी झगड़े में भी बहिन की अनावश्यक मध्यस्थता उसके हित में नहीं है।

६. मायके का बजट यदि उसकी वजह से अस्त-व्यस्त होगा तो भाई को पुनः बुलाने में अनेक बार सोचना पड़ सकता है। मायके की परिस्थिति के अनुकूल ढल जाना ही उसकी व्यवहार कुशलता, भाभी के प्रति सच्चे प्रेम का परिचायक होगा। लेन-देन पवित्र सम्बन्ध में गौण माने जाते हैं, आत्मिक आदान-प्रदान की तुलना में वस्तु विनिमय का कोई महत्व नहीं।

७. बहिन यदि सम्पन्न है तो अपने भाई-भतीजे पर इतना खर्च न करे, जिससे वे उसके प्रत्युत्तर स्वरूप व्यवहार लौटाने में असुविधा अनुभव करें।

इस प्रकार अपने चिंतन को परिष्कृत कर बहिनें यदि मायके जायें तो आनंद और सुख की उपलब्धि उन्हें सदैव होती रहेगी, भले ही मायके में माता-पिता हों अथवा नहीं। मायके में सदैव सम्मान और स्वागत की पात्र बनने के लिये बहिन को स्वयं अपनी व्यावहारिक बुद्धि को विकसित करना होगा।

वा. ४८/२.९५, २.९६

जेठानी और देवरानी की आत्मीयता

जेठानी और देवरानी वस्तुतः एक ही परिवार से सम्बद्ध होने के पूर्व एक दूसरे से अपरिचित रहती हैं। किन्तु जिस परिवार में आकर वे सम्मिलित होती हैं, प्रारंभ में दोनों की स्थिति एक सी ही होती है। जो ज्येष्ठ है, वरिष्ठ है अथवा अनुभवी है, उससे अर्थात् जेठानी से देवरानी को सहानुभूतिपूर्ण मार्गदर्शन की अपेक्षा स्वाभाविक है। संयुक्त हिन्दु परिवारों में जेठानी से देवरानी का पाला न पड़े ऐसी कल्पना निरर्थक है। किंतु कतिपय अपवादों को छोड़कर अधिकांश देवरानी-जेठानी में पारस्परिक प्रेम का अभाव और कटुता का प्रभाव देखा ही जाता है। इसके लिये आवश्यक है कि घर-घर में देवरानी और जेठानी द्वारा सहयोग, सद्भाव, सहानुभूति का प्रायोगिक प्रशिक्षण लड़कियों को आरम्भ से ही दिया जाना चाहिये।

देवरानी-जेठानी के संघर्ष में सम्पूर्ण परिवार प्रभावित होता है, बच्चों पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता, इतना ही नहीं जेठ और देवर अर्थात् सहोदर भाइयों में भी यदा-कदा महाभारत होते देखा गया है। ऐसे अवसरों पर यदि भाई विवेकशील होते हैं तो पत्नियों की बातों में विश्वास नहीं करते, बल्कि निष्पक्षता के साथ समस्या की गहराई में जाकर उसका समाधान खोजते हैं और संघर्ष की स्थिति टल जाती है।

देवरानी और जेठानी में परस्पर ममता, समता तथा एकता के भाव का विकास हो तभी कटुता का पलायन हो सता है, वस्तुतः आचरण अथवा व्यवहार को भावना का दर्पण कहा जा सकता है। सुमधुर-सरस वाणी से एक दूसरे के हृदय को जीतकर सगी सहोदरा बहिनों के समान जेठाली आकर देवरानी के रहने में कोई असुविधा नहीं दिखाई देती। मायके की बहिन का साथ तो अस्थाई होता है किन्तु देवरानी जेठानी का स्थाई। फिर स्थाई बहिन से सगापन कसों न विकसित किया जाये, ऐसा परस्पर विचार करना चाहिये, क्योंकि इस समझौते में हानि नहीं लाभ ही लाभ है। वा. ४८/ २.९८, २.९९

बेटी और बहू में अंतर न रहे।

अनैतिक व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह सकता। इसीलिये देखा जाता है कि बहू को सताने वाले परिवार अधिकतर सुख-शांति पूर्वक नहीं रह पाते और बदले में ब्याह के बाद उनकी बेटियाँ भी सताई और उत्पीड़ित की जाती हैं। ससुराल में बहू को सताये जाने का अर्थ केवल यह नहीं होता कि केवल उसी

को सताया जा रहा है। उसे उत्पीड़ित करने से जो दुःख उसके माता-पिता, भाई-बहिनों को होता है, वह भी उत्पीड़कों पर परोक्ष रूप से प्रभाव डालकर पाप का भागी बनाता है।

बहुधा देखा जाता है कि माँ चाहती है कि बेटी पराए घर जाकर मालकिन बनकर रहे। पति का असीम स्नेह उसके ऊपर बरसे। चाहे जहाँ खूब घूमे-फिरे, ऐश करे, सिनेमा देखे, अच्छे-अच्छे कपड़े पहने। सब घर से अच्छा खाये। उसकी सास का कोई जोर-दबाव उसके ऊपर न रहे। उसके ससुराल वाले जब चाहे, मैके चली आने दें। पति की आमदनी का कम से कम हिस्सा उसके परिवार वालों के लिये खर्च हो, घर का काम कम से कम करना पड़े। पर साथ ही वह माँ अपनी बहू के लिये ठीक इसके विपरीत सोचती है।

बहू अपने पति से कम से कम मिलने पाये। घर की किसी भी तकलीफ की भलाई-बुराई अपने पति से न करे। कहीं घूमने-फिरने न जाये, हमारे लाये हुए कपड़े और वस्तुओं का इस्तेमाल करे। घर का पूरा काम वही करे और घर के सब सदस्यों को खिलाने के बाद में बचे हुए भोजन को स्वयं खाये। ससुराल की कोई बात अपने मायके में न बताये। २४ घण्टे घर के अन्दर ही पर्दे में रहे और उसके पति की आमदनी पर उसका किसी तरह का आधिपत्य न हो।

यह समझ में नहीं आता कि उसी एक महिला का जब बेटी के लिये सोचती है तो ढंग कुछ और है, पर जब बहू के लिये सोचती है तो ढंग कुछ और है। आखिर एक ही घर में ऐसी दोहरी नीति क्यों? इसी तरह हम देखते हैं कि जो स्त्री एक ही घर में दोहरी नीति अपनाती है तो घर में तनाव, मन-मुटाव होने लगता है। अगर वही स्त्री अपनी बहू को बेटी बना कर रखे, उसे बेटी के ही समान प्यार दे, जैसा अपनी बेटी के लिये चाहे वैसा ही अपनी बहू के लिये भी चाहे तो हो नहीं सकता कि सास बहू के सम्बन्ध मधुर न हों। अगर सास अपनी बहू को बेटी सा प्यार देगी तो बहू भी उसे माँ का सम्मान और प्यार देगी। इस तरह सास और बहू के झगड़े का अंत हो सकता है।

पुत्रवधू की जिम्मेदारी पुत्र से भी बढ़कर है। वह सास-ससुर को माता-पिता की तरह प्यार भी करती है और गुरु की तरह आदर भी। माता-पिता पुत्र का पालन बड़ी उमंग और प्रेम से करते हैं, और विवाह भी बड़ी उमंग से करते हैं। विवाह होने पर पुत्रवधू का स्वागत भी बड़े उत्साह से करते हैं। उनकी इन आशा, उमंगों को धक्का न लगे, इसका ख्याल पुत्रवधू

पुत्र और पुत्रवधू दोनों को इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि वे क्या कारण हैं जिससे माता-पिता असंतुष्ट होते हैं?

१. पुत्र और पुत्रवधू यद्यपि अभिन्न हैं, पर जब सास-बहू में गृह प्रबन्ध आदि को लेकर कोई बात हो रही हो तो पुत्र अपनी पत्नी का वकील बनकर माँ से चर्चा न करे, बहुत जरूरत हो तो पत्नी ही नम्रता से खुलासा करे। अपवाद रूप से किसी बड़ी घटना की बात दूसरी है।
२. दाम्पत्य क्रीड़ाओं के वश में होकर माता-पिता की जरूरी सेवाओं की उपेक्षा न हो और न क्रीड़ाओं का विशेष प्रदर्शन हो।
३. माता-पिता के सामने पति-पत्नी उन्हीं की दो संतानों की तरह रहें।
४. स्वतंत्रता का विशेष प्रदर्शन न करें, पहले के समान माता-पिता से बात-बात में सलाह लेते रहें।
५. पुत्र और पुत्रवधू को माता-पिता के प्रतिस्पर्धी नहीं बनना चाहिये। इन बातों का ख्याल रखा जाय तो माता-पिता को यह भ्रम न होगा कि पुत्र अब हमारी परवाह नहीं करता।

माता-पिता के असंतोष का दूसरा कारण यह होता है कि माता पुत्रवधू पर कार्यभार डालकर कुछ विश्राम करना चाहती है, पर पुत्रवधू इसे अपमान समझती है। वह सोचती है कि मैं दासी नहीं हूँ, जो दिन भर काम में जुटी रहूँ, इस बात को लेकर चुपचाप या मुँह बजाकर जो संघर्ष होता है, उससे माता-पिता असंतुष्ट हो जाते हैं। यह बात हर हालत में बुरी है कि सास बहू के भीतर दो प्रतिस्पर्धीओं के समान गाली-गलौज का असभ्य व्यवहार हो।

पुत्रवधू को इन बातों का अवश्य ख्याल रखना चाहिये

१. जब तक सास समर्थ और योग्य है व उसकी रुचि है, तब तक उसके हाथ से गृह प्रबन्ध का अधिकार छीनने का या सास का अधिकार न मानने की कोशिश न करे।
२. बहू को अपमान का अनुभव न करना चाहिये। बहुत काम या छोटा काम करने से वह अपने को दासी समझ कर अपमानित न माने, सास की

डॉट-फटकार से वह अपना अपमान न समझे। किसी व्यक्ति का अपमान तब होता है, जब वह संसार की निगाहों से गिरता है। माता-पिता या सास-ससुर की सेवा करने से उनकी डॉट-फटकार सहने से किसी की इज्जत कम नहीं होती, बल्कि उसकी नम्रता, सहिष्णुता, सेवा-भाव आदि के कारण तारीफ ही होती है।

३. हो सकता है कि पुत्रवधू सास की अपेक्षा ज्यादा पढ़ी-लिखी हो, फिर भी शिष्टाचार के नाते उसे नम्र ही रहना चाहिये और यह न भूलना चाहिये कि गृह-प्रबन्ध में सास का अनुभव बहू से काफी अधिक हो सकता है और वह किताबी ज्ञान की अपेक्षा काफी अधिक कीमती हो सकता है।
४. पुत्रवधू को माता-पिता आदि के बारे में अपमानजनक शब्द न कहने चाहिये।

इसके अतिरिक्त सास को भी ध्यान रखना चाहिये कि विनय और शिष्टाचार के नाम पर पुत्रवधू के जीवन को जकड़ना न चाहिये। वह बात-चीत भी न कर सके, साधारण विनोद भी न कर सके, ससुर से, जेठ से या सास से बोल भी न सके, यह सब ठीक नहीं। उसका स्थान पुत्र के ही बराबर है। यह बात कुटुम्ब के किसी भी व्यक्ति को भूलनी नहीं चाहिये।

वा. ४८/ २.१०० से २.१०२



५. परिवार को सुसंस्कृत बनाएँ

जिस प्रकार वृक्ष की सफलता उसकी जड़ पर निर्भर होती है, उसी प्रकार मनुष्य की सफलता एवं सुख-शांति परिवार पर निर्भर है। यदि वृक्ष की जड़ कमजोर, अव्यवस्थित, शुष्क अथवा अनुपयुक्त होगी तो वृक्ष किसी भी हालत में विकसित होकर वृद्धि नहीं कर सकता। इसी प्रकार परिवार के अव्यवस्थित, कुसंस्कृत तथा अनुपयुक्त होने पर मनुष्य जीवन भी सुसंस्कृत एवं उन्नतिशील नहीं बन सकता। मनुष्य के जीवन विकास में परिवार का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः हमें अपने परिवार के निर्माण में बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए।

परिवार निर्माण की सुखद सम्भावनाएँ

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में व्याप्त कष्ट-कठिनाइयों और समस्याओं के समाधान का एक ही उपाय है कि समाज में सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न किया जाय ताकि लोगों को सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन मिले। इसे यों भी कहा जा सकता है सुसंस्कृत व्यक्तियों का निर्माण, सुसंस्कारिता का अभिवर्द्धन अपने युग की महती आवश्यकता है। यह कार्य एक सीमा तक तो प्रचार माध्यमों से भी पूरा हो सकता है, पर स्थायित्व लाने की अपेक्षा हो तो इतने मात्र से यह आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। इसके लिए अन्तःचेतना में मर्मस्थल तक सुसंस्कारिता को पहुँचाना होगा। प्रश्न उठता है कि संस्कारों की यह सम्पदा कहाँ से प्राप्त की जाय? इसका एक ही उत्तर है कि वातावरण में सदाशयता उत्पन्न हो। ऐसा वातावरण जहाँ संव्यास हो, वहीं उस स्तर के संस्कार उत्पन्न होंगे। सुसंस्कारिता का वातावरण जहाँ संव्यास हो, इस स्तर के लोग जहाँ आत्मीयता की भावसम्बेदना और सहकारिता की रीति-नीति अपनाकर चल रहे हों, वहाँ रहने वाला व्यक्ति सुसंस्कारी बन सकता है। इस सन्दर्भ में स्वाध्याय, सत्संग एवं मनन-चिन्तन से भी उपयोगी प्रकाश मिल सकता है। निजी प्रयत्नों से भी आत्मनिर्माण में बहुत कुछ प्रगति हो सकती है, किन्तु जहाँ तक बाह्य अनुदानों का सवाल है, वहाँ उपयुक्त वातावरण वाला समर्थ शिक्षा संस्थान एक ही हो

सकता है और वह है परिवार। परिवार में, व्यक्तित्व की ढलाई अनायास ही होती रहती है। न प्रशिक्षण करना पड़ता है और न प्रयत्न। योजना बनाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती और न प्रेरणा देने अथवा दबाव डालने की। सब कुछ स्वचालित क्रम से होता रहता है और उस परिवार में रहने वाले उसी प्रकार ढलते चले जाते हैं, जिस प्रकार कि छोटे बच्चे बड़ों का अनुकरण करके बोलना, चलना या अन्य व्यवहार करना सीख लेते हैं। यह तथ्य जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है। सुसंस्कारिता उपलब्ध करने के लिए उस विशिष्टता के वातावरण से सुसम्पन्न परिवार की नितान्त आवश्यकता है।

वा. ४८/२.३९

परिवार को कुसंस्कारी न बनने दिया जाय

गृह-कलह का सारभूत कारण न तो निर्धनता है और न ही धनता। इसका आधारभूत कारण है परिवारों का असंस्कृत होना। जिस परिवार के सदस्य सुशील, सुसंस्कृत, सभ्य एवं उदात्त स्वभाव के होंगे उस परिवार में गृह-कलह कदाचित् ही हो फिर चाहे वे निर्धन हों अथवा धनवान। परिवारों से गृह-कलह को आमूल नष्ट करने और उनमें संगठन, सुदृढ़ता, सुख और शांति बनाये रखने के लिये उनको सुसंस्कृत बनाना होगा।

वा. ४८/१.६५

संस्कार के अभाव में सुशिक्षित होने पर परिवारों के सयाने लड़के दुर्व्यसनी एवं दुर्गुणी बन जाते हैं। वे चारित्रिक महत्त्व और उसकी परिभाषा न जानने से उच्छ्रंखल, निरंकुश तथा अनुशासनहीन हो जाते हैं। घरों के बड़े-बूढ़े अधिकार एवं कर्तव्य में संतुलन न रख सकने के कारण क्लेश के कारण बन जाते हैं। स्त्रियाँ घर की सुख-समृद्धि में शान्ति, सन्तोष, स्नेह-सौहार्द एवं हँसी-खुशी के योगदान की महत्ता न जानने से गाल फुलाये, मुँह लटकाये, रूठी, ऐंठी और चख-चख करती हुई वातावरण को असहनीय बनाये रहती हैं। संस्कारों के अभाव में उनका स्वभाव असहनीय एवं व्यंग्वादी बन जाता है। घर की बड़ी-बूढ़ियाँ अधिकार लिप्सा से पीड़ित परिजनों का उठना-बैठना तक दूभर कर देती हैं। इन सब विकारों, विकृतियों एवं त्रुटियों का कारण एक ही है- परिवारों का असंस्कृत होना।

वा. ४८/१.६६

देखा गया है कि पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्रचुर सम्पत्ति मिलने पर भी सन्तान उसका लाभ न उठा सकी। आलस्य, प्रमाद, व्यसन, दीर्घसूत्रता, अहंकार, लापरवाही जैसे छोटे-छोटे दुर्गुणों के कारण वह सारी सम्पदा कुछ ही दिनों में

स्वाहा हो गई। जहाँ घाव होता है, वहीं कीड़े पड़ते हैं। जहाँ-जहाँ असावधानी, आलस्य सरीखे दुर्गुण रहते हैं वहाँ उन्हें ठगने-लूटने वाले अनेक पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार अभिभावक अच्छा खिला-पिलाकर बच्चों को हृष्ट-पुष्ट बना दें तो भी इस बात का क्या भरोसा कि वे अन्त तक स्वस्थ एवं नीरोग बने रहेंगे। नशेबाजी, व्यभिचार, चटोरेपन आदि थोड़े से दोष ही उस हृष्ट-पुष्ट शरीर को कुछ ही दिनों में रोगग्रस्त, अल्पायु एवं जीर्ण-जर्जर बना सकते हैं। विवाह के लिये अच्छा जोड़ा ढूँढ़ दिया जाय, तो भी कोई भरोसा नहीं कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखी ही बना रहेगा। असहिष्णुता, अविश्वास, अहंकार, असहयोग जैसे थोड़े से दुर्गुण उस दृष्टि से एक-दूसरे के लिए उपयुक्त जोड़े को परस्पर द्वेष व दुर्गति से ग्रस्त कर सकते हैं और उनका गृहस्थ जीवन नरक जीवन बन सकता है। वे एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं। आग की छोटी-सी चिंगारी बड़े से बड़े वन या नगर को भस्मसात कर सकती है। छोटे-छोटे दुर्गुण जो देखने में मामूली और महत्वहीन मालूम पड़ते हैं, मनुष्य को दुःख-दरिद्र के गर्त में धकेल सकते हैं और उनके सम्पर्क में रहने वालों का सुख-सन्तोष नष्ट हो जाता है।

ऐसे अगणित उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं जिनमें अत्यन्त छोटी, गई-गुजरी एवं अभावग्रस्त परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों ने इतना उत्कर्ष किया, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। उन्होंने इतनी सहायता-सुविधा कहाँ से प्राप्त कर ली जिससे वे अन्धकार को चीरते हुए प्रकाश की ओर बढ़ सके? इसका एक ही उत्तर है 'उनके भावनात्मक एवं चारित्रिक स्तर का परिष्कृत होना।' सद्गुणों के आधार पर मनुष्य क्या नहीं कर सकता? जिसमें आन्तरिक महानता होगी, वह बाहरी क्षेत्र में हर साधन-सुविधा किसी न किसी प्रकार कहीं न कहीं से प्राप्त कर ही लेगा।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक अभिभावक को-परिवार के समर्थ संचालक-को यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि उसके कुटुम्ब का हर व्यक्ति बाहरी दृष्टि से ही नहीं, आन्तरिक दृष्टि से भी समुन्नत बने। सद्गुणों की पूँजी ही वह पूँजी है, जिसके बल पर कोई व्यक्ति अपनी एवं अपने साथियों की सुख-सुविधा बढ़ा सकता है, आनन्द एवं संतोष की जिन्दगी जी सकता है। यह सम्पत्ति जिसने अपने परिजनों को दी; समझना चाहिए कि वह परिवार के ऋण से उऋण हो गया और जिसने उपेक्षा बरती, समझना चाहिए कि उसने अपने एक अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य का पालन करने में चूक कर दी।

वा. ४८/२.४५

सुसंस्कृत परिवार का इतना महत्व तो बताया जाता है, उसका गुणगान भी खूब किया जाता है, परन्तु उसका अर्थ क्या है ? परिवार के सुसंस्कृत होने का एक ही अर्थ है उसके सदस्यों में गुण, कर्म, स्वभाव का सुन्दर विकास होना। दूसरों को उनकी दुःखदायी क्रियाओं, कुमार्ग पर ले जाने वाले उनके दुर्गुणों और क्रोध, द्वेष, दुर्भाव, ईर्ष्या, स्वार्थ, अनुदारता, असहिष्णुता आदि दोषों का परिमार्जन कर उनके स्थान पर सदाचार, सुशीलता, प्रेम, पारस्परिक एकता, उदारता, मधुरता और प्रसन्नता के बीजारीपण करना ही उनको सुसंस्कृत बनाना है।

वा. ४८/२.५९

परिवार के सदस्यों को सद्गुणी, सदाचारी सुशील और सुसंस्कृत बनाने के लिए सर्वप्रथम स्वयं को सद्गुणी, सदाचारी और सुशील बनना चाहिए अन्यथा इस प्रयोजन के लिए किये गये मौखिक उपदेश व्यर्थ तो जायेंगे ही अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न किये बिना भी न रहेंगे। स्वयं अपना आचरण और रहन-सहन ऐसा रखना चाहिए जिससे परिजनों को स्वयमेव ही उसका अनुकरण करने की प्रेरणा मिले। उदाहरण के लिए, यदि परिवार के सदस्यों को सभी प्रकार के दुर्व्यसनों से दूर रखना है तो सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि अपने में तो कहीं कोई ऐसा व्यसन नहीं है।

वा. ४८/२.६०

पारिवारिक वातावरण उत्कृष्ट और प्रगतिशील बने

परस्पर संभाषण में कोई किसी का अधूरा या असम्मान सूचक नाम न लें। या तो रिश्ता बताते हुए-पिताजी, माताजी, बुआजी, दीदीजी आदि सम्बन्ध सूचक नामों से संबोधन करना चाहिए। छोटों को पुकारना हो तो भी उनका नाम लेने के अतिरिक्त 'जी' शब्द और जोड़ा जाय। इसका यह प्रभाव होता है कि बच्चे भी वैसा ही अनुकरण करने लगते हैं। ऐसे संबोधन से घर वालों को या बाहर वालों को सुनने में बहुत प्रिय लगता है। चाहे छोटे ही बच्चे क्यों न हों पर उन्हें तुम या आप कहकर बुलाना चाहिए। नाम भी पूरा लेना चाहिए। आधे-अधूरे अपमान सूचक संबोधन के साथ बुलाने से उनके स्वाभिमान को चोट पहुँचती है और हीनता के भाव जागते हैं।

अक्सर छोटी आयु में लाड़-प्यार से अपना बड़प्पन या अधिकार जताने के लिए इस प्रकार के संबोधन किए जाते हैं, पर पीछे उन्हें पड़ोसी और स्कूली साथी भी अपना लेते हैं और वह परस्पर बड़ी आयु तक चलता रहता है। होना

यह चाहिए कि गुणपरक नाम रखे जायें ताकि बच्चा उसका अर्थ समझते हुए अपने को उसी प्रकृति का बनाने का प्रयास करे।

वा. ४८/२.२६

छोटे-छोटे कामों का दायित्व बच्चों को आरम्भ से ही सिखाना चाहिए। नियत स्थान पर, नियत समय पर मल-मूत्र का त्याग करना, अपने कपड़े, जूते, पुस्तकें आदि नियत स्थान पर रखना। प्रातःकाल उठकर सबको नमस्कार करना आदि। इस प्रकार के अभ्यास से नियमितता की, अनुशासन की आदत पड़ती है।

बाजार से हानिकारक वस्तुएँ खरीदकर खाने के लिए पैसे देने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि बीच में भूख लगने पर घर की वस्तुएँ ही खाया करें। उन्हें थोड़ी मात्रा में स्कूल जाते समय साथ रखी जा सकती हैं। बच्चों को खेलने-कूदने का, प्रकृति के सान्निध्य का, घूमने का भी अवसर देना चाहिए। अनुशासन में इतना अधिक नहीं कस देना चाहिए कि वे भविष्य में मिलने-जुलने की प्रकृति ही गँवा दें और संकोची बन बैठें।

परिवार के सभी लोगों के बीच इतना खुलापन होना चाहिए कि अपनी या दूसरे साथी के मन की बात स्पष्ट कही जा सके। मन की बात मन में दबाये रहने से घुटन अनुभव होती है। कहते-सुनते रहने से पक्ष या विपक्ष स्तर का कोई न कोई समाधान निकलता है और संकोच-संकोच में जो गलत धारणाएँ बनती हैं, वे पनपने नहीं पातीं। संकुचित मन वाले परिवार एक दूसरे से अपनी इच्छा या दूसरों की गलती के सम्बन्ध में जो धारणायें बना लेते हैं उससे मनो में खाई बनती है और अवसर आने पर बुरी तरह फूटती है।

यह बात मात्र बच्चों के सम्बन्ध में ही नहीं, बड़ों के बारे में भी है, ऐसी परम्परा पड़नी ही नहीं देनी चाहिए। बाजार से कोई वस्तु खरीदनी हो तो घर के अन्य समझदार लोगों को भी साथ ले जाना चाहिए, ताकि सस्ते मोल में घटिया या कम नाप-तोल की चालाकी से वे परिचित हो सकें, व वस्तुएँ ठीक कीमत पर, ठीक स्तर की, तोल-नाप में पूरी लेने का अनुभव उन्हें होता रहे। अविश्वासभरे वातावरण में अदल-बदल कर विभिन्न स्थानों से वस्तुयें खरीदनी चाहिए, ताकि बाजार में व्यापारियों के उतार-चढ़ावों का अनुभव होता रहे और जेब न कटे।

वा. ४८/२.२७

कुशल प्रशिक्षक में मृदुलता और कठोरता का सन्तुलित समावेश होना चाहिए। माता को प्यार से बच्चों को भरपूर दुलार देने के साथ-साथ अनुशासन सिखाने के लिए ऐसा भी, आये दिन करना पड़ता है, जो बच्चों के मनोनुकूल न

हो, कहते हैं लाड़ में बच्चे बिगड़ते हैं। यह सही है, अनावश्यक दुलार मिलने से भी, गरिष्ठ भोजन अति मात्रा में देने से पेट बिगड़ने की ही तरह दिमाग बिगड़ता है। दुलार उतना ही देना चाहिए, जितना हजम हो सके, अपच उत्पन्न करने, जितनी मात्रा खिलाते जाना दुलार लगता भले ही है, पर तत्त्वतः वह वैसा है नहीं।

मोह को सत्यानासी इसीलिए कहा गया है कि अमुक परिजनों के साथ अत्यधिक उदारता बरतने से उनकी आदतें बिगड़ती हैं। बिगड़ी आदतों को लेकर वे स्वयं दुःख पाते हैं और उन कृपालुओं को शाप देते हैं जिन्होंने अविवेकपूर्वक, अनावश्यक और अनुचित होने की बात का ध्यान न रखते हुए बेहिसाब लाड़-प्यार उलीचा।

ठीक इसी प्रकार कठोरता का पक्ष भी है। रूखा, कर्कश, कठोर, उपेक्षापूर्ण व्यवहार करने से परिजनों को भी असन्तोष रहता है। वे किसी ऐसे प्रभाव का अनुभव करते हैं जिसमें उनके अन्तःक्षेत्र में अतृप्ति बनी रहती है। कठोरता कारणवश अपनाई जा सकती है। रूखाई यदा-कदा अपनाई जा सकती है, किन्तु वह नीति के रूप में प्रयुक्त की जानी चाहिए और उथली दिखावटी होनी चाहिए। आत्मीयता एवं ममता की वास्तविकता इसमें है कि प्रियजनों की अनुपयुक्त इच्छा, चेष्टा एवं आदत को सुधारने, बदलने का भी प्रयास किया जाय। इस प्रयास में उत्पन्न हुई असहमति, मनोमालिन्य उत्पन्न करने तक आगे बढ़ सकती है। इस स्थिति से निपटने का उपाय तो ढूँढना चाहिए पर हारने और हथियार डालने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए।

वा. ४८/२.५८



६. परिवार-निर्माण के स्वर्णिम सूत्र

(क) पारिवारिक पंचशील

(ख) परिवार में आस्तिकता का वातावरण बनाएँ

(ग) गुण जो हर सदस्य में अनिवार्यतः विकसित करें

(घ) परिवार निर्माण के अन्य महत्त्वपूर्ण सूत्र

(क) पारिवारिक पंचशील

दुर्भावना के वातावरण में पंचशील के सिद्धान्त अन्तराष्ट्रीय जगत में भले ही सफल न हुए हों पर पारिवारिक जगत में वे सदा सफल होते हैं। पारिवारिक पंचशील पालन करने से घर में शक्ति बनी रहती है और प्रेम तथा सुव्यवस्था का वातावरण बना रहता है। यह पारिवारिक पंचशील हैं :-

(१) परस्पर आदर-भाव से देखना

परस्पर के दोषों को देखकर आलोचना करना अनुचित है। सभी मनुष्यों में कमजोरियाँ हैं, भूल होना भी मनुष्य का स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति आपके घर का सदस्य होने के कारण उसका भी उस घर पर पूरा अधिकार है। यदि रुचि में साम्य न हो अथवा मत वैभिन्नता हो तो वह निरादर का पात्र नहीं है। यह सम्भव नहीं है कि आपकी रुचि सब से मिल सके। छोटे बच्चे भी आदर के पात्र होते हैं। वे भी अपने आदर-निरादर को समझते हैं। यदि आप किसी बच्चे से स्नेह से बोलेंगे तो वह निश्चय ही आपके गले से लिपट जायेगा। यदि आप उसे झिड़क देंगे तो वह कभी आपके पास आने का नाम भी नहीं लेगा। कड़ुवी बात जहर से भी बुरी होती है। यदि आपकी वाणी मधुर नहीं है तो जीवन में कटुता बढ़ती ही चली जायेगी। घर के किसी सदस्य की तीखी आलोचना करना अवश्य ही बर्दाश्त से बाहर हो सकती है। आपकी भ्रान्त धारणा, चाहे वह भ्रान्ति न होकर सत्य ही हो तो भी, दूसरे पर तीखी चोट कर सकती है, और तब वाणी का वह घाव जीवन भर भरने में नहीं आता। विद्वानों का कहना है कि मनुष्य तलवार के घाव से नहीं घबराता, वह उसे हँसते-हँसते सह लेता है, परन्तु वाणी का घाव कलेजे में गहरा होता जाता है और वह जीवन भर भरने में नहीं आता।

(२) अपनी भूल स्वीकार करना

अपनी ओर से कोई ऐसी बात मत आने दो जिससे कोई विवाद हो जाये, बल्कि दूसरी ओर से होने वाले विवाद को भी शान्तिपूर्वक निपटा देना ही बुद्धिमानी है। अपने द्वारा हुई भूल को तुरन्त स्वीकार कर लीजिए। आपकी इस स्पष्टवादिता और आदर्श मनोवृत्ति का दूसरों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। यदि आप भूल करके भी उसे स्वीकार नहीं करते तो दूसरों पर उसकी गलत प्रतिक्रिया होगी और क्षमाभाव के बजाय मन में भ्रान्त धारण बनी रहेगी। परस्पर विरोध रहने के कारण अनबन चल रही हो तो उस अनबन को समझौते द्वारा तय कीजिए और आगे के लिए ऐसा ढंग अपनाइये कि समस्या जटिल न होने पावे। अनबन का अन्त यदि शीघ्र ही नहीं होता तो वह धीरे-धीरे भीषण रूप धारण कर लेती है और फिर उसका समाधान बहुत कठिन हो जाता है।

(३) आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना

सभी के विचार पृथक्-पृथक् हो सकते हैं। यदि आपके परिवार के किसी सदस्य के विचार आप से नहीं मिलते और वह अपनी विचारधारा के अनुसार कार्य करता है तो उसके मार्ग में रुकावट न डालिए। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आप राम के उपासक हैं और आपका पुत्र शिव की उपासना करता है, वह राम को नहीं मानता तो उसे अपने मन के अनुसार करने दीजिए। अथवा आप किसी एक राजनैतिक दल से सम्बद्ध हैं और आपका पुत्र किसी अन्य राजनैतिक दल का सदस्य हो जाता है, तो उसके इच्छित कार्य से रुष्ट मत होइए। यदि आप उसके विचारों के प्रति अपना दृष्टिकोण उदार रखेंगे तो किसी प्रकार के गृह-कलह की सम्भावना न रहेगी।

(४) भेदभाव न रखना

घर में भेद-भाव भी कलह का कारण बन जाता है। आपके दो पुत्र हैं- एक को अच्छा भोजन वस्त्र देते हैं और दूसरे को वैसा नहीं देते तो यह भेद अवश्य ही खटकने वाला होगा। हाँ, परिस्थितिवश एक को एक प्रकार की सुख-सुविधा और दूसरे को दूसरे प्रकार की सुख-सुविधा देते हैं, तो वह आपका दोष नहीं होगा। फिर भी यदि उनमें से किसी एक को वह बात खले तो उसे भी ठीक करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(५) विवादों का निष्पक्ष निपटारा

किसी मामले में आपको मध्यस्थ बनाया जाय तो एकदम सत्यता पर आ जाइये। कोई कितना भी प्रिय हो, यदि उसके द्वारा ज़्यादाती हुई है तो उसकी

ज्यादती की घोषणा कीजिए और जिसकी हानि हुई है उसके मन का सन्तोष कीजिए। यदि आप निष्पक्ष न रहे तो आपको उसका भीषण परिणाम भुगतना पड़ेगा। आपका सम्मान इसी में है कि आप सबके विश्वास-पात्र बनें। यदि आप सबको एक समान समझेंगे तो परिवार के सभी सदस्य आपकी बात मानने में सन्तोष करेंगे। अनजाने में यदि आप से कभी कोई भूल हो भी जायगी, तो उसका कोई ख्याल नहीं करेगा और आपकी प्रतिष्ठा ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी।

एक कहावत है कि चार बर्तन होते हैं तो खटकते ही हैं। अतः घर में कभी कुछ कलह उपस्थित हो जाय तो उसे मनुष्य स्वभाव की कमजोरी मानकर अधिक तूल मत दीजिए। झगड़ों को शांत करने का एक बहुत बड़ा नुस्खा है-त्याग। यदि आपने किंचित भी त्याग प्रदर्शित किया तो, झगड़ा समाप्त होने में देर न लगेगी। झगड़ों को युद्ध की-सी चुनौती के रूप में मत मानिए। विपक्षी का दमन करने की बात मत सोचिए, बल्कि झगड़े के कारण पर विचार कीजिए, और प्रयत्न कीजिए कि वह कारण दूर हो जाय। यदि ऐसा हो सका तो झगड़ा दूर करने में आपको शीघ्र ही सफलता मिल जायगी। गृह-कलह को समाप्त करने का यह प्रमुख सिद्धान्त है। इस पर चलकर देखिये और सफलता मिले तो दूसरों को भी इसका उपदेश कीजिए। यदि आप घर में ही अपने पंचशील को सफल न बना सके तो बाहर उसकी सफलता की आशा कैसे कर सकते हैं ?

वा. ४८/१.२३

महिलाएँ यह अच्छी तरह समझें कि परिश्रम जीवन की मूल पूँजी है अतः परिवार में क्रियाशीलता को बढ़ायें, परिवार के प्रत्येक सदस्य में कठोर परिश्रम का अभ्यास पैदा करें और अभिरुचि जगायें। वा. ४८/१.३०

(ख) परिवार में आसक्तिता का वातावरण बनाएँ

मानव जीवन की प्रगति उसके सद्गुणों पर निर्भर है। जिनके गुण, कर्म, स्वभाव का निर्माण एवं विकास ठीक प्रकार हुआ है वे सुसंयत व्यक्तित्व वाले सज्जन मनुष्य अनेक बाधाओं और कठिनाइयों को पार करते हुए अपनी प्रगति का रास्ता ढूँढ़ लेते हैं। विपरीत परिस्थितियों एवं बुरे स्वभाव के व्यक्तित्वों को भी, प्रतिकूलताओं को भी, सुसंस्कृत मनुष्य अपने प्रभाव एवं व्यवहार से बदल सकता है और उन्हें अनुकूलता में परिणत कर सकता है। इसके विपरीत जिसके स्वभाव में दोष-दुर्गुण भरे पड़े होंगे, वह अपने दूषित दृष्टिकोण के

कारण अच्छी परिस्थितियों को भी दूषित कर देगा। संयोगवश उन्हें अनुकूलता द्वारा सुविधा प्राप्त भी हो तो दुर्गुणों के आगे वह देर तक ठहर न सकेगी। दूषित दृष्टिकोण जहाँ भी होगा, वहाँ नारकीय वातावरण बना रहेगा। अनेक विपत्तियाँ वहाँ से उलझती रहेंगी।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन को सार्थक एवं भविष्य को उज्ज्वल बनाने की आधारशिला-आस्तिकता को जीवन में प्रमुख स्थान देने का प्रयत्न करे। ईश्वर को अपना साथी, सहचर मानकर हर घड़ी निर्भय रहे और सन्मार्ग से ईश्वर की कृपा एवं कुमार्ग से ईश्वर की सजा प्राप्त होने के अविचल सिद्धान्त को हृदयंगम करता हुआ अपने विचार और आचरण को सज्जनोचित बनाने का प्रयत्न करता रहे। इसी प्रकार जिसे अपने परिवार में, स्त्री बच्चों से सच्चा प्रेम हो, उसे भी यही प्रयत्न करना चाहिए कि घर के प्रत्येक सदस्य के जीवन में किसी न किसी प्रकार आस्तिकता का प्रवेश हो। परिवार का बच्चा-बच्चा ईश्वर विश्वासी बने।

अपने परिवार के लोगों के शरीर और मन को विकसित करने के लिए जिस प्रकार भोजन और शिक्षण की व्यवस्था की जाती है, उसी प्रकार आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ बनाने के लिए घर में बाल, वृद्ध सभी की उपासना में निष्ठा एवं अभिरुचि बनी रहे। इसके लिए समझाने-बुझाने का तरीका सबसे अच्छा है। गृहपति का अनुकरण भी परिवार के लोग करते हैं, इसलिए स्वयं नित्य नियमपूर्वक नियत समय पर उपासना करने के कार्यक्रम को ठीक तरह निबाहते रहा जाय। घर के लोगों से जरा जोर देकर भी उनकी ढील-पोल को दूर किया जा सकता है। आमतौर से अच्छी बातें पसन्द नहीं की जाती और उन्हें उपहास-उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। यही वातावरण अपने घर में घुसा हुआ हो सकता है, पर उसे हटाया तो जाना ही चाहिए। देर तक सोना, गंदे रहना, पढ़ने में लापरवाही करना, ज्यादा खर्च करना, बुरे लोगों की संगति आदि बुराइयाँ घर के किसी सदस्य में हों तो उन्हें छुड़ाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। क्योंकि यह बातें उनके भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाली, अहितकर सिद्ध हो सकती हैं। उसी प्रकार नास्तिकता और उपासना की उपेक्षा जैसे आध्यात्मिक दुर्गुणों को भी हटाने के लिए घर के लोगों को जरा अधिक सावधानी और सफाई से कहा सुना जाय तो भी उसे उचित ही माना जायगा।

वा. ४८/१.७९

परिवारों का धार्मिक वातावरण बनाने में सहायता करने वाले पाँच प्रचलन मुख्य हैं- (१) नमन वन्दन, (२) यज्ञीय आचरण, (३) सामूहिक

प्रार्थना, आरती, सहगान, (४) स्वाध्याय-अंशदान, (५) सत्संग, कथा श्रवण। इन पाँचों को सरलतापूर्वक हर घर में सम्पन्न किया जा सकता है और इसका श्रेयस्कर प्रभाव अविलम्ब देखा जा सकता है।

(१) **नमन-वन्दन**- नमन-वन्दन का दूसरा स्वरूप यह है कि घर के छोटे लोग अपने से बड़ों का अभिवादन करें। जिन्हें चरण स्पर्श करने में संकोच न पड़ता हो वे वैसा करें अन्यथा हाथ जोड़कर नमस्कार करना तो अनिवार्य ही रहे। भूल जाने पर बड़े भी छोटों को अभिवादन करें, इसमें बड़ों के सम्मान करने एवं वरिष्ठों का अनुशासन मानने का भाव है। यह प्रचलन घर के सदस्यों में निश्चित रूप से सद्भावना की वृद्धि करता है। अस्तु देव वन्दन और वरिष्ठ वन्दन की दोनों ही परम्पराओं का निर्वाह परिवार निर्माण अभियान के अन्तर्गत वातावरण बनाने के लिये आवश्यक माना जाना चाहिए।

(२) **यज्ञीय आचरण**- यज्ञ अर्थात् पवित्र-परमार्थ। जीवन यज्ञ अर्थात् पवित्र जीवन। परमार्थ परायणता का लक्ष्य। अग्नि होत्र में अपने प्रिय पदार्थों को लोक-कल्याण के लिए वायुमण्डल में बिखेरने की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है। परमार्थ प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारान्तर से यज्ञीय कर्मकाण्ड का सार तत्व है। इस देव यज्ञीय आचरणप्रवृत्ति पूजन को अपने परिवारों से आरम्भ करना चाहिए।

वा. ४८/१.८३

‘बलि वैश्व यज्ञ परम्परा’ को दैनिक धर्मकृत्य माना गया है। उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्रायः हो गया है। हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरम्भ होना चाहिए। चौके में जब भोजन तैयार हो जाय तो खाना आरम्भ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्ज्वलित की जाय और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मन्त्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में होम कर दिये जाएँ। बाद में जल अंजलि की परिक्रमा उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दी जाय। इस अग्नि को पवित्र माना जाय। बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाय और सुविधानुसार किसी गमले, क्यारी अथवा पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाय। यही है बलिवैश्व, अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं। इस पुनीत प्रक्रिया में भावभरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परम्परा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है।

वा. ४८/१.८४

थाली में जूठन न छोड़ने की आदत घर के हर सदस्य में डाली जानी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में अन्न का एक दाना भी बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए। खाते समय देख लिया जाय कि कहीं थाली में किसी वस्तु की अनावश्यक मात्रा तो नहीं आ गई है। दुबारा माँगने में हर्ज नहीं, अधिक प्रतीत होता हो उसे पहले से ही निकाल दिया जाना चाहिये। इसमें परोसने वाले को भी अनावश्यक शिष्टाचार बरतने की अपेक्षा समझदारी से काम लेना चाहिये। सप्ताह में एक दिन या एक समय उपवास करने की, शाकाहार पर रहने की परम्परा चल पड़े तो इससे पेट को विश्राम मिलने से स्वास्थ्य भी सुधरेगा और अन्न की देशव्यापी कमी को सहज ही पूरा कर लेने का एक बहुत उपयोगी मार्ग बन जायेगा।

वा. ४८/२.५७

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान-हमारे घरों में पूजा-उपासना का वातावरण रहना चाहिए। अच्छा तो यह है कि परिवार के सभी लोग प्रातःकाल नित्यकर्म से निपट कर कुछ समय ईश्वर की गोद में बैठने की भावना के साथ उपासना के लिए शांतचित्त से एकान्त में बैठें। गायत्री मन्त्र का जप और उगते हुए सूर्य की दिव्य किरणों अपने शरीर, मन और अन्तःकरण में प्रविष्ट होने का ध्यान करें समय का अभाव हो तो पन्द्रह मिनट भी इसके लिए लगाते रहने से काम चलता रहता है। उपासना भी नित्य के दैनिक कार्यों में सम्मिलित रहनी चाहिए। यदि अधिक व्यस्तता या अरुचि का वातावरण हो तो भी इतना तो होना ही चाहिए कि पूजा-स्थल पर गायत्री माता का-भगवान का चित्र स्थापित हो और काम-काज में लगने से पहले वहाँ जाकर, घर का प्रत्येक सदस्य दो मिनट मौन खड़ा होकर गायत्री मन्त्र का पाँच बार जप मन ही मन कर लिया करे और प्रणाम करके इस छोटे से उपासना क्रम को पूरा कर लिया करे। इसमें बाधा केवल अरुचि और उपेक्षा के कारण ही हो सकती है, परन्तु आस्तिकता के अनेक प्रकार के लाभों को समझा देने पर श्रद्धा के बीजांकुर उगाये जा सकते हैं।

वा. ४८/२.३१

(४) स्वाध्याय-अंशदान- परिवार में यदि युग साहित्य नियमित रूप से पढ़ा जाने लगे तो राम परिवार को वशिष्ठ के सान्निध्य का जो लाभ मिलता रहा था, प्रायः वही लाभ परिवार निर्माण अभियान के हर सदस्य को मिलता रह सकता है। ज्ञानघट की स्थापना युग साहित्य की व्यवस्था और अनिवार्य स्वाध्याय की प्रथा-परम्परा जिन घरों में चल पड़े समझना चाहिए वहाँ त्रिवेणी संगम जैसा सुयोग बना। यह प्रयास किसी धूमधाम के साथ अपनी गरिमा का डंका भले ही न पीटे,

किन्तु इतना निश्चित है कि जिन परिवारों में इस प्रचलन को उपयुक्त स्थान मिलेगा उनमें सत्प्रवृत्तियों का सम्बर्द्धन होगा व उनका सत्परिणाम पूरे परिवार को मिलेगा।

(५) सत्संग, कथा श्रवण- बच्चों को कहानियाँ सुनने का शौक होता है, इसमें मनोरंजन और उच्चस्तरीय प्रशिक्षण के दोनों तत्व हैं। प्राचीनकाल में वृद्धाएँ घर के बालकों को कथा, कहानियाँ नियमित रूप से सुनाती थीं। उसके माध्यम से कोमल मनों पर सुसंस्कारिता की स्थायी छाप डालती थीं। देखने में 'नानी की कहानी' बाल और वृद्धों का मनोरंजन भर प्रतीत होता है, पर वास्तविकता यह है कि यदि इस कथा, श्रवण को उद्देश्यपूर्ण बनाया और सुनियोजित किया जा सके तो उसका सत्परिणाम हर दृष्टि से श्रेयस्कर हो सकता है।

वा. ४८/१.८५

घर की कोई सुयोग्य महिला इस उच्चस्तरीय कार्य को उठाये। समय नियत रहे। एक-दो कथा-कहानियाँ नियमित रूप से कहने की शैली में मनोरंजन और विषय में प्रभावोत्पादक तत्व होंगे तो न केवल बालक वरन् बड़ी आयु के भी सब लोग उसे चावपूर्वक सुनेंगे। नमन-वन्दन, बलिवैश्व, आरती, कीर्तन, स्वाध्याय प्रचलन, कथा श्रवण के उपरोक्त पाँच कार्य ऐसे हैं जो हर घर में सरलतापूर्वक आरम्भ किये जा सकते हैं कार्यों के छोटे स्वरूप को देखते हुए बड़े परिणाम की आशा सामान्य बुद्धि से नहीं की जा सकती, किन्तु यदि इन्हें कार्यान्वित किया जा सके तो प्रतीत होगा कि इन प्रयत्नों के सम्मिलित परिणाम कितने सुखद प्रतिफल प्रस्तुत करते हैं।

वा. ४८/१.८६

(ग) गुण जो परिवार के हर सदस्य में अनिवार्यतः विकसित करें

(१) सुदृढ़ दिनचर्या:-परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों को अपनी जीवन-चर्या बड़ी सुसंतुलित रखनी चाहिए। हाथी- नदी या तालाब में उतरता है तो हर कदम आहिस्ता से टटोल-टटोल कर आगे बढ़ाता है। पारिवारिक जीवन में बुराइयों का समावेश न हो, इसके लिए प्रत्येक सदस्य की विशेषतया गृहपति एवं गृहिणी की दिनचर्या ऐसी होनी चाहिए, जिसमें गन्दगी और फूहड़पन न दिखाई दे।

प्रधान रूप से ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी भी सदस्य के मस्तिष्क में दूषित प्रभाव डालने वाला कार्य हम न करें, हमारी दिनचर्या कुछ इस तरह व्यवस्थित की हुई होनी चाहिए। प्रातःकाल सोकर उठने से लेकर

सायंकाल सोने तक हम प्रत्येक कार्य हाथी की तरह टटोल-टटोल कर करें और इस बात की सावधानी रखें-कहीं कोई ऐसा गड़्ढा न आ जाय, ऐसी बुराई न बन जाय, जिससे बाद में पश्चाताप करना पड़े। इस प्रकार की सावधानी, आहार-विहार, वार्तालाप, चलने, उठने, बैठने के प्रत्येक तौर-तरीके में होनी चाहिए। सुदृढ़ दिनचर्या परिवार निर्माण का प्रथम सूत्र है।

(२) कर्तव्य पालन:-परिवार छोटा रहे तो कुछ हर्ज नहीं, पर उसे व्यवस्थित रखना चाहिए। घर का कौन सा बच्चा कहाँ है ? क्या कर रहा है ? अमुक व्यक्ति किस काम में लगा है ? उसके लिये भोजन पहुँचा या नहीं ? किसी को मानसिक या शारीरिक कष्ट तो नहीं ? इन सब बातों की आवश्यक जानकारी और उनकी पूर्ति समय पर यथारीति होती रहे। अव्यवस्था ही परिवारों में अशांति उत्पन्न करने में डाकिन का काम करती है। उससे दूर रहना आवश्यक है। घर के बड़े बुजुर्गों, माताओं का एक-दूसरें के प्रति यह कर्तव्य है कि वे घर की हर व्यवस्था का पाबन्दी के साथ पालन करते-कराते रहें।

(३) सुसंस्कृत वेश-भूषा:-मानवीय स्वभाव की छोटी-छोटी बातें भी सामूहिक तौर पर बड़ी प्रभावशाली होती हैं। आज जो सर्वत्र चारित्रिक पतन के दृश्य दिखाई देते हैं, उनका एक कारण विकृत वेश-विन्यास माना जाता है। बाल-बुद्धि के लोग शारीरिक सौन्दर्य और रूप का आकर्षण बढ़ाने के लिए तरह-तरह के वेश-विन्यास और रूपसज्जा किया करते हैं। इससे आत्म-संतोष तो क्या होता है, भड़कीला वेश-विन्यास और बाहरी चमक बढ़ाने में मनुष्य के चरित्र का ही पतन होता है। अभारतीय वस्त्रों और सजावट से बचकर रहने में ही अपना कल्याण है, अपने धर्म अपनी संस्कृति के अनुरूप केश, वस्त्र और वेश-भूषा में चरित्र और आत्मिक-बल बढ़ाने वाली सादगी एवं शालीनता पाई जाती है, उसका परित्याग करना अशोभनीय ही कहा जा सकता है।

वा. ४८/४.५९

वस्त्र पहनने की जो परम्परा पूर्व पुरुषों की थी, वह बड़ी सरल और उपयोगी रही है। पुरुष धोती, कुर्ता, जकेट, टोपी तथा स्त्रियाँ साड़ी और सलूके पहनती रही हैं। यह चयन सादगी और सरलता की दृष्टि से तो श्रेष्ठ है ही, इसका सम्बन्ध स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक रीति से बुराइयों से बचाने वाला भी रहा है। हमें अपनी वेश-भूषा पर गर्व करना चाहिए और भड़कीले, बचकाने वेश-विन्यास से सदैव बचना चाहिए। घर में ऐसी फैशन-परस्ती को प्रवेश न करने देना चाहिए, जिसे उच्छृंखलता या रंगीली-शौकीनी कहा जा सके।

(४) सात्विक आहार:-मनुष्य के स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति का निर्माण आहार पर निर्भर है। भारतीय मनीषियों ने स्वास्थ्य, सद्गुण और सदाचार की दृष्टि से सदैव सात्विक भोजन पर ही जोर दिया है। माँस, मदिरा, मछली, अण्डे, तीखे, कसैले, चटपटे भोजन का यहाँ सदैव बहिष्कार किया गया है, क्योंकि ये पदार्थ आत्मिक दुर्बलता पैदा करने वाले होते हैं, हमें गीता के इस आदेश का पालन करना चाहिए-

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः ॥

सात्विक आहार ही आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति की वृद्धि करने वाला होता है, इसके विपरीत राजसिक आहार, चाहे वह अधिक स्वादिष्ट तथा चटपटे क्यों न हों, प्रारम्भ में अच्छे-भले ही लगें, पर वे अन्त में रोग, दुःख और चिन्ता उत्पन्न करने वाले ही सिद्ध होते हैं। सात्विक भोजन से आध्यात्मिक भावों की वृद्धि होती है। यह विशेष रूप से महिला सदस्यों का कर्तव्य है कि वे सरल, सुपाच्य और सादा भोजन तैयार करें। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई चोरी से छिपकर बाजार की गन्दी चीजें न खायें। इससे स्वास्थ्य की हानि तो है ही, नैतिक दृष्टि से भी यह चोरी अथवा ओछापन माना जाता है।

अच्छा, पौष्टिक भोजन लोगों को घर पर ही मिले, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।
(५) सुमधुर वाणी:- मधुर, शान्त एवं पवित्र शब्दों का उच्चारण करने वाले व्यक्ति अपने शब्दों द्वारा न केवल अपने विचारों, भावनाओं एवं संस्कारों को परिमार्जित करते हैं, अपितु अन्य परिजनों को प्रभावित करके उनके जीवन में भी नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा व नया मोड़ उत्पन्न करते हैं। पारिवारिक जीवन में इसका बड़ा महत्त्व है, इससे परिवार में स्नेह और प्रेम बना रहता है। हमें अमृतमय वाणी बोलने के साथ ही कम बोलने का भी अभ्यास बनाना चाहिए।

शब्दों के सदुपयोग से सम्बन्ध जुड़ते हैं, कटु वचनों से कलह और उत्पात बढ़ता है। अपने परिवारों की सुस्थिरता के लिए इस सूत्र को सदैव ध्यान में रखना चाहिए और भूलकर भी कोई अप्रिय बात मुख से नहीं निकालनी चाहिए। अधिकारवश कठोर वचन निकालना भी बुरा होता है, चाहे बच्चे से ही कुछ कहा जाय, पर शांत-संयम एवं यथाशक्ति नम्र वाणी का ही प्रयोग किया जाना अच्छा होता है।

(६) शालीनता:- छठवें शील- शालीनता को शीलों का सार भी कह सकते हैं। शिष्टता, सज्जनता, विनम्रता, साधुता जैसे सद्गुणों का समुच्चय शालीनता है।

इसके चिह्न हैं- ईमानदारी, प्रामाणिकता, नागरिकता, मर्यादा का निर्वाह। शालीनता को मात्र शिष्टाचार समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। शिष्टाचार यदि अतिरिक्त शालीनता से रहित हो तो वह रूखा कर्मकाण्ड या 'मैनरिज्म' बनकर रह जाता। शालीनता न केवल शब्दों से, अपितु हावभाव समेत सम्पूर्ण आचरण से अभिव्यक्त होती है और सीधे हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है।

(७) संस्कार-स्रोत-आस्तिकता:- ईश्वर की उपासना से बुद्धि की सूक्ष्म ग्रहणशीलता और संस्कारों की संवेदनशीलता जाग्रत होती है। फलस्वरूप लोगों के भौतिक मन आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ जाते हैं। शांति, सुख, स्थिरता और समृद्धि इन चारों के लिये इस प्रकार का जीवन आवश्यक है, जो केवल आस्तिकता से ही संभव है। परिवार तभी नष्ट होते हैं, जब उनमें स्वार्थ और भौतिकता घुस जाती है। उससे बचने के लिए परिवारों में धार्मिक वातावरण बनाये रखना आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में पग-पग पर पर्व, संस्कारों के प्रचलन का उद्देश्य भी यही रहा है कि लोग आत्म-परायण बने रहें। मनुष्य जीवन का ध्रुव सत्य भी यही है।

पारिवारिक जीवन में सरलता और सत्य-निष्ठा बनाये रखने के लिये हम लोगों को सच्चे अर्थों में आस्तिक रहना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत आत्म-कल्याण की सम्भावनायें तो सन्निहित हैं ही साथ ही पारिवारिक समुन्नति और द्वेष-दुर्गुणों से बचे रहने का आधार भी यही है।

(८) स्वच्छता और सफाई:- गन्दगी एक दुर्गुण है, उससे मनुष्य का जीवन दीन-हीन और मलिन बनता है। रोग की परिस्थितियाँ सामने आती हैं। इससे बचने का आसान तरीका यही है कि प्रत्येक दैनिक कार्य में, घर, बाहर, आँगन, द्वार, दीवार, छत इन सबकी सफाई और स्वच्छता का ध्यान रहे। अपने बच्चों के, धर्म-पत्नी के, भाई-भाभी सबके कपड़ों की स्वच्छता पर एक दृष्टि अवश्य रखनी चाहिए। अपने आप में सभी सदस्यों की स्वच्छता और सफाई का महत्व मालूम होना चाहिए। इसकी उपेक्षा करने से स्वास्थ्य पर अहितकर प्रभाव पड़ सकता है, अतः शरीर, वस्त्र, निवास आदि से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु, हर क्रिया में स्वच्छता का ध्यान रहना चाहिए। सप्ताह या महीने में एक दिन सामूहिक सफाई की व्यवस्था भी रहनी चाहिए। इससे सबके स्वास्थ्य और आरोग्य लाभ की आशा बनी रहती है।

वा. ४८/४.६०

(९) शारीरिक श्रम:- आजकल लोगों की ऐसी धारणा हो गई है, जो जितनी अधिक आराम की जिन्दगी बिताता है, वह उतना ही बड़ा है, अब इसे बदलना

चाहिए। वस्तुतः मनुष्य की महत्ता का आधार यह है कि वह कितना श्रम करता है? अपने घर के लोग श्रम से जी चुराते हों तो यह दुर्भाग्य की बात ही होगी। यदि कोई इसी में अपना सौभाग्य समझता है तो उसका बड़प्पन एक दिन धूल में मिलता दिखाई देगा। बापू के शब्दों में- “किसी तरह का परिश्रम न करने वाला व्यक्ति संसार की किसी वस्तु का उपभोग करता है तो यह चोरी है।” यह तो व्यक्तिगत आत्म-कल्याण की दृष्टि से हुआ, सामूहिक रूप से गृहस्थ की समुन्नति बाहरी झगड़ों से, रोग-शोक से बचने के लिए भी श्रमशीलता आवश्यक है। काम से जी चुराना एक बहुत बड़ा दुर्गुण है। परिवार के ऐसे सदस्य ही घरों में कठिनाइयाँ उत्पन्न करते हैं। अतः पहले से ही घरों का वातावरण श्रमप्रेरक होना चाहिए। आलस्य और प्रमाद पारिवारिक संगठन के दो रावण और मेघनाद सरीखे शत्रु हैं, इनसे बचकर ही पारिवारिक सुख-समुन्नति की रक्षा सम्भव है। लोकमान्य तिलक कहा करते थे- “संसार में एक ही वस्तु को मैं परम पवित्र मानता हूँ, वह है मनुष्य का अपनी विकास यात्रा के लिये अनवरत श्रम।” परिवार के प्रत्येक सदस्य में एक-दूसरे के प्रति सद्भावनायें रखकर ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्भावनाओं से दूर रहकर निष्काम भाव से श्रमरत रहना जीवन की सर्वोच्च साधना है। इससे कभी विमुख नहीं होना चाहिए।”

(१०) समय का सदुपयोग:- समय का विभाजन, निर्धारण और उसका मुस्तैदी के साथ पालन, यह ऐसा सद्गुण है जो महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वाह में असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होता है। घर के हर सदस्य को इस दिशा में उपेक्षा न बरतने के लिए कहा, समझाया जाना चाहिए। हर किसी की दिनचर्या निर्धारित होनी चाहिए और जब तक कि और असाधारण अड़चन न आ जाय तब तक उसका पूरी मुस्तैदी के साथ पालन करने की आदत डालनी चाहिए।

रात को जल्दी सोने और प्रातः जल्दी उठने की आदत इतनी अच्छी है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। अक्सर लोग रात को दस बारह बजे तक गपशप करते रहते हैं और सबेरे बहुत देर से धूप चढ़े उठते हैं। ऐसे लोग उस बहुमूल्य अवसर को गँवा देते हैं जो प्रातः जल्दी उठकर काम करने पर दूनी, चौगुनी सफलता के रूप में मिलता है। घर के प्रमुख सदस्य यदि अपने नियम इस प्रकार के बना लें तो ऐसा वातावरण बनने लगे जिसके प्रभाव से सारे सदस्य उसी क्रम में सहज ही ढल जावें।

वा. ४८/२.६७

आलस्य में इधर-उधर समय गँवाना पाप ही कहा जायेगा। उन्नति के लिये और पारिवारिक जीवन में प्राण और प्रसन्नता जागृत रखने के लिये धन की

आवश्यकता होती है, वह समय के सदुपयोग से ही सम्भव है। समय ही धन है, उसे व्यर्थ में कभी भी नहीं गँवाना चाहिए।

(११) शिक्षा:- पारिवारिक जीवन को सुविकसित करने के लिये जिस मानसिक विकास की आवश्यकता होती है, वह है- 'शिक्षा'। शिक्षा प्राप्त करके उसका लोग सदुपयोग न कर पाते हों, यह दूसरी बात है, पर जब भी कभी ज्ञान का प्रकाश मनुष्य की अन्तरात्मा में प्रवेश करता पाया गया, देखा गया है कि शिक्षा उसमें प्रमुख माध्यम होता है। आज के विज्ञान के युग में तो विचार का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है वह भी शिक्षा के द्वारा ही संभव है। परिवार के बच्चों की शिक्षा को हम अनिवार्य समझें। एक भी बालक निरक्षर न रहे, पर यह भी ध्यान रहे कि अभी जो अशिक्षित प्रौढ़ हैं उनके विकास का क्रम भी अधूरा न रहे। इसके लिये परिवार के प्रत्येक परिजन को शिक्षित करने की जरूरत है। हमारे देश में गृहस्थ की दुर्दशा के कारणों में अशिक्षा मुख्य है और वह भी विशेष रूप से स्त्रियों की। अतएव हर शिक्षित परिजन का यह कर्तव्य है कि वह कम से कम अपने परिवार, अपनी धर्मपत्नी को तो साक्षर बनाने का कार्यक्रम निश्चित रूप से बनायें ही।

(१२) स्वाध्याय:- मनोविकास के लिए जो महत्त्व शिक्षा का है, आत्म-विकास के लिए वही स्वाध्याय का। यह दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहें तो गृहस्थ-जीवन में ऋषियों के जीवन जैसी विशेषताएँ इस युग में भी उपलब्ध की जा सकती हैं। हमारे परिवार समाज का अंग होते हैं, दूसरे वर्ग के लोगों के साथ मिलना-जुलना, बोलना-बैठना प्रायः बना ही रहता है, ऐसी स्थिति में दूसरों का अच्छा-या बुरा प्रभाव अपने लोगों पर न पड़े, यह नितान्त संभव नहीं। बुराइयों के अन्धकार से बचने के लिए स्वाध्याय का प्रकाश अनिवार्य है। ऐसा कोई भी घर न हो, जहाँ एक छोटा-सा 'ज्ञान मंदिर' न रहे। लोगों को उत्तम ज्ञान और चरित्र-निर्माण विषयक साहित्य घर में उपलब्ध होता रहे और उसके स्वाध्याय का क्रम भी चलता रहे, यह बहुत जरूरी है। विशेषकर आज की परिस्थितियों में जबकि बाहरी आडम्बरपूर्ण वातावरण से अपने परिजनों के प्रभावित हो जाने का खतरा बढ़ा हुआ है।

वा. ४८/४.६१

(१३) सेवा और सहानुभूति:- परिवारों की शक्ति और समुन्नति के लिये परिजनों को सहयोगी और सेवा-भावी होना आवश्यक है। विपत्ति के समय एक दूसरे की सहायता को अधिक और व्यक्तिगत सेवा के अधिकार को कम महत्त्व देना, दुःख में सहानुभूति, रोगादिक कष्टों में, शादी आदि उत्सवों में हाथ बँटाना, कारुणिक अवसरों पर शांति और धैर्य देना यह सब मानवीय सेवायें हैं, इनसे

आत्मीय सम्बन्धों में स्नेह और प्रगाढ़ता बढ़ती है। इसमें किसी प्रकार की लज्जा या संकोच नहीं अनुभव करना चाहिए। अपनी धर्मपत्नी के प्रति इसलिए उपेक्षा का भाव न रखिये कि लोग आपका उपहास करेंगे। कर्तव्य का पालन न करना, एक तरह का पाप है, अतः सेवा का अभ्यास करते हुए, सहानुभूति के नियम का पालन करते हुए परिजनों को भी साथ-साथ उसकी प्रेरणा देनी चाहिए। मिल-जुलकर काम करने से बड़े-बड़े काम सिमट जाते हैं। एक-दूसरे के प्रति सेवा और सहानुभूति रखने से कठिन परिस्थितियाँ भी संतोष पूर्वक कट जाती हैं। असहायों और आवश्यकताओं के समय परिजनों के काम आने के नैतिक कर्तव्य और उसके ढंग का ज्ञान हर सदगृहस्थ को होना चाहिए।

(१४) प्रगतिशीलता:- प्रगतिशीलता दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। उत्कर्ष की आकुलता ही प्रगतिशीलता है और घिसी-पिटी रूढ़ियाँ, विकृतियों तथा प्रचलित ढरों में लिपटे-लुढ़कते रहना ही संकीर्णता है। प्रगतिशील दृष्टिकोण के अभाव में साधन सुविधाएँ पतन की ओर ले जाती हैं और अभावहीनता को जन्म देती हैं, जबकी प्रगतिशीलता पुरुषार्थ, उत्साह तथा उत्कर्ष की आकांक्षा को जन्म देती है, इसलिए हर सदस्य के दृष्टिकोण को प्रगतिशील बनाने की सजगता बरती ही जानी चाहिए। तृप्त महत्वाकांक्षाएँ खीझ और निराशा ही पैदा करती हैं। प्रगतिशीलता का अर्थ है-हवाई उड़ानें उड़ने से मन को रोकना तथा कल्पना शक्ति को योग्यता संवर्द्धन की दिशा में मोड़ना। सफलताओं की लालसा तभी सार्थक है, जब उसकी उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए प्रबल प्रयास किये जाएँ। उस दिशा में योग्यता भी विकसित की जाए। अतः प्रगतिशील दृष्टिकोण का प्रमाण है निर्धारित लक्ष्य के लिए वांछित योग्यता की प्राप्ति के सजग प्रयासों में प्रवृत्त रहना। ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिए कहाँ, किस प्रकार, क्या किया जा सकता है, यह पैना दृष्टिकोण, गहरी सूझबूझ परिवार के हर सदस्य में विकसित करना, उसे साधन सुलभ कराने से भी अधिक आवश्यक है।

(१५) मितव्ययिता:- परिवार के हर व्यक्ति को मितव्ययी होना चाहिए। खर्च उतना ही करना चाहिए, जो अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जो खर्च किया जाय बजट बनाकर खर्चा जाय। एक-एक पाई का हिसाब हर सदस्य लिखे और यह देखे कि जो पैसा उसने खर्चा वह जीवनोत्कर्ष के लिये सदुपयोग के रूप में लगा या नहीं? व्यसन, अहंकार, प्रदर्शन, शेखीखोरी या ऐसी बातों में खर्च करने पर प्रतिबन्ध होना चाहिए जिनसे भौतिक या आत्मिक प्रगति में कोई योगदान नहीं मिलता। मितव्ययी व्यक्ति ही सदाचारी, ईमानदार और खरा हो सकता है

जिसे फिजूलखर्ची की आदत है, उसे आज नहीं तो कल अनैतिकता का पल्ला पकड़ना पड़ेगा। इसलिये फिजूलखर्ची की बुरी आदत से परिवार के हर सदस्य को बचाया जाना चाहिए। उपर्युक्त गुण यों तो सामान्य भी हैं और अधिकांश व्यक्ति इन्हें जानते भी हैं, किन्तु गुणों का लाभ मात्र जानने से नहीं, उनको जीवन में उतारने, अभ्यास एवं स्वभाव में लाने से ही मिलता है। गुणों का विकास, स्वभाव का परिवर्तन अनायास ही नहीं हो जाता। उसके लिए व्यवस्थित क्रमबद्ध, सतत् प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। परिवार के प्रमुख पुरुष अथवा नारी इनका समुचित महत्त्व समझें तथा इन्हें मूर्तरूप देना चाहें तो कोई कारण नहीं कि परिवार का हर सदस्य इनसे सम्पन्न न हो जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि गुणी परिवार में सुख-शांति का अभाव कभी नहीं रह सकता।

वा. ४८/४.६२

फिजूलखर्ची की बुरी आदत से स्वयं बचना चाहिए और दूसरों को बचाना चाहिए। धन कमाना सरल है, उसका सही उपयोग कर सकना विवेकशील और दूरदर्शी लोगों के लिए ही संभव होता है। आमतौर से लोग अपने समय, चिन्तन एवं धन का अनुपयुक्त कार्यों में अनावश्यक अपव्यय करते हैं। फलतः दोष-दुर्गुण बढ़ते जाते हैं और अभाव के कारण उन साधनों से वंचित रहना पड़ता है जो प्रगतिशील जीवनयापन के लिए नितान्त आवश्यक थे। कृपण बनना तो बुरा है, आवश्यक कामों में खर्च करना ही चाहिए, पर अपव्यय एक पाई का भी सहन न किया जाय। एक क्षण भी आलस्य, प्रमाद में बर्बाद न किया जाय और हर घड़ी उपयोगी कामों में लगे रहा जाय, एक पैसा भी अनुपयुक्त कामों में खर्च न करके अपने समस्त साधनों को उपयोगी सत्प्रयोजनों में लगाते रहा जाय तो दुहरा लाभ होगा। समय और धन की बर्बादी से जो अनेकानेक दोष-दुर्गुण उत्पन्न होते हैं, उनसे बचे रहना सम्भव हो जाय और यों उन दोनों महाशक्तियों के सत्प्रयोजनों में नियोजित रहने पर जो एक से एक बढ़कर लाभ मिलते हैं, उनमें निरन्तर बढ़ोत्तरी होती चली जायगी। इसी दूहरे लाभ का खाई और मीनार जितना अन्तर सद्गुणों और दुर्गुणों के बीच देखा जाता है। परिवार के हर सदस्य को इसी उपयोगी रीति-नीति को अपनाने की प्रेरणा देनी चाहिए।

वा. ४८/२.६६

हर परिवार को स्नेह, सौजन्य, सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास करने की प्रयोगशाला के रूप में विकसित होना चाहिए, घर का वातावरण ऐसा बनना चाहिए, जिसमें रहकर हर व्यक्ति क्रमशः अधिक सुसंस्कारी बनता चला

जाय। सम्पन्नता के बिना काम चल सकता है, पर शालीनता के बिना तो केवल दुर्गति ही हाथ रह जाती है। बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण भले ही न हों, कीमती भोजन भले ही न मिले, पर ईमानदारी, उदारता जैसे मानवोचित सद्गुणों की सम्पदा को अधिकाधिक मात्रा में सुसज्जित रहने का अवसर मिलना चाहिए। इतना बन पड़े तो समझना चाहिए कि परिवार को सच्चे अर्थों में सुसम्पन्न बना लिया गया।

१६. सुव्यवस्था:- यह भूल नहीं जाना चाहिए कि प्रगति का घोंसला छोटी-छोटी आदतों के तिनकों से ही बुना जाता है। व्यवस्था, बुद्धि का प्रारम्भिक अभ्यास यदि घर की परम्पराओं में सम्मिलित करके नहीं रखा गया है तो यह असावधानी आगे चलकर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निबाहते समय भी आड़े आवेगी और उपेक्षावृत्ति के कारण रहने वाली छोटी-छोटी असावधानियाँ इकट्ठी हो-होकर व्यक्ति को फूहड़, निकम्मा, गन्दा और असफल बनाती चली जायेंगी। अस्तु नौकरों के रहते हुए भी, स्त्रियों के सब कुछ कर लेने में समर्थ होते हुए भी घर की व्यवस्था एवं स्वच्छता प्रयोजन में घर के प्रत्येक सदस्य को योगदान देना चाहिए। वा. ४८/२.४७

१७. स्वावलम्बन:- गृहस्थ-जीवन की सुव्यवस्था के लिये धन कितना आवश्यक है? यह बात सब जानते हैं। परिजनों की योग्यता बढ़ाने के लिये, उन्हें खुशहाल रखने, अच्छा खिलाने और अच्छा पहनाने का एकमात्र साधन है। धन के अभाव में गृहस्थी की अनेक आवश्यकतायें अधूरी रह जाती हैं। अविकसित परिवार में किसी तरह की चेतना नहीं होती, किसी तरह का आनन्द नहीं होता, पर सीमित व्यवसाय, सीमित श्रम में धन भी कम ही उपलब्ध हो सकता है। समर्थ-सम्पत्तिवान् बनने के लिये समय का सदुपयोग आवश्यक है। सब सदस्यों को श्रमशील होना चाहिए, साथ ही समय के एक-एक क्षण का लाभ अपनी आर्थिक योग्यता बढ़ाने में लगाना चाहिए। छोटे-छोटे कुटीर उद्योग, बागवानी, शाक उत्पादन आदि में समय लगाकर सहायक आजीविकायें उपलब्ध हो सकती हैं। प्रारम्भ में यह बातें छोटी-छोटी लगती हैं, किन्तु सद्गुणों के यह बीज विकसित होने पर जब अपना चमत्कार दिखाने लगते हैं तब पता पड़ता है कि इन उपेक्षित समझे जाने वाले नियमों का कितना महत्व है। वा. ४८/४.६१

१८. उदार सहकारिता:- गृह कार्यो में एक दूसरे का सहयोग करें। मिल-जुलकर काम करने में वह जल्दी तो होता ही है, साथ ही एक खेल या मनोरंजन भी बन जाता है। इससे समता एवं सहयोग की प्रवृत्ति सुदृढ़ होती है। खाते समय पर यदि सब लोग मिल-जुलकर साथ बैठकर खाया करें तो उससे आनन्द की अभिवृद्धि ही होगी। खाने-पीने की अच्छी चीजों में अपना हिस्सा कम और

दूसरों का ज्यादा रखना चाहिए। छिप कर कुछ भी न खाया जाय, जो भी हो मिल-बाँटकर खायें। कोई अपने लिए अधिक सुविधा की माँग न करे, वरन् दूसरों को क्या अभाव है, उसका ध्यान रखे। प्रेम व्यवहार की वास्तविकता इन छोटी-छोटी उदार व्यवहार की बातों से ही परिपुष्ट होती है और परस्पर सुदृढ़ स्नेह-सद्भाव को पोषण मिलता है।

एक दूसरे के काम में हाथ बटाने की सहजवृत्ति परिवार के हर सदस्य में होनी चाहिए। अधिकारों की माँग में पीछे, कर्तव्य पालन में आगे रहने की आदत से अपने को सबका प्यार और सम्मान मिलता है। अपने लिए कम दूसरों के लिए अधिक का दृष्टिकोण हर प्रकार से सराहनीय है। हारी-बीमारी में सेवा-सुश्रूषा का पूरा ध्यान रखा जाय। बड़े क्लास वाले छात्र अपने छोटे भाई-बहिनों को पढ़ाने में सहायता करें। खेलने-धूमने में बड़े-छोटों को साथ लेकर चलें। अपने स्वार्थों की तरह परिवार का हर सदस्य दूसरे सदस्यों का ध्यान रखे। एक दूसरे की प्रगति और सुविधा में सहायता करें, तो उस सहयोगी वातावरण में स्वर्गीय तत्वों का सृजन होगा। सभी प्रसन्न रहेंगे और समुन्नत बनेंगे।

वा. ४८/१.४०

(घ) परिवार निर्माण के अन्य महत्त्वपूर्ण सूत्र

परिवार को सुख-शांति का आंगार बनाने का एक-मात्र स्वर्णिम सूत्र यही है कि उसमें अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के स्थान पर जीवन-साथी के प्रति अपने दायित्वों को तत्परतापूर्वक निबाहने की नीति अपनायी जाय। यह नीति एक ही पक्ष द्वारा अपनायी जाती रहे तो भी परिवार बसाने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा, उचित तो यही है कि दोनों पक्ष-पति व पत्नी इस नीति को उदारतापूर्वक अपनाएँ, तब परिवार एक दुःखद अनुभव नहीं रह जायगा। वह परमात्मा का अनुग्रह और समाज का उपहार लगने लगेगा।

दोषों की भाँति गुण भी हर किसी में होते हैं। अपने परिवार के जिन व्यक्तियों को हम दोषयुक्त देखते हैं उनमें भी कुछ गुण होंगे ही, यदि उन गुणों पर अधिक ध्यान दिया जाय, बढ़ाया और प्रोत्साहन दिया जाय तो निश्चय ही उनकी मात्रा बढ़ेगी। बहुत चर्चा करने से दोष भी बढ़ते हैं और गुण भी बढ़ते हैं। दोषों की चर्चा कम करके गुणों को कहा, सुना और समझा जाय तो निश्चय ही यह सुधार का बहुत अच्छा तरीका सिद्ध होगा। उपेक्षा करने से दोष घट जाते हैं। दोषों की चर्चा बार-बार सुनने से मनुष्य हताश होता है, अपने को तिरस्कृत

अनुभव करता है और धीरे-धीरे निर्लज्ज एवं ढीठ बनता चला जाता है। कभी एकान्त में बहुत आदर और प्रेमपूर्वक वातावरण में दोषों की ओर ध्यान दिलाना, जिन परिस्थितियों में उसे उन भूलों का शिकार बनना पड़ा उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करना और अन्ततः उन्हें छोड़ने की आवश्यकता एवं उपयोगिता बताना लाभदायक हो सकता है। उन भूलों को छोड़ने के लिए कोई व्यावहारिक तरीका भी सुझाया जाना चाहिए। इस प्रकार किसी की बुराइयों को घटाने या हटाने में सुविधा होगी, किन्तु यदि उसे सबके सामने तिरस्कृत एवं लांछित किया जायगा तो वह भूल को छोड़ने की अपेक्षा चिढ़कर और उल्टा आचरण करेगा। दबाव से तत्काल किसी को विवश किये जाने पर केवल सामयिक रोकथाम हो सकती है। दबा हुआ असन्तोष एवं प्रतिरोध किसी अन्य रूप में फूटता है तो वह और भी बुरा पड़ता है। दोषों को सुधारने के लिए बहुत ही धैर्य और संयम की आवश्यकता है।

प्रेम और सेवा, सहानुभूति से लोगों के मन पर अपनी छाप छोड़ने वाले लोगों के अनुरोध पर कठोर मन वाले लोगों का भी हृदय परिवर्तन होते देखा गया है। सहनशीलता, क्षमता और उदारता के आधार पर बुरों को भला बनाया जा सकता है। आतंक, गाली-गलौज, मार-पीट, दबाव, निन्दा, दुराग्रह के आधार पर क्रिया तो रुक सकती है, पर मन नहीं बदल सकता। जिसका मन नहीं बदला वह सुधरा कहाँ? भीतर ही भीतर सुलगते रहने वाली चिंगारी तो कभी विस्फोट के रूप में भी प्रकट हो सकती है। इसलिए सुधार के कार्य में धैर्य रखने, प्रतीक्षा करने और क्रमिक परिवर्तन होने का तरीका ही अच्छा है। हमारी इच्छानुसार दूसरे लोग तुरन्त सुधर जायें ऐसी अधीरता से लाभ नहीं हानि ही होती है।

जो लोग अपने साथ सम्बद्ध हैं उनको साथ लेकर चलने के लिए उदारता और सहनशीलता का भारी महत्व है। शंकर जी को सबसे बड़ा देवता इसीलिए माना गया है कि उनके समाज में भूत, पत्नी, सर्प, सिंह सभी के लिए आदरपूर्ण स्थान प्राप्त है। जिनके मस्तक पर ज्ञान की गंगा और प्रेम का चन्द्रमा विराजमान होता है सचमुच वे बड़े उदार होते हैं और अपने साथ खोटे-खरे सभी को निवाह लेते हैं। कितने ही उदारहृदय व्यक्ति अपनी फूहड़, कर्कशा, कुरूप, रोगिणी, मूर्खा यहाँ तक कि शीलरहित पत्नी को भी बड़े आदरपूर्वक जीवन भर निवाहते हैं और अपनी ओर से कर्तव्य पालन में रत्तीभर भी कमी नहीं रहने देते। इसी प्रकार उदार महिलाएँ अपने पतियों में अनेक दोष रहते हुए भी उन्हें सहन करती हुई, निवाहती हुई, जिन्दगी पूरी कर लेती हैं। यह बड़प्पन का चिह्न है। मनुष्यता का गौरव इस प्रकार की सहनशीलता में ही होता है।

कई बार बुढ़ापे की कठिनाइयों के कारण माता-पिता चिड़चिड़े हो जाते हैं और अनुपयुक्त बातें करने लगते हैं। समझाने-बुझाने में अपना अपमान मानते और खिन्न होते हैं। इन परिस्थितियों में सहनशीलता ही सबसे उपयोगी नीति सिद्ध होती है। उनकी बातों को धैर्य और सहानुभूति के साथ सुना जाय और जितना सम्भव हो उतना आदेश तुरन्त मानकर बाकी बात को पीछे के लिए छोड़ दिया जाय तो तात्कालिक झंझट तुरन्त शान्त हो सकता है। **वा. ४८/२.११**

बड़े-बूढ़ों का सम्मान करना, उनकी आवश्यकताओं, समस्याओं का प्रबन्ध करना, समय-समय पर सम्मान प्रदर्शित करना दो कारणों से आवश्यक है। एक तो यह कि उनके द्वारा पिछले दिनों की गई सेवा सहायता का ऋण उतारना है। दूसरे यह कि नई पीढ़ी को दृश्यमान प्रशिक्षण मिलता है कि बड़ों के साथ कैसा व्यवहार करना है। आज का जवान कल बूढ़ा बनने वाला है, तब उसे अपनों से छोटों की सहायता आवश्यक होगी। वह समय पर उपलब्ध होती रहे इसके लिए छोटों के सामने वह आदर्श उपस्थित करने चाहिए, जिसे देखकर वह यह सीखें कि बड़ों के साथ किस प्रकार बर्ताव एवं शिष्टाचार का निर्वाह करना चाहिए। जो अपने बड़ों की उपेक्षा करते हैं समय आने पर उन्हें उसी प्रकार का तिरस्कार सहना पड़ता है। **वा. ४८/२.३०**

कई बच्चे बड़े नटखट होते हैं, उनके नये रक्त की चंचलता कुछ न कुछ करने को विवश करती है। अनुभव के अभाव में जो करते हैं वह गड़बड़ जैसा बन जाता है। इन परिस्थितियों में बच्चों पर बरस पड़ना, उन्हें बुरी तरह धमकाना या तिरस्कृत करना, अपना माथा ठोकना और खिन्न होना उचित नहीं। उनकी कुछ बातों को अनदेखा-अनसुना किया जा सकता है, कुछ को हँस-मुस्करा कर विनोद के रूप में लिया जा सकता है, कुछ के लिए उन्हें मीठी झिड़की दी जा सकती है और कुछ ऐसा भी सुझाया जा सकता है कि वे किसी उपयोगी खेल या कार्य में अपनी चंचलता को प्रयुक्त कर सकें। इस प्रकार बालकों के उधम से नाकोंदम रहने वाली समस्या सहनशीलता के आधार पर बहुत ही हलकी और छोटी प्रतीत होने लग सकती है। शरीर में नये खून की तेजी और मस्तिष्क में अनुभव की कमी होने के कारण अक्सर घर के वयस्क लड़के-लड़कियाँ कुछ न कुछ ऊट-पटाँग करते रहते हैं। उनमें जोश तो होता है, पर होश नहीं। पच्चीस वर्ष से कम की आयु 'गधा पच्चीसी' कही जाती है। इस अवधि में होशियार बच्चों में भी न्यूनाधिक गधापन बना रहता है। इस उम्र के बच्चों पर काबू रखना भारी चतुरता और दूरदर्शिता का काम है। समझाना, धमकाना, प्यार करना, प्रोत्साहन

देना, सहन करना इन सभी साधनों का समन्वय करके नवयुवकों का मार्गदर्शन सम्भव होता है। राजा जिस प्रकार साम, दाम, दंड, भेद की नीति के सहारे प्रजा पर शासन करता है उसी प्रकार परिवार का संचालन करने के लिए गृहपति में आवश्यक दूरदर्शिता रहनी चाहिए।

वा. ४८/२.१२

शिष्टाचार की पाठशाला परिवार

शिष्टाचार का मूल मंत्र है-अपनी नम्रता और दूसरों का सम्मान। इस कसौटी पर जो जितना खरा उतरता है उसे उतना ही सभ्य-सुसंस्कृत समझा जायेगा। जो अपना अहंकार जताते हैं और दूसरों का अपमान करते हैं वे असभ्य गिने जाते हैं। आवश्यक नहीं कि ऐसा घटिया प्रदर्शन मारपीट से, गाली-गलौज से ही किया जाय-ऐसी दुर्गन्ध साधारण वार्तालाप में भी भरी हो सकती है। कई व्यक्ति अपनी शेखी बघारते रहने के आदी होते हैं। उनका यह करना तो अत्युत्साह की तरंग में करना होता है, पर प्रकारान्तर से यह भाव रहता है कि अपने बड़प्पन की इतनी बढी-चढी छाप छोड़ें, जिसकी तुलना में सुनने वाले अपने को पिछड़ा हुआ अनुभव करने लगें। यह अप्रत्यक्ष अहमन्यता है जो सुनने वालों को अखरती है जिससे उसकी धाक स्वीकार करने की अपेक्षा उसे मन ही मन शेखीखोर मानने लगते हैं और उसके कथन पर अविश्वास करने लगते हैं।

परिवार में शिष्टता का वातावरण प्रचलित रहना चाहिए। सभी सदस्य एक दूसरे को सम्मान दें। उचित मर्यादा में प्रशंसा करें और प्रोत्साहन भी दें। दिल तोड़ने वाली, निराश करने वाली बात न कहें। सम्मान से सद्भाव बढ़ता है, शिष्टता बरतने वाला सम्मानित होता है और अनायास ही दूसरों का सद्भाव-सहयोग अर्जित करता है, साथ ही अपने विश्वस्त व्यक्तित्व की दर्शकों पर भी छाप छोड़ता है। यह प्रत्यक्ष ही लाभ का सौदा है, इस व्यवसाय में भी प्रवीण-पारंगत होने का हर किसी को प्रयत्न करना चाहिए, साथ ही यह भी गाँठ बाँध कर रखना चाहिए कि अशिष्टता हर दृष्टि से हानिकारक है। यह अपना स्तर गिराती है, मित्रों को शत्रु बनाती है। जो सहयोगी था, उन्हें असहयोग करने के लिए प्रेरित करती है। इसकी हानि भले ही तत्काल किसी की समझ में न आये, पर परिणाम सामने आने पर विदित होता है कि एक ऐसी कुटैव पाल ली गई जो पग-पग पर अनर्थ खड़े करती है। घर के विचारशील तथा प्रमुख व्यक्ति ही शिष्टता का विकास कर सकते हैं। सर्वप्रथम उनके द्वारा ही इसका पालन किया जाना चाहिए। अभिवादन करते समय, बात करते समय हम वाणी में शालीनता लायें, मधुर और

नम्रतापूर्ण वाणी का प्रयोग करें। यदि हमारी बोली में कठोरता, तू-तड़ाक और ताने बाजी की आदत है, तो उसे धीरे-धीरे हटाने-बदलने का प्रयास करना चाहिए कहा है-

“ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ॥”

बहुधा बोलने में ‘तकिया-कलाम’ के रूप में गाली के शब्द और निरर्थक शब्द बोलने का स्वभाव पड़ जाता है, किन्तु वह सभ्य-समाज में बोलते ही शर्म से आँखें नीची करनी पड़ती हैं। अतः उनका उपयोग छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। हम कुछ भी आँय-बाँय जो मुँह में आ जाय सो न बोलें, हम क्या बोल रहे हैं उसका पहले से विचार कर लेना चाहिए। इसीलिए कहा है कि “जो कुछ बोलें, उसको तोलें” अर्थात् संतुलित बोलने का प्रयत्न किया जाय। ‘तू’ शब्द से किसी को सम्बोधित न करना चाहिए। ‘तू’ शब्द से सम्बोधन किसी को भी सम्मानित जैसा नहीं लगता अतः ‘आप’ शब्द का प्रयोग करना चाहिए। वा. ४८/१.३४

साथ-साथ खाना, खेलना, संगीत, सहगान, सत्साहित्य का वाचन और श्रवण, सामूहिक उपासना जैसे आधार अपनाकर घर में अनुशासन की एक नई प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है। पक्षियों को दाना-पानी का प्रबन्ध करके उन्हें अपने आँगन में फुदकने और प्रसन्न होने का दृश्य देखा जा सकता है। घरेलू शाक-वाटिका, पुष्प-वाटिका का आरोपण करने से भी रचनात्मक प्रवृत्ति के परिपोषण का एक आधार बन सकता है। वा. ४८/१.३८

पारिवारिक शालीनता के कुछ सुनिश्चित तथ्य

परिवार एक गाय है जिसका दूध पीने के लिए ही सब ललचाते रहें, यह अनुचित है। उसके लिए चारा, पानी, धूप-छाँव एवं सुविधा, सफाई की जिम्मेदारी भी इन दूध पीने वालों को उठानी चाहिए। परिवार समर्थ होगा तो उसकी छाया, शोभा और फल सम्पदा का लाभ भी मिलेगा, अन्यथा सूखे ढूँठ से जगह भी घिरेगी और अड़चन भी पड़ेगी। तरह-तरह की अपेक्षाएँ रखना और फरमाइशें करना तो अनेकों को आता है, पर इस तथ्य को भुला ही दिया जाता है कि इस संस्थान को परिपुष्ट और परिपक्व बनाने के लिए उससे भी बड़ा योगदान होना चाहिए जो अब तक पाया गया है एवं जो आगे के लिए माँगा जा रहा है। सम्पन्नता तो एक समर्थ व्यक्ति भी उपार्जित कर सकता है पर सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न करने में हर सदस्य का समुचित योगदान होना चाहिए।

गृहपति कोई भी क्यों न हो, अनुशासन किसी का भी चलता हो, इस दृष्टि से हर सदस्य अपने आप में पूर्ण है कि उसे पारस्परिक स्नेह-सहयोग को बढ़ाने और सत्प्रवृत्तियों को व्यवहार में उतारने की दृष्टि से अग्रणी रहना है। भूल-उपेक्षा या अवज्ञा करने वाले की नकल करना ओछा विचार है। बड़प्पन इसमें है कि श्रेष्ठ परम्परा का निर्वाह किया जाय और भटकों को रास्ते पर लाने के लिए अपना प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत किया जाय। बिगाड़ने के लिए एक माचिस पर्याप्त है, पर बनाने के लिए दस अँगुलियों समेत दोनों हाथों को परिपूर्ण पराक्रम करना पड़ता है। किसी भी समझदार को विष की बूँद बनने के लिए कदम नहीं बढ़ाना चाहिए, वरन् अमृत घट के रूप में अपनी स्थिति, उपस्थिति और महत्ता का परिचय देना चाहिए। परिवार निर्माण में उस परिकर के हर सदस्य को भाव भरी भूमिका प्रस्तुत करनी चाहिए। प्रतिस्पर्द्धा और प्रतिद्वन्द्विता इसी की चलनी चाहिए, कि परिजनों में से किसने उस संस्था को समृद्ध और शालीन बनाने में कितनी भूमिका निभाई। यह तथ्य ऐसे ही हैं जिन्हें परिवार के हर सदस्य को बार-बार समझने और समझाने का अवसर मिलता रहना चाहिए।

वा. ४८/१.४१

सुधार विकास की पृष्ठभूमि बने

परिवार का वातावरण अच्छा बनाया जाय और परिजनों को सुसंस्कृत स्तर तक पहुँचाया जाय। यह केवल एक पक्ष है। परिवार निर्माण का दूसरा पक्ष और भी अधिक महत्वपूर्ण है। वह है अपनी निज की आदतों, आस्थाओं और गतिविधियों का निर्माण, नियन्त्रण करना। यह कार्य परिवार की प्रयोगशाला में ही सम्भव हो सकता है। जलाशय में घुसे बिना तैरना कहाँ आता है? व्यायामशाला में प्रवेश किये बिना पहलवान कौन बनता है? पाठशाला में भर्ती हुए बिना सुशिक्षित कौन बनता है? व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर ही अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता का अभ्यास किया जाता है। एकाकी चिन्तन, मनन, अध्ययन, प्रवचन करते रहने से केवल बौद्धिक समाधान मिलता है। सत्प्रवृत्तियाँ परिपक्व तो अभ्यास से होती हैं, अभ्यास के लिए उपकरण चाहिए। इस प्रयोजन के लिये परिवार से बढ़कर और कोई उपयुक्त माध्यम हो ही नहीं सकता। जिन लोगों के बीच हमें रहना पड़ रहा है, उन्हें परिष्कृत बनाने के लिए प्रयास करना वस्तुतः अपनी प्रकृति को ही सुधारना है। बकझक करनी हो तो बात दूसरी है—यदि सचमुच किन्हीं को बदलने योग्य प्रभाव उत्पन्न करना है तो उसका एकमात्र उपाय अपनी स्थिति का प्रभाव डालने योग्य बनना ही हो सकता है। जो इस दिशा

में वस्तुतः बढ़ना चाहता होगा, उसे अपनी प्रभावोत्पादक क्षमता बढ़ानी पड़ेगी। अपना अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ेगा। अपने व्यक्तित्व को उतना प्रामाणिक बनाना पड़ेगा कि जिसके सम्पर्क में आएँ-उस पर छाप पड़े। परिवार निर्माण के लिये प्रयास करना वस्तुतः अपनी श्रेष्ठ मान्यताओं को मूर्तरूप देने के लिये प्रयोगशाला में प्रवेश करना है। परिजनों के माध्यम से अपनी शालीनता एवं क्रियाकुशलता को विकासोन्मुख बनाना है। इस प्रकार परिवार निर्माण की दिशा में किये गये प्रयास-केवल कुटुम्बियों की सार्थक सेवा ही सम्पन्न नहीं करते, वरन् अपने व्यक्तित्व को भी निखारते हैं। अपनी आदतों में भी उत्कृष्टता का समुचित समावेश करते हैं। यह दुहरे लाभ की प्रक्रिया सर्वथा अपनाये जाने योग्य है। परिवार निर्माण के सूत्र दुहरी सफलता प्रस्तुत करते हैं। 'मेंहदी पीसने वाले के हाथ रंग जाते हैं,' वाली उक्ति के अनुसार उस कार्य में संलग्न व्यक्ति को आत्मनिर्माण का लाभ भी मिलता ही है।

वा. ४८/२.५२

पारिवारिक सुख के लिए अर्थ साधनों की आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं करता, पर ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इन प्रयोजनों के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता सद्भावना एवं सुव्यवस्था की है। यह दोनों तत्त्व विद्यमान रहेंगे तो अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी हँसते-हँसाते दिन गुजारे जा सकते हैं। स्नेह, सौजन्य, सहकार, सद्व्यवहार ही वह पूँजी है, जिसके सहारे एक साथ रहने वाले मनुष्य पारस्परिक आदान-प्रदान से छोटे से परिवार में स्वर्गीय वातावरण का सृजन कर सकते हैं। स्वर्ग में हर्षोल्लास की परिस्थितियाँ मिलने की कल्पना की जाती है। उसका व्यावहारिक और प्रत्यक्ष रूप देखना हो तो किसी सद्गृहस्थ के घर-परिवार में प्रवेश करके देखा जा सकता है। ऐसे स्नेहसिक्त वातावरण में रहने के लिए हर किसी का मन ललचायेगा, भले ही वहाँ साधनों की न्यूनता का भी सामना क्यों न करना पड़े। ऐसे ही परिवार में सुसंस्कारी बालक विकसित होते हैं और उन्हीं का परिष्कृत व्यक्तित्व बड़े होने पर उन्हें महामानवों की श्रेणी में ला बिठाता है। जिन्दगी को चैन से गुजारने के लिए भी ऐसी ही पारिवारिक परिस्थितियाँ होनी चाहिए।

प्रश्न यहाँ भी यही उत्पन्न होता है कि ऐसा वातावरण किस प्रकार उत्पन्न हो? उसका सृजन कौन करे? निश्चय है, इस ताले की कुंजी सुदृढ़णी के हाथ में है। नर सुयोग्य और सुसम्पन्न होने पर इस सदर्थ में हाथ बैठा सकता है, साधन जुटा सकता है, पर आगे बढ़कर कोई बड़ी भूमिका निभा सकना उसके लिए सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि उसकी भूमिका परिवार व्यवस्था में बहुत

स्वल्प होती है। नहाने, खाने, सोने जैसे ढर्रे के नित्यकर्मों को करने में ही उसका अधिकांश समय बीत जाता है। गृहकार्य से निपटने के बाद तुरन्त आजीविका उपार्जन तथा दूसरे आवश्यक कार्यों के लिए उसे बाहर भागने की जल्दी पड़ती है। ऐसी दशा में वह झल्लाने, समझाने के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभा ही नहीं पाता। इस दायित्व का समुचित निर्वाह तो कोई सुयोग्य, शिक्षित समझदार गृहिणी ही कर सकती है। गृहलक्ष्मी जो नाम दिया गया है वह अलंकार या भावुकता नहीं— उसके पीछे तथ्य है। लक्ष्मीजी ने अपने व्यक्तित्व और कर्तव्य से अपने लोक को स्वर्ग बनाया इस पौराणिक प्रतिपादन का प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो किसी गृहलक्ष्मी के घर में जाकर वहाँ बरसने वाले स्नेह-सौजन्य और सज्जनोचित क्रिया-कलापों के माध्यम से सहज ही देखा जा सकता है।

वा. ४८/१.६४

घर के वातावरण में यदि अवांछनीयताएँ, विकृतियाँ फैली पड़ी हैं तो इसका एकमात्र कारण सद्प्रवृत्तियाँ, सद्भावनाएँ उत्पन्न कर सकने वाले वातावरण का अभाव है। उसे पैदा करने पर ही उलझनें सुलझेंगी। अन्धकार का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं, प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है। ठीक यही बात पारिवारिक वातावरण पर लागू होती है जहाँ सद्भावनाओं को आरोपित-पल्लवित न किया गया होगा, वहाँ दुर्भावनाओं की, दुष्प्रवृत्तियों की कँटीली झाड़ियाँ उगेंगी ही और उनके काँटे चुभे बिना रहेंगे ही नहीं। यही है पारिवारिक क्लेश-कलह का दार्शनिक कारण। बाहरी दृष्टि से लड़ना-झगड़ना या मनोमालिन्य के दूसरे स्थूल कारण भी हो सकते हैं। उनका निवारण भी किया जा सकता है फिर भी आन्तरिक दुर्बुद्धि जहाँ बनी हुई है वहाँ द्वेष और क्लेश के लिए कुछ न कुछ बहाने आमन-सामने आते ही रहेंगे और दुर्गन्ध भरी नारकीय सड़न उत्पन्न करते ही रहेंगे, ऐसे घर परिवार में रहकर कोई व्यक्ति न तो सुखी-सन्तुष्ट रह सकता है और न जीवन में महत्वपूर्ण प्रगति कर सकने योग्य गुण, कर्म, स्वभाव का अभ्यस्त हो सकता है।

अवांछनीय वातावरण में पलने वाले प्राणी हेय और गई-गुजरी स्थिति में ही जिन्दगी गुजारते हैं। अधिक पैसा, अधिक ठाठ-बाट और अधिक वैभव पाकर आदमी दूसरों को आकर्षित, आतंकित कर सकता है, पर उसकी सुख-शांति में तनिक भी वृद्धि नहीं होती। आनन्द और उल्लास तो केवल सुसंस्कारी व्यक्तियों के हिस्से में ही आता है। वे स्वयं भी सन्तुष्ट रहते हैं और साथियों को भी आनन्द देते हैं। प्रसन्न रहने और प्रसन्न रखने की विशेषता ही देव-प्रकृति कहलाती है,

वस्तुतः यही सबसे बड़ी दौलत है। अभागे लोग पैसे को ही सब कुछ मानते और उसी के लिए मरते-खपते हैं। विवेकवान जानते हैं कि परिष्कृत दृष्टिकोण से, सद्भावनाओं से बढ़कर और कोई आनन्ददायक वस्तु इस संसार में नहीं है, इसलिए वे इसके उपार्जन, अभिवर्द्धन पर ध्यान देते हैं। भले ही लोक दृष्टि से उन्हें गरीबी की श्रेणी में ही क्यों न रहना पड़े ?

वा. ४८/२.५१

परिवार में स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित करें

स्वाध्याय की प्रवृत्ति अपने परिमार्जन का प्रत्यक्ष उपाय है, जिससे व्यक्ति अपनी गन्दगी पहचानता है और यह अनुभव करता है कि अब तक की भूल दुष्परिणाम उत्पन्न कर सकती है। इस तरह स्वानुभूति से मन को कहीं अधिक निबटने की शक्ति मिलती है और सुधार की गुंजाइश बढ़ जाती है। कई बार अपने मन में छिपे कुसंस्कार इसलिये समझ में नहीं आते, क्योंकि उनके तात्कालिक लाभ तो दिखाई देते हैं, पर दूरवर्ती दुष्परिणाम नहीं। स्वाध्याय न केवल वर्तमान को भविष्य के प्रतिफल के दर्शन करा देता है, अपितु उसके विकल्प के रूप में अतीत के अनुभवों का लाभ भी प्रदान करता है। जहाँ इस तरह तीन-तीन हितचिंतक बल और प्रकाश देते हों, वह त्रिवेणी स्वाध्याय है। इस गंगा में स्नान कर लेने के बाद मन की निर्मलता, प्रफुल्लता और शरीर की स्फूर्ति की तरह पारिवारिक जीवन की मलिनताएँ हटतीं और रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है। शान्ति-सुव्यवस्था की जड़ भी वहीं है और प्रगति की कुंजी भी।

पढ़े हुये मार्मिक अंश पर निशान लगा लिया जाये और उतना अंश अपने बच्चों, भाइयों, पिता-माता और धर्मपत्नी सबको दिखाना, सुनाना लोगों के लिये रुचिकर भी होता है और उससे सम्वेदनाओं का विकास भी होता है। उदाहरण के लिये शरदचन्द्र बोस का संस्मरण है- वे जिस विद्यालय में प्रोफेसर थे, उसमें अँग्रेज प्रोफेसरों की अपेक्षा भारतीयों का वेतन बहुत कम था, जबकि उनकी योग्यता कम नहीं होती थी। इसके विरोध में श्री बोस ने वेतन लेना बन्द कर दिया। उन्हें प्रतिदिन गंगा पार करके विद्यालय जाना पड़ता था। जब वेतन नहीं तो खर्च कैसे चले, इस स्थिति में मल्लाह के पैसों का प्रश्न था। उस स्थिति में उनकी धर्मपत्नी ने अपनी अँगूठी बेचकर छोटी-सी नाव ले ली और प्रतिदिन वे स्वयं ही पति को गंगा पार कराने और वापस लेने जाने लगी। इस तरह के मार्मिक प्रसंगों से पारिवारिक जीवन में कष्ट और मुसीबत में भी घनिष्ट आत्मीयता के संस्कार विकसित होते हैं।

वा. ४८/१.६९

परिवार में सहयोग एवं सद्भावना की आवश्यकता

आजकल परिवार के परिजन परस्पर सेवा की भावना नहीं रख पाते हैं। जैसे-तैसे परिवार तो दिखाई देते हैं, पर भीतर की परिवारीय भावना मर चुकी होती है। ऐसा लगता है, सभी किसी होटल में रहते हैं, जहाँ खाना-विश्राम मिलता है। एक-दूसरे के दुःख-दर्द से क्या मतलब? आखिर क्या कारण है? परिवारों में परस्पर सेवा की भावना लुप्त होती जा रही है। परिवार के हर सदस्य को एक-दूसरे की सेवा करने के लिए तत्पर रहना चाहिये। ये ही क्षण होते हैं, जब एक दूसरे के प्रति व्यावहारिक प्रेम अभिव्यक्त करते हैं अन्यथा शाब्दिक प्रेम बनाये रखने के क्या लाभ? किसी व्यक्ति के हृदय को जीतना है तो उसकी कष्ट और बीमारी के क्षणों में निःस्वार्थ भाव से सेवा कर दीजिए, वह सदा के लिए अपना हो जाता है।

सेवा के सुअवसर केवल बीमारी के समय ही नहीं रहते हैं। घर के परिजन पर किसी भी प्रकार की विपत्ति या कष्ट है, उस समय उसे सहायता पहुँचा देना सेवा ही है। संकट आर्थिक हो या सामाजिक हो या राजनैतिक कैसा भी, संकट तो संकट है और हर समय हर आदमी को सहायता और सहयोग की आवश्यकता रहती है। इस समय सेवा पहुँचाना परिजनों का कर्तव्य है।

यदि बीमारी कष्ट, विपत्ति, संकट आदि के क्षणों में परिवार के परिजन एक दूसरे के सहयोग, सहायता व सेवा के लिये ही बढ़ते रहे तो परिवारीय वातावरण में स्नेहिलता बनी रहती है। पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन में सुखप्रद आकर्षण बना रहेगा। वे एक दूसरे के लिये हर घड़ी हर काम के लिए तत्पर रहेंगे। उनकी प्रसन्नता का प्रभाव यह होगा कि घर के परिजन भी प्रसन्न बने रहेंगे तथा सेवा की भावना बनाये रख सकेंगे। इस प्रसन्नता के वातावरण में बच्चों का विकास भली-भाँति होता रहेगा तथा सहयोग, सहायता और सेवा का पाठ बच्चे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सीखते रहेंगे, जिसका उपयोग वे अपने भावी जीवन में कर सकेंगे। सहयोग, सहायता और सेवा की भावना के विकास पर परिवार की प्रसन्नता और प्रगति निर्भर है।

वा. ४८/२.७८

हमारी पारिवारिक गोष्ठी

सप्ताह में एक बार या अवसर के अनुरूप घर की छोटी-बड़ी समस्याओं पर परस्पर विचार-विनिमय करते रहने के लिये भी यही कथा अवसर बहुत उपयुक्त है। घर की व्यवस्था एवं प्रगति के सम्बन्ध में हर व्यक्ति को कुछ सोचने और

कुछ करने का अवसर मिले तो इससे उपेक्षा और अन्यमनस्कता की स्थिति दूर होगी इससे परिवार के विकास में प्रत्येक सदस्य की दिलचस्पी जगती है और उसका वास्तविक लाभ कुछ ही दिनों में सामने खड़ा दिखाई देगा है।

आवश्यक नहीं कि कोई बहुत बड़ी समस्याएँ सामने आने पर ही यह विचार-विमर्श किया जाय। कल क्या साग-दाल बननी चाहिए-परसों का त्यौहार किस तरह मनाया जाना चाहिए? जैसी छोटी-छोटी बातें भी परामर्श का विषय हो सकती हैं और अर्थ व्यवस्था, सुसज्जा, शिक्षा, सुधार जैसे समस्या प्रसंगों की जानकारी घर के सभी लोगों को देकर उन्हें पूछा, बताया तथा कुछ सोचने एवं करने के लिए उत्साहित किया जा सकता है। परिवार में हमारा भी कुछ उत्तरदायित्व एवं योगदान है, यह अनुभव घर के सभी सदस्य करने लगे तो उस रुझान एवं सहयोग से परिवार निर्माण का उत्साहवर्द्धक पथ-प्रशस्त हो सकता है।

आवश्यक नहीं, कि हर दिन कहानियाँ ही सुनाई जायँ। समाचार पत्रों की महत्वपूर्ण घटनाएँ, भजन कीर्तन, रामायण कथा, पहेलियाँ, प्रश्नोत्तर जैसे कई आधार समय-समय पर बदले जाते रह सकते हैं। जिस घर में इन माध्यमों में से जो अधिक पसन्द किया जाय, वहाँ उसकी प्रधानता रखी जा सकती है। विचार परिष्कार, दृष्टिकोण विकसित करने व आदर्शवादी उमंगें उत्पन्न करने की दृष्टि से रात्रि को कहानियाँ कहने का प्रचलन देखने में छोटा किन्तु परिणाम में बहुत ही बड़ा सिद्ध होता है। इस अति प्राचीन किन्तु अति नवीन परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए हमें नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ करना चाहिए। परिवार निर्माण में जहाँ भी रुचि हो वहाँ यह प्रयोग-परीक्षण पुनः आरम्भ किया जाना चाहिए और निज के अनुभव से यह देखना चाहिए कि यह छोटा-सा शुभारम्भ कितना बड़ा-चढ़ा सत्परिणाम प्रस्तुत करता है।

वा. ४८/१.५८

घरेलू सत्संग का कोई समय निकालना आवश्यक है। रात का समय इसके लिये ठीक पड़ता है। समाचार पत्रों में छपी घटनाओं में से जो सीखने लायक हों उनकी टीका-टिप्पणी, आलोचना, समीक्षा करने का अवसर उन्हें देना चाहिए, जो विचार व्यक्त कर सकने जितनी बुद्धि अर्जित कर सके हैं। इस अवसर पर गाँव, पड़ोस या समीपवर्ती क्षेत्रों में घटित हुई घटनाओं की समीक्षा भी की जा सकती है। एक तरीका प्रेरणाप्रद कथा-कहानियाँ कहने का भी है। रूढ़िवाद और अन्धविश्वास फैलाने वाले साहित्य का तो इस निमित्त चयन नहीं करना चाहिए। महापुरुषों के जीवन चरित्र, संस्मरण, भले बुरे कार्यों के परिणाम भी साथ ही बताते चलने चाहिए। इस निमित्त प्रज्ञा पुराण की कथायें उद्देश्यपूर्ण

हैं। उन्हें क्रमशः कहते और निष्कर्षों पर प्रकाश डालते हुए कहने-सुनने की व्यवस्था बनाई जाय तो व्यावहारिक ज्ञान के अतिरिक्त कहने-बोलने का अभ्यास भी बढ़ता है। बोलने की कला इस आधार पर सभी वयस्कों को सिखाई जा सकती है। अनावश्यक वाचालता के स्तर तक न पहुँचे तो वार्तालाप करने या वक्तृता देने की कला का जीवन में बहुत महत्व है। इसका अभ्यास रहने पर मनुष्य को चुप्पी साधने की दुर्बलता के कारण जो अन्याय सहने पड़ते हैं, उनके अवसर कम ही आते हैं उनके हल निकल आते हैं। ध्यान रखने की बात इतनी ही है कि सौजन्य बना रहे। कटुता या तिरस्कार का भाव न आने पाये। वार्तालाप का आनन्द तभी है जब उसमें उत्तेजना न आने पाये, सन्तुलन बना रहे और आगे वार्ता की भी गुंजाइश बनी रहे। वार्ता होती रहे और सौजन्य बना रहे। गलतफहमियाँ दूर होती रहें। इसी में उसकी शोभा है। यह अभ्यास आरम्भ से ही डालना चाहिए।

वा. ४८/२.२७

घर में प्रत्येक सदस्य को ऐसा निरीक्षण करना चाहिए कि अपने गुण-कर्म स्वभाव में दोष-दुर्गुण कहाँ हैं। उन सभी को निरस्त करने की बात सोचनी चाहिए। ऐसा उपाय करना चाहिए कि घर के सभी लोग किस प्रकार आत्मिक दृष्टि से सुसंस्कारी और भौतिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकें। यह तथ्य परिवार के सदस्यों को हृदयंगम कराया जा सके तो वे प्रगतिपथ पर अग्रसर हो सकते हैं। स्वयं सुखी रहकर अपने सम्पर्क क्षेत्र को समुचित मात्रा में सुख-शान्ति प्रदान कर सकते हैं।

वा. ४८/१.६०



७. स्वच्छता एवं सुव्यवस्था परिवार भर को सिखाएँ

स्वच्छता के बिना सुन्दरता नहीं रह सकती। कितनी भी भव्य इमारत हो, उसकी सफाई, देख-रेख न की जाये तो न तो वह आकर्षक लगेगी, न ही टिकेगी। कितना भी सुन्दर बच्चा हो, यदि गन्दगी लिपटी हो, तो लोग उसे हाथ लगाने में झिझकेंगे तथा माँ और अभिभावकों को कोसेंगे। इसलिये स्वच्छता एवं सुव्यवस्था की आदत घर के प्रत्येक सदस्य में डाली जानी चाहिए। व्यक्तित्व की अतिरिक्त स्वच्छता का सम्बन्ध मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक प्रगति से तो है ही स्वास्थ्य से भी है। बाहरी स्वच्छता का भी स्वास्थ्य एवं मानसिक प्रसन्नता से सीधा सम्बन्ध है।

वा. ४८/१.४३

घर के सभी सदस्यों को प्रातः उठकर शौचादि कर्म से निवृत्त हो मंजन एवं स्नान करने का नियमित अभ्यास होना चाहिए। बचपन से ही यदि शौच या मंजन की नियमितता की आदत नहीं बनी तो बाद में शौच की अनियमितता पेट-सम्बन्धी गड़बड़ियों का कारण बनती है, मंजन न करने से दाँत-मसूड़े खराब हो जाते हैं। युवावस्था में ही दाँत-दर्द एवं दाँतों के गिरने के कष्ट का सामना करना पड़ता है। जिन्हें नित्य स्नान का अभ्यास नहीं रहा या स्नान के सम्बन्ध में जिनके स्वभाव में आलस्य-प्रमाद जड़ जमा बैठा, उन्हें हाथ-मुँह धोकर चेहरे पर क्रीम-पाउडर लगा लेने की आदत बन जाती है। ऐसों के शरीर से पसीने की दुर्गन्ध निकलती है और अस्वच्छता से फुन्सियाँ, रक्तविकार आदि उत्पन्न होते हैं। ठीक से स्नान करने का भी हमारे यहाँ अधिकांश लोगों को अभ्यास नहीं कराया जाता है। किसी प्रकार नदी-तालाब में डुबकी लगा लेना या बाल्टी दो बाल्टी पानी लोटे से शरीर के ऊपर डाल लेना स्नान नहीं। ऐसे नहाने की आदत बन जाने पर रोज-रोज नहाने वालों के भी शरीर में मैल की परत जमती जाती है। घुटने, कोहनी, कनपटी, टखने, एड़ी जैसी जगहों में ऐसे लोगों के प्रायः मैल जमी देखी जाती है। अतः ठीक से स्नान कर मैल छुड़ाने, तौलिये से शरीर रगड़कर पोंछने की आदत हर सदस्य को डाली जानी चाहिए।

यही बात कपड़ों के बारे में है। नीचे मैली-कुचैली चड्डी बनियान या गन्दा पेटीकोट आदि पहनकर ऊपर से चमकती साड़ी या कुर्ता-धोती, पैंट, पतलून पहन लेना ही वस्त्रों की स्वच्छता नहीं। शरीर से लगने वाले कपड़े भी

सदा स्वच्छ रखने चाहिए। उन्हें नित्य धोया जाना चाहिए। ऊपर पहनने वाले कपड़े भी अपनी शक्ति के अनुसार सादे, अच्छे एवं स्वच्छ रहने चाहिए।

प्रत्येक सदस्य शौचालय एवं स्नानघर स्वच्छ रखने में सहभागी बनें, यह प्रवृत्ति परिवार में विकसित की जानी चाहिए। 'फ्लश सिस्टम' के पाखाने हों तो उनमें पर्याप्त पानी डाला जाय तथा ब्रुश-विम आदि द्वारा उनकी सफाई की जाय। कच्चे पखानों में रेत या राख का टोकरा रखा रहे, हर सदस्य मलविसर्जन के बाद उसे मैले पर ऊपर से डाल दे और टोकरा फिर भरकर रख दे। मेहनत द्वारा नियमित सफाई की व्यवस्था की जाय। भली-भाँति पानी डालकर कड़ी बुहारी द्वारा धोया जाय और फिनाइल मिला जल छोड़ा जाय। पेशाब जाने के बाद भी हर व्यक्ति को पानी डालने की आदत होनी चाहिए। देहातों में भी गड्ढे वाले पाखाने और पेशाबघर बनाये जाने चाहिए ताकि जहाँ-तहाँ गन्दगी न फैले और न ही परेशानी उठानी पड़े या बेपर्दगी अपनायी पड़े, साथ ही उसका इस्तेमाल खाद के रूप में हो सके। गड्ढे न बन पायें तब तक लोटे के साथ खुरपी लेकर जाने की परम्परा डाली जाय और खुरपी से गड्ढा खोदने के बाद वहीं मल-त्याग किया जाय तथा उसे ढक दिया जाय। मलमूत्र विसर्जन के स्थानों पर नाकबन्द करके जाना और जैसे-तैसे भागने की सोचना स्वच्छताप्रियता नहीं है। उन स्थानों को स्वच्छ रखना ही स्वच्छता है, यह हर एक को बताया-सिखाया जाय। जिस प्रकार हमारे शरीर में पाचन प्रक्रिया का जितना महत्व है, उतना ही मल-विसर्जन प्रक्रिया का भी। उसी प्रकार घर में रसोई घर को जितना साफ रखा जाता है, उतना ही टट्टी या पेशाब घर को।

स्नान घरों में भी सफाई रखने में हर सदस्य सहयोग करे। कपड़े धोने या नहाने के बाद स्नानघर में साबुन का झाग और मैला पानी फैले रहने देने की लापरवाही को टोका-सुधारा जाय। स्नानघर सदा स्वच्छ रखा जाना चाहिए, ताकि वहाँ न तो गन्दगी रहे, न ही काई जमे।

रसोई को भी भली-भाँति साफ रखा जाना चाहिए। अन्न के कणों-टुकड़ों को समेट कर पशु-पक्षियों को खिला देना चाहिए या कूड़ेदान में डाल देना चाहिए। थाली में डाले गए अन्न के सड़ने से असह्य दुर्गन्ध उत्पन्न होती है, वहाँ कीड़े पैदा हो जाते हैं। दुर्गन्ध और कीड़े दोनों स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। भोजन के समय थाली-लोटे, गिलास-कटोरी आदि में कहीं जरा भी मिट्टी-जूठन लगी हो तो खाने से मन बिदक जाता है। इसलिये बर्तनों की धुलाई-सफाई के साथ ही उन्हें ठीक से रखने की भी चिन्ता करनी चाहिए और इस्तेमाल के पूर्व फिर से देख लेना चाहिए कि स्वच्छ तो है। धूल-मिट्टी लग गई हो तो साफ कर

लिये जायें। रसोई का फर्श पक्का है तो गीले टाट से पोंछना जरूरी होता है। कच्ची रसोई में लिपाई करना आवश्यक होता है। चौका-रसोई की स्वच्छता और खाद्य पदार्थ रखने के स्थान की स्वच्छता का ध्यान रखने से ही भोजन व्यवस्थापिका की सुघड़ता का पता चलता है। खाद्य पदार्थ सीलन भरी जगह में न रखे जायें, उन्हें ढककर रखा जाय और समय-समय पर सुखाते रहा जाय, सफाई तथा खाद्य पदार्थों को ढकने का ध्यान न रखने पर चूहे, मकड़ी, छिपकली, तिलचट्टे, झींगुर, घुन, पई आदि अनेक छोटे-बड़े कीड़ों के उपद्रव का डर रहता है। उनका थूक, मल-मूत्र आदि पेट में पहुँच सकता है और हानि पहुँचा सकता है। ये कीड़े-मकोड़े वहीं मर गये और उनके टुकड़े खाद्य-पदार्थ के साथ पेट में पहुँचे तो विषैली प्रतिक्रिया उत्पन्न करेंगे।

पीने के पानी की स्वच्छता के लिए प्रयुक्त छानने वाले कपड़े को साबुन से धोना तथा सुखाना आवश्यक होता है। पानी को भी ढककर रखना होता है। पेय जल का पात्र रखने के लिये लकड़ी की तिपाई या पक्की चकती का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। पानी भरने के घड़े भीतर से भली-भाँति धोए जायें, लोटा-गिलास आदि धोकर ही पानी लिया दिया जाए। ये सभी आदतें बच्चों में शुरू से ही डाली जानी चाहिए। सभी कमरों, मेज, कुर्सी, पलंग, फर्नीचर समेत घर भर का एक कार्य नित्य झाड़-पोंछ, सफाई होनी चाहिए। इस काम की जिम्मेदारी फेर बदल कर दी जाती रहना चाहिए।

वा. ४८/१.४४

साप्ताहिक सफाई छुट्टी के दिन की जानी चाहिए। उस दिन घर भर के लोग सोत्साह उसमें जुटें। उस दिन घर के कोनों में, दीवाल व छतों में जमा हो गये जाले, बर्-ततैये के छत्ते वगैरह साफ करें। आस-पास की भी सफाई कर डालें। नालियों, कूड़ेदानों को साफ कर लें। कुँआ हो तो उसके आसपास की सफाई कर दें। पाखाना आदि सब स्थान भली-भाँति धो डाले जायें। काँच वगैरह सब साफ कर डालें। उसी दिन ओढ़ने-बिछाने के कपड़े आदि सुखा लें। जूते-चप्पलों की मरम्मत कर डालें। परिवार के सभी सदस्य उत्साहपूर्वक इसमें जुटें तो काम सरलता से निपट जाता है और मनोरंजन भी होता है।

कभी-कभी विशेष सफाई का अभियान भी चलाना चाहिए। वर्षा की समाप्ति के बाद और ग्रीष्म ऋतु में पूरे घर की सफाई-मरम्मत का काम आवश्यक होता है। नियमित सफाई के बाद भी नमी बनी रहने तथा धूप कम होने के कारण मकान और सामान की हालत खराब हो जाती है। कपड़ों में नमी चढ़ जाने से उनमें गंध आने लगती है, मकान में सीलन आ जाती है।

जहाँ हवन होता रहता है, वहाँ कीटाणु बहुत कुछ नष्ट होते रहते हैं, तो भी वर्षा की समाप्ति पर एक बार घर की पूरी तरह सफाई जरूरी होती है। दीपावली का त्यौहार इस प्रयोजन की पूर्ति कर देता है। दैनिक एवं साप्ताहिक सफाई में परिवार भर के लोगों द्वारा सहयोग का अभ्यास हो गया तो इस वार्षिक सफाई में भी बहुत सारा काम घर के सदस्य सम्हाल लेते हैं और खर्च कम पड़ता है।

वास्तविक बात यह है कि यदि स्वच्छता का सिद्धान्त मन में बैठ गया तो हरेक को गन्दगी खटकेगी, कुरूपता, अस्त-व्यस्त को हटाने की इच्छा उठेगी उसमें आलस्य और प्रमाद की गुंजाइश नहीं रहेगी। कहीं थोड़ी भी अस्वच्छता दिखाई देगी, अव्यवस्था अनुभव होगी तो गृहणी या परिवार के सदस्य को खटकने लगेगी और तब कहीं अस्वच्छता, अस्त-व्यस्तता का रहना सम्भव न होगा। प्रायः अपने परिवारों में शौकीनी ठाठ-बाट और फैशन के नाम पर थोड़ी साज, सजावट दिखाई देती है।

तीज-त्यौहार, विवाह-शादी अथवा किसी महत्वपूर्ण अतिथि के आने के अवसर पर सफाई में उत्साह दिखाई देता है, अन्यथा चारों ओर अस्वच्छता का ही साम्राज्य छाया रहता है। स्वभाव न होने से वह खटकती भी नहीं है। कमरों में कपड़े अस्त-व्यस्त, कापी-किताबें इधर-उधर बिखरी हुई, सामान अव्यवस्थित, आलस्यवश सब ऐसा ही पड़ा बिखरा रहता है। रसोई में बरतन इधर-उधर फैले, धुयें की कालिख का साम्राज्य, धूल भरे जाले लटके रहते हैं। आँगन में बच्चों ने सब में कूड़ा-करकट फैलाया हुआ। कहीं साग की टोकरी पड़ी है तो कहीं अनाज का टीन। एक तरफ कुर्सी पड़ी है तो बीच रास्ते में चौकी। स्नान घर में पानी बह रहा है, काई जम गई, सीलन और पेशाब की बदबू आ रही है, पाखाने से दुर्गन्ध फैल रही है, पानी डालने की किसी को फुरसत नहीं है, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। ध्यान दीजिए, यह दृश्य कहीं अपने यहाँ का ही तो नहीं है? यदि ऐसा ही है तो हमें मानना चाहिए कि हम घर में नहीं नरक में रह रहे हैं।

हम घर की थोड़ी बहुत सफाई करते भी हैं तो घर तो साफ करते हैं और गन्दगी घर के सामने डाल देते हैं, सड़क पर गिरा देते हैं, अपनी नाली साफ करके कचरा, मैला पड़ोसी के दरवाजे की ओर बढ़ा देते हैं। यह बहुत ही गन्दी और अनैतिक आदत है। अपनी खुद की सफाई के साथ-साथ सार्वजनिक सफाई का भी ध्यान रखें। जिसके मन में स्वच्छता सिद्धान्त एवं अभ्यास रूप में आ जायेगी वह घर और बाहर सब जगह स्वच्छता के नियमों का पालन करेगा। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते कहीं भी वह उनका उल्लंघन नहीं करेगा। जहाँ-

कहीं उसका विकृत रूप देखेगा उसे खटकेगा और वह उसे ठीक करने का प्रयत्न करेगा। स्वच्छता का अर्थ है सभ्यता। स्वच्छता से सभ्यता, नागरिकता और स्वस्थ व्यक्तित्व का बोध होता है। अस्वच्छता-अस्वस्थ वातावरण और असभ्यता की परिचायक होती है।

वा. ४८/१.४५

अव्यवस्था का अभ्यास हो गया तो मौका पड़ने पर कोई काम समय पर शुरू ही नहीं हो पाता। पहले बिखरे सामान को सम्हालने में ही जुटना पड़ता है। अव्यवस्था से मनःस्थिति भी प्रभावित होती है। जहाँ व्यवस्था है वहाँ चित्त में स्फूर्ति रहती है, कार्य में सुगमता रहती है। व्यवस्थित कमरे और घर की छाप देखने वालों पर अच्छी पड़ती है।

स्कूल से लौट आने के बाद बच्चे अपना बस्ता कहीं फेंकते हैं, जूता कहीं और कपड़े जैसे-तैसे उतारकर पटक देते हैं। उस समय उन्हें हर वस्तु को यथास्थान रखने का मार्गदर्शन दिया जाना आवश्यक है। बड़ों को वैसा प्रत्यक्ष मार्गदर्शन न देकर कुशलता एवं नम्रता का आश्रय लेना होता है। वे जो सामान अस्त-व्यस्त कर दें, उसे उन्हीं के सामने सहेजा जाय। कभी-कभी मौका देखकर सुव्यवस्था के आवश्यकता की चर्चा की जाये। जूते नियत स्थान पर पंक्तिबद्ध रखे जाएँ। कपड़े हेंगर या खूँटी पर ही टाँगे जायें। धुलने के योग्य कपड़े भी एक जगह बाँधकर या पेटी में भरकर रखे जायें। किताब, कागज, कलम, पुस्तक, पेन्सिल बच्चे चाहे जहाँ न बिखेर दें। बड़े लोग अखबार पढ़ने के बाद उसे यों ही न पटक दें, निश्चित स्थान पर रखें। रद्दी कागज रद्दी की टोकरी में ही डाले जायें। कलम रुक जाये तो निब को फर्श दीवाल पर न छिड़का जाय। रद्दी कागज से पोंछ लिया जाय। पान की पीक, थूक को चाहे जहाँ न फेंके-पटके। बीड़ी-सिगरेट जो पीते हैं वे उसके बचे टुकड़े व राख निश्चित जगह ही रखें-गिरायें। माचिस की बुझी तीली चाहे जहाँ न फेकी जाय।

ये सब बातें हैं तो छोटी-छोटी पर घर के सब लोगों को इनका प्रशिक्षण दिया जाय, तो उनके व्यक्तित्व में व्यवस्थाप्रियता का समावेश होता चला जाता है। स्वच्छता एवं सुव्यवस्था ही सौन्दर्य दृष्टि का निर्माण करते हैं। व्यक्ति की सुरुचि-सम्पन्नता तथा सुघड़ता व्यवस्थाप्रियता का पता उनकी इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रत्यक्ष प्रतिफल को देखकर चलता है। छोटी-छोटी आदतों के तिनके मिलकर ही व्यक्तित्व का घोंसला बनाते हैं। अतः हर परिवार में इन प्रवृत्तियों के प्रशिक्षण पर ध्यान दिया जाना चाहिए।



वा. ४८/१.४६

८. परिवार और हमारे कर्तव्य

वास्तव में परिवार एक ऐसी प्रयोगशाला है, जहाँ सदगृहस्थ की क्षमताओं का विकास निरन्तर होता जाता है। गृहस्थ जीवन की महिमा तभी है, जब सदगृहस्थ बन कर परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का सर्वतोमुखी पालन किया जाय, अन्यथा वही परिवार दुःख और कष्ट का कारण बन जाता है। शादी करने का दृष्टिकोण यही होना चाहिए कि इसके माध्यम से समाज को योग्य राष्ट्रप्रेमी प्रदान किया जाय, अन्यथा काम-सेवन की दृष्टि से किया गया विवाह नरक का ही सृजन करता है।

हर व्यक्ति समाज का ऋणी है। हम आज जो भी हैं, समाज द्वारा ही विनिर्मित हैं। समाज के प्रति हमारे कर्तव्य की जानकारी हमें होनी चाहिए। समाज ने शिक्षा, ज्ञान, अन्न, वस्त्र आदि कितने ही प्रकार की सुविधाएँ देकर हमें प्रगति के मार्ग पर अग्रसर किया है तो हमारा भी कर्तव्य है कि समाज को योग्य नागरिक प्रदान कर अपनी सामाजिक-निष्ठा का परिचय दें। इसीलिए हमारे वैदिक मनीषियों ने गृहस्थाश्रम को एक प्रमुख आश्रम बताया तथा इसे धर्म का एक अंग बनाया। संसार रहने लायक तभी तक है, जब तक यहाँ प्रेम का विस्तार है। हम समाज-प्रेमी व्यक्ति समाज में बढ़ा सकते हैं, अगर गृहस्थाश्रम की महत्ता को हृदयंगम कर लेते हैं। अन्यथा वही होगा जो पश्चिमी सभ्यता के परिवारों में होता है। वहाँ के परिवार किस तरह बिखर रहे हैं, किसी से छिपा नहीं है।

वा. ४८/२.१६

परिवार के सदस्यों को दुर्गुणी बनने देना समाज एवं राष्ट्र के साथ अपराध करने के समान है। समाज में अगणित चोर, डाकू, बेईमान, व्यभिचारी भरे पड़े हैं। इन कलाओं को सीखने का कोई विधिवत् विद्यालय कहीं खुला नहीं है। हमारे घर ही इन बुराईयों को सिखाने की पाठशाला होते हैं। बच्चे चुपके-चुपके यहीं से सब कुछ सीखते हैं और यहीं से प्राप्त हुई आदतें भयंकर अपराधों का रूप धारण कर लेती हैं। शिक्षा का स्थान स्कूल हो सकते हैं पर दीक्षा का स्थान तो घर ही है। बेचारा अध्यापक गणित, भूगोल, इतिहास आदि को ही पढ़ा सकता है। गुण, कर्म, स्वभाव को उत्तम बनाने की दीक्षा देने का उत्तरदायित्व घर वालों पर है, माता-पिता पर है जिन माता-पिता ने जाने या

अनजाने में बुरी आदतें सिखाकर अपने बालकों को एक दुष्ट नागरिक के रूप में राष्ट्र के सामने उपस्थित किया, उन्होंने सचमुच समाज की एक बड़ी कुसेवा की है। बच्चों का भविष्य बिगाड़ने एवं अपने लिए जीवन भर कुढ़ने का संरंजाम जमा कर लेने का उत्तरदायित्व भी उनका ही मानना पड़ेगा।

हमारा पूर्ण शरीर परिवार के सभी सदस्यों से मिलकर बना है। इसे स्वस्थ रखना ही हमारा कर्तव्य है। जिस प्रकार अनुपयुक्त विचारों से हमारी देह रोगग्रस्त होती है उसी प्रकार अपने कर्तव्य को भुला देने से, परिवार के प्रति अपना दृष्टिकोण सही न रखने से ही हमारा यह कुटुम्ब-शरीर रोगग्रस्त होता है। पारिवारिक स्वास्थ्य का सुधार भी शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारने की तरह पूर्णतया सम्भव है पर इसके लिए हमें अपने को ही सुधारना पड़ेगा, अपनी विचारधारा को ही ठीक करना पड़ेगा। अपने को सुधारने से दूसरे स्वतः ही सुधारने लगते हैं।

विलासिता के साधनों का उपभोग करने की आदत यदि छोटेपन से ही पड़ जाय तो अनावश्यक खर्च भी आवश्यक जैसे प्रतीत होने लगेंगे और उनकी पूर्ति न हो सकने पर निरन्तर दुःख बना रहेगा। जीवन की पगडण्डी बड़ी ऊबड़-खाबड़ है। कहा नहीं जा सकता है कि कब, किसे, किस स्थिति का सामना करना पड़े। आवश्यक नहीं कि जो सम्पन्नता आज है वह भविष्य में भी बनी ही रहेगी। जो आज की आमदनी है वह भविष्य में बच्चों को भी उपलब्ध होती ही रहेगी। यदि घटिया परिस्थितियाँ सामने आईं और कम खर्च में गुजारा करना पड़ा तो वे विलासी आदतें जो अभिभावकों ने लाड़-चाव में लगा दी थीं समस्त जीवनकाल में दुःखदायी रहेंगी। अभावग्रस्तता यदि सहन न हो सकी तो वे अपराधी रीति-नीति अपना लेंगे और अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ेंगे। इन दूरगामी परिणामों पर जो ध्यान नहीं देते वे ही अपने परिवार को अनावश्यक विलासी साधनों का अभ्यस्त बनाते चले जाते हैं। वे नहीं जानते कि यह लाड़ चाव प्रकारान्तर से परिवार के सदस्यों के साथ शत्रुता बरतने जैसा व्यवहार ही है।

परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुसंस्कारी बनाना गृहपति का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे आवश्यक कर्तव्य है। सद्गुणों को स्वभाव का अंग बनाया जा सके-कर्मनिष्ठा में उत्साह स्थिर रह सके, ऐसे अभ्यास आरम्भ से ही कराये जाने चाहिए। परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न करनी चाहिए जिनमें रहकर बालक मानवोचित सद्गुणों की शिक्षा प्राप्त कर सके और जीवन संग्राम में तैयारी के साथ उतर सके। परिजनों में ऐसी कर्मठता और साहसिकता उत्पन्न करने के लिए जिन अभिभावकों ने प्रबल प्रयत्न किये उन्हीं को सच्चे अर्थों में परिवार का पालनकर्ता

कह सकते हैं। बुरी आदतों का अभ्यासी बनाकर जिन्दगी भर कँटीली झाड़ियों में भटकने के लिए जिन्होंने अपनी सन्तान को असहाय छोड़ दिया उन्होंने प्रकारान्तर से शत्रुता ही बरती। बालकों को विलासिता, अहंकारिता और उच्छृंखलता बरतने के खुले अवसर देना वस्तुतः गृह संचालक के पवित्र कर्तव्य से सर्वथा विपरीत स्तर का काम है।

वा. ४८/१.४९

बड़ों को संतुष्ट रखने के लिए उनका सम्मान करना, शिष्टाचार बरतना, आदरणीय संबोधन करना, नित्य प्रणाम करना, उनके कामों में सहयोग देना, कोई नया काम करते समय उनका आशीर्वाद लेना, उनकी सुविधाओं का ध्यान रखना छोटों का कर्तव्य है। पर कई बार उनके विचार अनुपयुक्त, असामयिक एवं अवास्तविक होते हैं, वे ऐसे आदेश थोपते हैं जो मानने योग्य नहीं होते।

कई बार वे घूँघट, छुआछूत, दहेज, धूमधाम में अपव्यय जैसी विकृत परम्पराओं से चिपटे रहने का आग्रह करने लगते हैं। कई बार समाज-सेवा जैसे श्रेष्ठ कार्यों में अड़ंगा डालते हैं तथा स्वार्थवश केवल अपने काम से काम की सीख देने लगते हैं। इसलिए उचित-अनुचित की बात विवेक की कसौटी पर परखने के बाद ही किसी आज्ञा का पालन करना चाहिए। अनुचित आज्ञा की उपेक्षा की जा सकती है। हाँ उस अवज्ञा में भी नम्रता बनाये रखनी चाहिये। ऐसे प्रसंगों में भी उत्तेजित होने से बचना चाहिए व अवसर देखकर ही विनम्रता पूर्वक अपनी बात समझानी चाहिए।

एक-दूसरे का सहयोग करना परिवार की स्वस्थ परम्परा होनी चाहिए। हारी-बीमारी में सब सबकी पूछताछ करें और देखभाल, चिकित्सा, परिचर्या, सहानुभूति व्यक्त करने के लिए तत्परता बरतें। बड़े बच्चे छोटों को पढ़ाया करें। बड़े-बूढ़े फालतू न बैठें वरन् छोटों को कहानियाँ सुनाने से लेकर उन्हें टहलाने, हँसाने, खेल-खिलाने, गृह-उद्योग सिखाने, प्रश्नोत्तर से ज्ञानवृद्धि करने तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार पारिवारिक कार्यों में हाथ बटाने के लिए तत्पर रहें। निरर्थक समय गँवाते रहने की सुविधा को प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनायें। मिल-जुलकर काम करने की परम्परा अपनाएँ। भोजन बनाने, सफाई रखने जैसे कार्यों का बोझ एक पर न डालकर उसमें अन्य लोग भी सहयोग करें तो उनकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया बहुत ही अच्छी होगी। इन सिद्धान्तों के अनुरूप हमें अपना व्यक्तित्व ढालना चाहिए और परिवार में तदनुरूप परम्पराएँ प्रचलित करनी चाहिए। ऐसे ही वातावरण में पल कर बच्चे सुसंस्कारी बनते हैं। अगली पीढ़ी को यदि उच्च शिक्षा दिला सकने की, उनके लिए सम्पत्ति छोड़ मरने की अपनी

स्थिति न हो तो हर्ज नहीं, यदि उसे सद्गुणी-सुसंस्कारी बना दिया गया है तो निश्चित रहना चाहिए कि वे हर परिस्थिति में सुखी रह सकेंगे।

वा. ४८/१.५५

सुधार-परिवर्तन की सरल प्रक्रिया

जिस प्रकार कृषि, व्यवसाय, उद्योग, शिल्प आदि में उसकी समग्रता अर्जित करने के लिए पूरा ध्यान देना पड़ता है। उसी प्रकार परिवार संचालन में भी सतर्कता बरतनी पड़ती है। यदि उसका एक भी पक्ष गड़बड़ाने लगे तो छोटे पुर्जे की खराबी से पूरी मशीन बन्द हो जाने जैसा संकट उठ खड़ा होता है। सम्पन्नता कितनी ही आवश्यक क्यों न हो, पर वही सब कुछ नहीं है। कई बार तो वह सर्प को दूध पिलाने की तरह अनर्थकारी भी बन जाती है। दुर्गुणों को पोषण मिलता है और वे दुष्प्रवृत्तियों का रूप धारण करके ऐसे संकट खड़े करती हैं, जिनसे गरीब मध्यवर्ती लोग सहज ही बच जाते हैं।

वा. ४८/२.१९



९. परिवार निर्माण की धुरी-नारी

परिवार संस्था का आरम्भ नारी के गृह प्रवेश के साथ होता है। एकाकी पुरुष दफ्तर में काम करके और सराय में सोकर भी गुजर कर सकता है, पर घोंसला बनाने और अण्डे-बच्चों को सँभालने की बात नव-वधू के साथ ही जुड़ती है। सूक्तिकार की वह उक्ति अक्षरशः सही है जिसमें कहा गया है कि 'न गृहं गृह मित्याहु गृहिणी गृह मुच्यते' अर्थात् इमारत घर नहीं कहलाती वस्तुतः गृहिणी, घरवाली ही घर है। गृहलक्ष्मी के प्रवेश से ही टूटे पुराने घर झोंपड़े हास-उल्लास से भर जाते हैं और सृजन के बहुमुखी प्रयत्न एक निश्चित दिशा में चल पड़ते हैं। नारी घर का आरम्भ ही नहीं करती वरन् उसका विस्तार, पोषण, विकास भी वही करती है, अब उसमें इतना और जोड़ना है कि परिवार को सुसंस्कृत, परिष्कृत और समुन्नत बनाने का ईश्वर प्रदत्त उत्तरदायित्व भी वही सँभाले। उसका भावनात्मक ढाँचा इस प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सकने के लिये सर्वथा उपयुक्त बनाया गया है।

वा. ४८/२.६४

इस दिशा में पहला कदम यह होना चाहिये कि गृहलक्ष्मी, गृहसंचालिका इस योग्य बने कि वह अपनी प्रतिभा को उपयुक्त उत्तरदायित्व निबाहने में सक्षम सिद्ध कर सके। महिला जागरण का उद्देश्य ऐसे इंजीनियर तैयार करना है जो नये समाज का नया भवन बनाने में अपनी कुशलता सिद्ध कर सकें। नारी जागरण के अन्य प्रयोजन भी हैं, प्रतिफल भी, पर सबसे बड़ी उपलब्धि यही मिलनी है कि परिवार संस्था में नवजीवन भरा जा सकेगा और उस क्षेत्र में उगे हुए नर-रत्न व्यक्ति और समाज-निर्माण की समस्त समस्याओं का सहज समाधान कर सकेंगे।

वा. ४८/२.६५

स्त्री को परिवार का हृदय और प्राण कहा जा सकता है। परिवार का सम्पूर्ण अस्तित्व तथा वातावरण गृहिणी पर निर्भर करता है। यदि स्त्री न होती तो पुरुष को परिवार बनाने की आवश्यकता न रहती और न इतना क्रियाशील तथा उत्तरदायी बनने की। स्त्री का पुरुष से युग्म बनते ही परिवार की आधारशिला रख दी जाती है और उसे अच्छा या बुरा बनाने की प्रक्रिया भी आरम्भ हो जाती है। परिवार बसाने के लिए अकेला पुरुष भी असमर्थ है और अकेली स्त्री भी, पर मुख्य भूमिका किसकी है, यह तय करना हो तो स्त्री पर ध्यान केन्द्रित हो जाता

है। क्योंकि अन्दरूनी व्यवस्था से लेकर परिवार में सुख-शान्ति और सौमनस्य के वातावरण का दायित्व प्रायः स्त्री को ही निभाना पड़ता है। इसलिए स्त्री के साथ गृहणी, सुगृहणी गृह-लक्ष्मी जैसे सम्बोधन जोड़े गये हैं। पुरुष के लिए ऐसा कोई विशेषण नहीं मिलता। यहाँ गृहिणी से तात्पर्य केवल पत्नी से ही नहीं है। स्त्री चाहे जिस रूप में हो, वह जिस परिवार में रहती है वहाँ के वातावरण को अवश्य प्रभावित करती है। माता, पत्नी, बहिन, बुआ, चाची, ताई, दादी, ननद, देवरानी, जेठानी, भाभी आदि सभी परिवार के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं और वहाँ के वातावरण को, उस घर के सदस्यों को प्रभावित करती हैं। कारण कि पुरुष तो अधिकांशतः बाहर रहते हैं, वृद्ध या असमर्थ घर में रहते भी हों तो वे स्त्री की तरह वहाँ के वातावरण को प्रभावित नहीं करते। क्योंकि स्त्री की कोमलता, संवेदना, करुणा, स्नेह और ममता की जो हार्दिक विशेषताएँ होती हैं, वे पुरुषों में नहीं होतीं। इन विशेषताओं के कारण ही महिलाएँ घर के सदस्यों के अधिक निकट रहती और उन्हें प्रभावित करती हैं।

पुरुष या पिता में एक बारगी कोई दुर्गुण भी हो, तो भी माँ अपनी सन्तान को उससे बचा सकती है। शिवाजी के पिता-मुसलमान राजा के दरबार में नौकरी करते थे और उनकी अधीनता को मानते थे, पर जीजाबाई अपने पुत्र को स्वतन्त्र योद्धा के रूप में ही विकसित करना चाहती थीं। इसके लिए उन्होंने आवश्यक सभी सतर्कताएँ बरतीं। अपने पति के प्रभाव से बचाया और शिवाजी को उसी ढाँचे में ढाला। यह आश्चर्यजनक हो सकता है कि पिता जिसके प्रति कृतज्ञ हो, जिसकी रोटी खाते हों और यह भी चाहते हों कि पुत्र भी उन्हीं की तरह निकले तथा पुत्र विपरीत दिशा में ही विकसित हो, अलग ही मनोभूमि रखने वाला बन जाय। लेकिन माँ के महत्व एवं व्यक्तित्व को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं है। सामान्य जनजीवन में भी अयोग्य और दुर्व्यसनी पिता की सन्तानें योग्य तथा सच्चरित्र बन जाती हैं। इसका कारण यही है कि वहाँ माताएँ दोष-दुर्गुणों से होते रहने वाले कटु-अनुभवों की पुनरावृत्ति सन्तान में न आने देने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहती हैं।

यह भी देखा जाता है कि ईमानदार, विश्वासपात्र और सच्चरित्र व्यक्तियों की सन्तानें कभी बेईमान, धोखेबाज और चरित्रहीन निकल जाती हैं। यह भी इसलिए कि माताएँ तथा परिवार में रहने वाली स्त्रियाँ बच्चों के प्रति विशेष रूप से सावधानियाँ नहीं रखतीं तथा कई भूलें और त्रुटियाँ कर डालती हैं, जिनका प्रभाव बच्चों पर पड़ता है।

वा. ४८/२.६१

गृहिणी को 'गृह-लक्ष्मी' के सम्मानजनक विशेषण से सम्बोधित किया गया है, जिसका अर्थ है- वह नैतिक दृष्टि से सुदृढ़ और स्वभाव की दृष्टि से देवी है। मधुरता तथा सद्भाव का अमृत उसमें बहता रहता है, जिसके द्वारा वह घर के अशान्त सदस्यों को धैर्य बँधाती, दिशा बताती और प्रेरणा देती है तथा परिवार-संस्था की नींव भी मजबूत बनाती है। परिवार में सुख-शान्ति का आधार उसके सदस्यों में रहने वाला स्नेह, सहयोग और सद्भाव है। घर में इसी से स्वर्गीय वातावरण का सृजन होता है। इसलिए गृहिणी को इसके लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिए। परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे की सुविधा का ध्यान रखें, परस्पर आदर-सम्मान करें, एक दूसरे का सहयोग करें और स्नेह, सद्भाव तथा आत्मीयता, उदारता भरें। इसके लिए प्रेरणायें भरने का काम भी स्त्री ही अधिक कुशलतापूर्वक कर सकती है। वा. ४८/२.६३

उत्कर्ष की दिशा में बढ़ चलें

आमतौर से परिवार-भर के दोष-दुर्गुणों का दुःखदायी प्रभाव नारी अपने ऊपर सहती है। यह सहनशीलता तारीफ करने योग्य तो है, किन्तु इतना भर काफी नहीं। दुर्गुण और दुर्भाग्य जहाँ के तहाँ बने रहेंगे तो आपस का सहयोग बन ही नहीं पड़ेगा। स्नेह-सौजन्य का खाद-पानी पाये बिना उस छोटे बगीचे का कोई भी पौधा पूरी तरह विकास पा ही नहीं सकता। वा. ४८/२.५३

परिवार के सदस्यों की सच्ची सेवा उन्हें सद्गुणी और स्वावलम्बी बनाने में है। बाप-दादों की छोड़ी सम्पदा से ब्याज भाड़े पर गुजारा करने वाली सन्तान भले ही आराम के साथ दिन काट ले पर उसकी प्रतिभा का स्तर लुंजपुंज ही रहेगा। जिसने कठोर कर्मक्षेत्र में उतरकर भुजबल और मनोबल को चरितार्थ करने का अवसर नहीं पाया उसे एक प्रकार से अपंग ही कहना चाहिए। पूर्वजों की कमाई पर गुजर करने वाली सन्तान को पराक्रम की कसौटी पर कसते हुए अपंग ही घोषित करना पड़ेगा। वा. ४८/२.५४

यह सब छोटी-छोटी बातें भी परिवार और समाज की व्यवस्था पर बहुत प्रभाव डालती हैं। यह जितनी आसान लगती हैं उतनी ही कठिन भी हैं। कोई व्यक्ति किसी एक स्थान पर इन्हें बड़ी आसानी से लागू कर सकता है, लेकिन घर-घर, जन-जन के स्तर पर इन्हें लागू करना बहुत कठिन है। इन्हें इस विशाल स्तर पर लागू करने का एक ही रास्ता है और वह है कुशल गृहिणियों को इसके लिये तैयार करना। वा. ४८/२.५७

शुभारम्भ इस प्रकार हो

गृहलक्ष्मी का अर्थ होता है उदारचेता और सुव्यवस्था की अभ्यस्त सुसंस्कारी महिलाएँ। वे रंग-रूप की दृष्टि से कैसी ही क्यों न हों। वस्तुतः उनके सहारे ही झोंपड़ी के आँगन में भी स्वर्ग उतरता है और वे ही साधारण परिस्थितियों को आनन्द उल्लास से भर देती हैं।

ऐसी गृहलक्ष्मियाँ कहाँ से आएँ? उन्हें कहाँ पाएँ? इसे खोजने की आवश्यकता नहीं है। हर नारी में इसके बीजांकुर जन्म-जात रूप से विद्यमान रहते हैं। आवश्यकता मात्र उन्हें खाद-पानी देने की होती है। नारी को भावुकता, कोमलता, सुन्दरता और कलाकारिता के समन्वय से सृष्टा ने सृजा है। मात्र इन हीरकों को खराद पर उतारने का काम ही परिवार के लोगों को मिल-जुलकर करना होता है। इस कर्तव्य की उपेक्षा-अवहेलना होने पर वे छुई-मुई के पौधे की तरह कुम्हला भी जाती हैं और घुटन भरे वातावरण में व्यक्तित्व को अनुपयुक्त भी बना लेती हैं। जिन घरों में नारी समुदाय की स्थिति गयी-गुजरी रहेगी वहाँ कितना ही वैभव अथवा वर्चस्व क्यों न हो, आन्तरिक वातावरण ऐसा ही रहेगा जिसमें खिन्नता, विपन्नता किसी के हटाये हट नहीं सकेगी। जिस घर में गृहलक्ष्मी मुरझाई, कुम्हलाई, बाधित, पीड़ित और बँधी जकड़ी रहेगी, वहाँ उसकी प्रसुप्त प्रतिभा को जाग्रत होने का अवसर ही नहीं मिलेगा। उसके लिए मानवोचित जीवनयापन तक कर सकते न बन पड़ेगा।

हर किसी को विश्वास करना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी नारी वर्चस्व वाली कालावधि है। इस नवयुग को प्रकट, प्रत्यक्ष करने में नारी की बढ़ी-चढ़ी भूमिका होगी। नर ने अहमन्यता और कठोरता अपनाकर जो उद्दण्डता विकसित की है उसका परिमार्जन नारी की भावसंवेदना और सेवा-साधना वाली जन्म-जात सत्प्रवृत्ति से ही सम्भव बन पड़ेगा। परिवारों को नर-रत्नों की खदान उन्हीं की सहायता द्वारा बनाया जा सकेगा। देव-मानवों का अवतरण नई पीढ़ी में उन्हीं के द्वारा सम्भव होगा।

नर के कृत्यों वाले इतिहास में सृजन की तुलना में ध्वंस अधिक हुआ है। स्नेह-सहयोग कम और उद्धत अनाचार का माहौल अधिक बनता रहा है। अब इस उलटे प्रवाह को नारी में सन्निहित दिव्यता ही सीधा करेगी। इस सद्भावना के अनुरूप विचारशीलों का कर्तव्य हो जाता है कि नारी को अगले दिनों दुहरा उत्तरदायित्व सँभालने की क्षमता विकसित करने में समुचित सहयोग प्रदान करें। नर को शिक्षित, समर्थ, स्वावलम्बी बनाने के लिए अब तक जो

प्रयत्न होते रहे हैं, उन्हीं को इस समतावादी युग में नारी के लिए भी उपलब्ध कराना होगा। अलग-पिंजरों में कैद रहने के कारण उनकी संयुक्त शक्ति का संरक्षण एवं विकास न हो सका। अब उसे सम्भव बनाने के लिए न केवल घनघोर प्रयत्न करना पड़ेगा वरन् उस सामन्तवादी दृष्टिकोण को भी उलटना पड़ेगा, जिसमें नारी का स्थान दासी के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

इस समूचे परिवर्तन की तुलना में अधिक जीवट को सँजोये जाने की आवश्यकता पड़ेगी। साथ ही यह भी निश्चित है कि परिवर्तनकारी आन्दोलनों ने अब तक जितनी उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, उसकी तुलना में नारी जागरण अभियान के माध्यम से कम नहीं वरन् अधिक ऊँचे स्तर की अधिक प्रभावोत्पादक उपलब्धियाँ सम्भव होंगी। नारी जागरण अभियान को प्रभातकालीन अरुणोदय की तरह उभरता हुआ और मध्याह्न की प्रखरता अपनाने के लिए दौड़ता इन्हीं आँखों से देखा जा सकता है। सुनिश्चित भवितव्यता का साथ देने में ही समझदारी भी है और बहादुरी भी। इतने प्रचण्ड प्रवाह में जो रोड़े बनेंगे, जो उपेक्षा बरतेंगे, वे समय को न पहचान सकने का पश्चाताप ही करते रहेंगे।

विज्ञजनों में से प्रत्येक को इस महाअभियान का शुभारम्भ अपने-अपने घरों से करना चाहिए। अशिक्षितों को शिक्षित, शिक्षितों को सुविज्ञ बनाने वाली शिक्षा पद्धति का कार्यान्वयन अपने घरों के छोटे दायरे से तो कोई भी कर सकता है। उनका बौद्धिक प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए जिससे मूढ़ मान्यताओं और कुरीतियों का उन्मूलन हो सके। नारी अपने कर्तव्य और अधिकार का परिवहन करने के लिए समर्थ एवं समुद्यत हो सके। उन्हें स्वावलम्बी बनने का अवसर दिया जाय। गृह उद्योगों के माध्यम से वे अपनी उपार्जन क्षमता और दक्षता की अभिवृद्धि कर सकें, साथ ही घर से बाहर निकलने की सुविधा पाकर पड़ौस-परिकर में एक छोटा संगठन खड़ा कर सकें। बड़े परिवर्तन संगठित प्रयासों से ही सम्भव हुए हैं। महिला मण्डल इसी प्रयोजन के लिए गठित किया जा रहा है। पुरुषों को चाहिए कि वे अपने ढंग से अपने प्रभाव क्षेत्र की नारियों को प्रगति प्रयोजन के लिए संगठित करने का प्रयास करें। अपने घरों की प्रतिभाओं को इस कार्य के लिए घर से बाहर जाने और अपने वर्ग से सम्पर्क बढ़ाने के लिए सहयोगी की भूमिका निबाहने दें। संगठन को प्रारम्भिक काम एक सौंपा गया है—साप्ताहिक सत्संग। उसमें धार्मिकता का पुट रहने से एकत्रीकरण में अड़चन नहीं आती, जितना कोई अन्य आन्दोलन खड़ा करने पर अपने ही परिवार का विरोध खड़ा होने के रूप में सामने आती है।

वा. ४८/४.७१

यह प्रारम्भिक ढाल है। इससे कम में नारी प्रगति की योजनाएँ एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकतीं। घर-परिवार तक सीमाबद्ध रहने पर वे प्रवृत्तियाँ व्यापक नहीं बन सकतीं, जिन्हें अगले ही दिनों आन्दोलन का रूप धारण करना है। सुधार एवं सृजन से सम्बन्धित अनेकानेक कार्यक्रमों को नये ढाँचे के रूप में खड़ा करना है। जो शिक्षित महिलायें घरेलू काम-काज से थोड़ा अवकाश प्राप्त करती हैं, उनका कर्तव्य विशेष रूप से यह बनता है कि विचारशील नारियों से सम्पर्क साधने निकलें और उनका समीपवर्ती क्षेत्र वाला संगठन तैयार करें। साप्ताहिक सत्संगों का क्रम आरम्भ करायें। साथ ही प्रौढ़ शिक्षा, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य रक्षा, सुधरी हुई पाक विद्या, शिशु पालन, परिवारों में प्रगतिशीलता का संस्थापन, कुरीतियों का उन्मूलन आदि काम हाथ में लें। कदम-कदम बढ़ाते हुए पहुँचना वहाँ तक है जहाँ नारी को समग्र समता का लाभ मिल सके और वह अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करते हुए नवसृजन के क्षेत्र में महती भूमिका सम्पन्न कर सके।

प्रतियोगिताएँ-प्रतिस्पर्धाएँ प्रायः सभी क्षेत्रों में चलती रहती हैं। जो विजेताओं को लाभ, यश एवं गौरव प्रदान करती हैं। इन दिनों हर विचारशील को इस प्रयास के लिए कमर कसनी चाहिए कि वह अपने संपर्क के कार्यक्षेत्र में कितनी प्रतिभाएँ उतारने में समर्थ हो सका, इस कर्तव्य को बढ़े-चढ़े सेनापतियों और लोकनायकों के महान कर्तव्यों के समतुल्य ही माना जायगा, भले ही वह बीजांकुर की तरह छोटा ही दृष्टिगोचर क्यों न हो।

नारी जागृति आन्दोलन में एक संघर्ष परक मोर्चा भी है- दहेज विरोधी आन्दोलन का। इसे गाँधी जी के नमक सत्याग्रह स्तर का श्रीगणेश माना जा सकता है, जिसके पीछे नर-नारी के बीच विद्यमान भयावह विषमता की जड़ पर कुठाराघात के समतुल्य समझा जा सकता है। धूमधाम वाली, दहेज-जेवर के भार से लदी हुई शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। इस कुप्रचलन के कारण नर और नारी के बीच छोटे-बड़े की, श्रेष्ठ और निकृष्ट की परम्पराएँ चली हैं। यदि इस कुप्रचलन का पूरी तरह अन्त किया जा सके और विवाह मात्र एक घरेलू उत्सव की तरह बिना खर्च के सम्पन्न होने लगे तो समझना चाहिए कि नवयुग का शुभारम्भ हुआ। इससे अन्यान्य अनेक कुरीतियों की, अवधारणाओं की इतिश्री सम्भव हुई मानी जानी चाहिए।

वा. ४८/४.७२



१०. पारिवारिक जीवन की समस्याएँ व समाधान

पारिवारिक जीवन की गाड़ी सदस्यों के त्याग, प्रेम, स्नेह, उदारता, सेवा, सहिष्णुता और परस्पर आदर भाव पर चलती है। परिवार को सहअस्तित्व, सामूहिक जीवन, सेवा और सहिष्णुता की पाठशाला माना गया है, किन्तु जब परस्पर के सम्बन्ध स्वार्थपूर्ण, संकीर्णता, असहिष्णुता से भर जाते हैं तो परिवार नरक की साक्षात् अभिव्यक्ति के रूप में परिणत हो जाते हैं। पारिवारिक जीवन की दुर्दशा का मुख्य कारण है व्यावहारिक जीवन की शिक्षा का अभाव। लड़के और लड़कियों को अनुभवी वृद्ध गुरुजनों के सम्पर्क में रहकर व्यावहारिक जीवन में जीने की जो शिक्षा मिलनी चाहिए उसका आजकल सर्वथा अभाव है। विवाह से पहले कन्या को यह शिक्षा नहीं मिलती कि उसे पति-गृह में जाकर कैसे जीवनयापन करना है? उसका कर्तव्य-उत्तरदायित्व क्या है? उसे किन-किन सद्गुणों के द्वारा परिवार को चलाना है? यही बात लड़कों के सम्बन्ध में भी है। पारिवारिक जीवन की शिक्षा का अभाव ही गृहस्थ जीवन की दुर्दशा का मूल कारण है।

वा. ४८/४.१५

परिवार एक आदर्श प्रजातन्त्र है

परिवार में जब अपने-अपने स्वार्थ का भ्रष्टाचार बढ़ता है, लोग कर्तव्य की आध्यात्मिक भावना को भुला देते हैं तभी गृहस्थ की दुर्दशा होती है। कितने कृतघ्न होंगे वे लोग जो अपने स्वार्थ के लिये परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व भुलाकर अपना चूल्हा-चौका अलग रखने में अपनी बुद्धिमानी समझते हैं। किसी ने ऐसे कुटिल व्यक्तियों को कभी फलते-फूलते भी नहीं देखा होगा जो फूट के बीज बोकर सारी पारिवारिक व्यवस्था को तहस-नहस कर डालते हैं।

पिता अपने पुत्र के लिये सारे जीवन-भर क्या नहीं करता? श्रम करता है, जब वह खुद सो रहा होता है, तब आधी रात उठकर खेतों में जाता है, हल चलाता है, मजदूरी करता है, नौकरी करता है। क्या सब कुछ अपने लिये करता है? नहीं। एक व्यक्ति का पेट पालना हो तो चार-छह आने की मजदूरी काफी है दिन-भर श्रम करने का क्या लाभ? पर बेचारा बाप सोचता है बच्चे के लिए दूध की व्यवस्था करनी है, दवा लानी है, कपड़े सिलाने हैं, फीस देनी है, पुस्तकें

लानी हैं और उसके भावी जीवन की सुख-सुविधा के लिए कुछ छोड़ भी जाना है। जब तक शक्तियाँ काम देती हैं कोई कसर नहीं उठा रखता। अपने पेट को गौण मानकर बेटे के लिये आजीवन अनवरत श्रम करने का साहस कोई बाप ही कर सकता है।

वा. ४८/४.४

पाल-पोसकर बड़ा कर दिया। शिक्षा-दीक्षा पूरी कराई, विवाह-शादी करा दी, धन्या लग गया। पिता से पुत्र की कमाई बढ़ गई। उसके अपने बेटे हो गये, स्त्री की आकांक्षाएँ बढ़ीं। बेटे ने बाप के सारे उपकारों पर पानी फेर दिया, कोई न कोई बहाना बनाकर बाप से अलग हो गया। हाय री तृष्णा! हाय रे अभागे इंसान! तू कितना नीच है, कितना पतित है! जिस बाप ने तेरे लिये इतना सब कुछ किया और तू उसकी वृद्धावस्था का पाथेय भी न बन सका? इस कृतघ्नता से बढ़कर इस संसार में और कौन-सा पाप हो सकता है? अपने स्वार्थ, भोग, लिप्सा, स्वेच्छाचारिता के लिए बाप को ठुकरा देने वालों को पामर न कहा जाय तो और कौन सा सम्बोधन उचित हो सकता है?

पिता परिवार का अधिष्ठाता, आदेशकर्ता और संरक्षक होता है। उसकी जिम्मेदारियाँ बड़ी होती हैं। सबकी देख-रेख, सबके प्रति न्याय, सबकी सुरक्षा रखने वाला पिता होता है। क्या उसके प्रति उपेक्षा का भाव मानवीय हो सकता है? कोई राक्षस वृत्ति का मनुष्य ही ऐसा कर सकता है जो अपने माता-पिता को उनकी वृद्धावस्था में असहाय छोड़ देता है। परिवार में पिता को सम्मान मिलता है तो उसके दीर्घकालीन अनुभव, योग्य संचालन, पथ प्रदर्शन, भावी योजनाओं को नियंत्रित करने का लाभ भी परिवार को मिलता है। अपने प्रेम, वात्सल्य, करुणा, उदारता, संगठनात्मक बुद्धि से वह सब पर छाया किये रहता है, वह परिवार का पालन करता है। पिता की उचित सेवा-सुश्रुषा और देख-रेख रखना परमात्मा की उपासना से कम फलदायक नहीं होता। पिता का आशीर्वाद पाकर पुत्र की आकांक्षाएँ तृप्त होती हैं, जीवन सुमधुर, नियंत्रित और बाधरहित बनता है।

इस युग में पिता-पुत्र के सम्बन्धों में जो कड़वाहट आ गई है वह मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण और स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही है। पिता, पुत्र के लिये अपना सर्वस्व अर्पित कर दे और पुत्र व्यक्तिगत स्वतन्त्रता हेतु अनुशासन की अवज्ञा करे तो उस बेटे को निन्दनीय ही समझा जाना चाहिये। मनुष्य का सबसे शुभचिन्तक मित्र, हितैषी, पथ-प्रदर्शक, उदार जीवन रक्षक पिता ही होता है। वह समझता है कि बेटे को किस रास्ते लगाया जाय कि वह सुखी हो, समुन्नत हो, क्योंकि उसकी त्रुटियों का ज्ञान पिता को ही होता है। जो इन

विशेषताओं का लाभ नहीं उठाते उन्हें अन्त में दुःख और दैन्यताओं का ही मुँह देखना पड़ता है। परिवार में माता का स्थान पिता के समतुल्य ही होता है। एक से दूसरे को बड़ा-छोटा नहीं कहा जा सकता। पिता कर्म है तो माता भावना। कर्म और भावना के सम्मिश्रण से जीवन में पूर्णता आती है। गृहस्थी की पूर्णता तब है जब उसमें पिता और माता दोनों को समान रूप से सम्मान मिले। माता का महत्व किसी भी अवस्था में कम नहीं हो सकता।

व्यक्ति का भावनात्मक प्रशिक्षण माता करती है। उसी के रक्त, माँस और ओजस से बालक का निर्माण होता है। कितने कष्ट सहती है वह बेटे के लिए। स्वयं गीले विस्तर में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाते रहने की कष्टसाध्य क्रिया पूरी करने की हिम्मत भला है किसी में? माता का हृदय दया और पवित्रता से ओत-प्रोत होता है, उसे जलाओ तो भी दया की ही सुगन्ध निकलती है, पीसो तो दया का ही रस निकलता है। ऐसी दया और ममत्व की मूर्ति माता को जिसने पूज्यभाव से नहीं देखा, उसका सम्मान नहीं किया, आदर की भावनाएँ व्यक्त नहीं की वह मनुष्य नर-पिशाच ही कहलाने योग्य हो सकता है।

वा. ४८/४.५

कई व्यक्ति अपने परिवार को सुसंस्कृत तो बनाना चाहते हैं, पर उसके लिए केवल अपशब्द कहना, क्रोधित रहना, निंदा करना, गाली-गलौज या मारपीट करना जैसे बेहूदे तरीके ही उनके पास होते हैं। इन उपायों से किसी का सुधर सकना तो दूर, उलटे अधिक बिगड़ने, चिड़चिड़े होने और विरोधी बनने का ही परिणाम सामने आ सकता है। इस प्रकार स्कूल के बच्चों को पढ़ाने के लिए अध्यापकों को, गृहस्वामियों और कुलपतियों को भी अपने परिवार का प्रशिक्षण करने की क्रमबद्ध शिक्षा प्राप्त करनी पड़ेगी। दुःख की बात है कि जहाँ मशीनें चलाने और नौकरी करने जैसे कामों की ट्रेनिंग के लिए अनेक स्थानों पर प्रशिक्षण चलते हैं वहाँ अपना जीवन भलमनसाहत के साथ जीने और अपने अंगभूत परिवार को सुसंस्कृत बनाने की क्षमता प्राप्त करने का कोई प्रशिक्षण संस्थान नहीं है। लगता है कि उस अभाव की पूर्ति के लिए भी हमें ही एक व्यापक प्रभावपूर्ण व्यवस्था बनानी पड़ेगी। जब तक ऐसी कोई व्यावहारिक शिक्षण व्यवस्था नहीं बन जाती, तब तक इस प्रकार के साहित्य द्वारा ही बहुत कुछ मार्गदर्शन मिल सकेगा।

वा. ४८/४.७

माता-पिता की सेवा करके उनका आशीर्वाद लेने का, भाई-बहनों को सेवा-सहायता करने का, बच्चों के साथ खेलने-खिलाने का, मिल-जुल कर

खाने-बैठने का, एक दूसरे के प्रेम और विश्वास का जो लाभ इकट्ठे रहने में मिलता है, वह अकेले रहने वालों को कहाँ मिलेगा ? मरघट के पीपल की तरफ वह बेखटक खड़ा तो रहता है, पर सूनेपन में उसे मानसिक दृष्टि से भारी अभाव ही बना रहता है। उलझनों और जिम्मेदारियों का बोझ भी अकेले रहने पर अकेले ही भुगतना पड़ता है, जो कई बार अलग जीवन की सुविधा की अपेक्षा बहुत अधिक चिंता और कष्ट का कारण बनता है।

वा. ४८/४.८

पारिवारिक जीवन में उत्पन्न होने वाली मुख्य कठिनाइयाँ

- (१) अधिकार मद से उत्पन्न असन्तुलन, पक्षपात एवं मनमानी।
- (२) परिवार के सदस्यों में कार्य तथा अधिकार का उचित बँटवारा न होना।
- (३) विचार-भ्रम एवं अनावश्यक संकोच।
- (४) अनुचित कमाई से उत्पन्न बुद्धि दोष।
- (५) दुराव-छिपाव। (६) उजड़ुता एवं मनमानी।
- (७) आत्मानुशासन एवं पारिवारिक अनुशासन का अभाव।
- (८) आय-व्यय तथा अन्य महत्वपूर्ण बातों की परिवार में सभी वयस्कों को जानकारी न होना तथा सबके विचार-विमर्श से निर्णय न किया जाना।

इन सबके समाधान

- (१) पारिवारिक भावना का होना यानी पारस्परिक आत्मीयता-सद्भाव।
- (२) सभी के स्वाभिमान की रक्षा, परस्पर सम्मान एवं शिष्टाचार।
- (३) बजट बनाकर ही खर्च किया जाये।
- (४) आय-व्यय की पूरी जानकारी हर वयस्क सदस्य को हो।
- (५) पारिवारिक गोष्ठियाँ हों, जिनमें खुली एवं सौजन्यतापूर्ण चर्चा हो तथा महत्वपूर्ण निर्णय लिये जायें।
- (६) पारिवारिक मर्यादा का निर्वाह किया जाय, अनुशासन एवं आत्मानुशासन हो।
- (७) शील एवं सदाचार कभी न छोड़ा न जाय। परिश्रम तथा ईमानदारी की कमाई ही की जाय।
- (८) किसी का अहंकार न बढ़ने दिया जाये और असमानता का पोषण न होने दिया जाये। समस्याओं का समाधान कठिन नहीं। पारस्परिक प्रेम अक्षुण्य रहे तथा व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाय, तो संयुक्त परिवार सुख-शान्ति के उत्कृष्ट आधार बन सकते हैं और हर सदस्य को उनसे आनन्द की ही

अनुभूति होगी। जहाँ यह संभव न हो, वहाँ भावनाविहीन प्राण रहित ढाँचे को ढोते रहना व्यर्थ ही है।

वा. ४८/३.५५

पारिवारिक सदस्यों में जब तक समर्पण, त्याग, उत्सर्ग का भाव बना रहता है तब तक उसकी सुदृढ़ एकता को आँच नहीं आने पाती। परिवार में रहने वाला प्रत्येक सदस्य कर्तव्यों को प्रधान और अधिकारों को गौण मान, अपनी नहीं दूसरों की सुख-सुविधा को प्राथमिकता दे तो आपस में मन-मुटाव तथा विक्षोभ की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। इस त्याग-उदारता के उदात्त भाव को माता के हृदय में सहज ही देखा जा सकता है। माता के मन में छोटे बच्चों के प्रति कितना स्नेह वात्सल्य रहता है। बच्चों के लालन-पालन में स्वयं भूखे रहकर भी उसके पोषण की व्यवस्था जुटाती है। स्वयं गीले में सोकर उसे सूखे में सुलाती है। बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसके लिए वह हँसते-हँसते बड़े से बड़ा कष्ट झेल लेती है। माता न केवल बच्चे को दूध-पसीने से सींचती बल्कि अपने रक्त, माँस, हड्डी का एक-एक अंश भी बच्चे के निर्माण में लगा देती है। त्याग का ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। माता को त्याग की जीवन्त प्रतिमा कहा जा सकता है। ऐसा त्याग भाव यदि कुछ अंश में भी परिवार के हर सदस्य में आ जाय तो कलह विग्रह की स्थिति उत्पन्न न हो।

उदारता, सहिष्णुता का समावेश दैनिक जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में रहना चाहिए। प्रत्येक सदस्य यह ध्यान रखे कि हमारे व्यवहार से किसी का अहित न हो। जाने-अनजाने में ऐसे कटु शब्दों का प्रयोग न हो जो आपसी मन-मुटाव को जन्म दे। व्यवहार एवं वाणी में नम्रता, मधुरता का यह प्रारम्भिक अभ्यास आगे चलकर व्यक्ति के सामाजिक जीवन में भी बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। यह नम्रता केवल अपने से बड़ों के प्रति ही नहीं हो, छोटों का हृदय भी मधुर व्यवहार द्वारा ही जीता जा सकता है। बच्चों को भी प्यार के साथ सम्मान की आकांक्षा रहती है। इसके अभाव में या तो उनमें आत्महीनता का अभाव पनपता है या वे उद्दण्ड, उच्छृंखल बन जाते हैं। बच्चों के लिए भी तुम या आप जैसे सम्मान सूचक सम्बोधन का प्रयोग किया जाना चाहिए। सामान्य शिष्टाचार का शिक्षण बच्चे यहीं से लेते हैं। जहाँ भी चार-पाँच व्यक्तियों का संगठन हो उनके स्वभाव, आदतों, विचारों में कुछ न कुछ भेद अवश्य पाया जायेगा। एक ही माँ-बाप की सगी सन्तानें एक जैसी नहीं होती। हाथ की पाँचों अंगुलियाँ बराबर कहाँ होती हैं? पर सबके सामंजस्य-सहकार से ही कोई काम हो पाता है। हम चाहें कि सभी व्यक्ति हमारे अनुरूप हो जायें तो यह कदापि सम्भव

नहीं। इसके लिए तो दोनों ही पक्षों को कुछ न कुछ उदारता बरतनी ही होगी। ठीक यही बात पारिवारिक सदस्यों के लिए भी लागू होती है। प्रत्येक सदस्य के आपसी सामंजस्य पर परिवार की एकता व संगठन निर्भर करते हैं। स्वभावगत भिन्नता के कारण नयी बातें खड़ी हो सकती हैं, लेकिन यदि दूसरे के व्यवहार से होने वाली असुविधा को हँसते-हँसते टाल दिया जाय तो आपसी मन-मुटाव तो दूर एक दूसरे की गलतियों में भी सहज सुधार होता रह सकता है। जहाँ अपनी गलती हो उसे तुरन्त स्वीकार कर लेने में सामने वाले को कुछ कहने सोचने का अवसर ही न मिलेगा। ये बातें लगती तो छोटी हैं लेकिन व्यावहारिक जीवन में इनका बड़ा महत्व है।

वा. ४८/४.२

बड़ों के प्रति सम्मान तथा श्रद्धा, छोटों के प्रति स्नेह, प्यार की अभिव्यक्ति ही पारिवारिक सुख-शान्ति का मेरुदण्ड है। यह जिस भी परिवार में जितना ही अधिक होगा वह उतना ही संगठित रहेगा, आनन्द एवं संतोष की निर्झरिणी उन्हीं परिवारों में बहती दिखाई देती है, जिनके प्रत्येक सदस्य सद्भावना एवं सदाशयता से ओत-प्रोत रहते हैं। बच्चों को यह शिक्षा आरम्भ से ही दी जानी चाहिए कि वे बड़ों का सदा आदर करें। शालीनता एवं नम्रता उनके संस्कारों में घोलने के लिए प्रत्यक्ष एवं परोक्ष हर प्रकार के सम्भव प्रयास किए जाने चाहिए। इसमें एक कड़ी और भी जोड़नी होगी कि परिवार में जो बड़े हैं, उन्हें बच्चों की भावनाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उनकी भी कुछ मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ और समस्याएँ होती हैं जिनकी उपेक्षा करने पर उनके भीतर कुण्ठा एवं निराशा की भावना पनपती है। इन छोटी-छोटी बातों की प्रायः अधिकांश लोग उपेक्षा कर जाते हैं। जबकि ये ही पारिवारिक एकता एवं विकास की मूलभूत आधार हैं, जिनका अवलम्बन करके हर परिवार अपनी सामान्य परिस्थिति में भी सुख एवं शांति से भरी स्वर्गीय परिस्थितियों का लाभ उठा सकता है।

वा. ४८/४.३

परिवार का मेरुदण्ड पत्नी होती है। पुरुष दिन भर घर से बाहर रहता है। जितनी देर घर पर रहता है उसमें भी अधिकांश समय शौच, स्नान, भोजन, निद्रा आदि नित्य कर्मों में लग जाता है। प्रायः सारा दिन स्त्री को घर पर रहना होता है। उसका ही सीधा सम्बन्ध परिवार के छोटे-बड़े सब से रहता है। घर की अन्य स्त्रियाँ तथा बच्चे तो दिन भर घर पर रहते हैं, उनके साथ पूरा व्यवहार-क्रम पत्नी को ही चलाना पड़ता है। पुरुष जब घर आते हैं तो उनकी व्यवस्था भी उसे ही करनी पड़ती है। इसलिए घर का व्यावहारिक संतुलन बनाये रखना प्रायः स्त्री के हाथ में रहता है। पुरुष आर्थिक समस्याएँ हल कर सकते हैं, पर नियमित और

परिपूर्ण संचालन वे नहीं कर सकते, यह कार्य स्त्री को ही करना होता है। सबके स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति एवं भावना की परिपूर्ण व्यवस्था रखनी चाहिए। कुछ दोष-दुर्गुण सबमें होते हैं, हममें से किसी की भी पत्नी ऐसी नहीं होती जो पूर्णतया सब प्रकार उपयुक्त हो। माँ-बाप के घर से कुछ शिक्षा लेकर स्त्रियाँ आती हैं, कुछ बातें उनमें जन्मजात भी होती हैं, पर सबसे अधिक निर्माण कार्य ससुराल में होता है। ससुराल में भी यह कार्य विशेष रूप से पति करता है। पति यदि सुयोग्य हो तो फूहड़ पत्नी को भी सद्गुणों की खान और उन विशेषताओं से सम्पन्न बना सकता है जो पारिवारिक जीवन को सुसंचालित रखने के लिए आवश्यक हैं। अपने पिता का भरा-पूरा घर, अपने जन्म-परिवार के स्नेह-सौजन्य को छोड़कर जब नारी ससुराल आती है तो उसे इस जीवन क्रान्ति में एकमात्र प्रकाश स्तम्भ पति का प्रेम ही दीखता है। यों ससुराल में सभी से उसे सद्व्यवहार की आशा होती है, पर सबसे अधिक आकांक्षा पति की गहन आत्मीयता की होती है। वह अपने बिछुड़े हुए पितृ परिवार की सारी ममता और आत्मीयता की क्षति-पूर्ति पति के प्रेम-प्रतिदान द्वारा पूर्ण करना चाहती है। यदि वह मिल गया तो विपुल वर्षा होने पर उर्वर भूमि में लगने वाली वनस्पति की तरह उसका व्यक्तित्व अनेक सद्गुणों की हरियाली से लहलहाने लगता है। यदि यह प्राप्त न हुआ तो जिस प्रकार सुखा पड़ जाने या तुषारापात होने पर हरी-भरी फसल भी नष्ट हो जाती है उसी प्रकार नारी के संचित सद्गुण भी असंतोष की आग में जल-भुन कर समाप्त हो जाते हैं। नारी की स्वाभाविक आकांक्षा आत्मीयता को दिये बिना कोई पति उसका सच्चा प्रेम और सहयोग प्राप्त कर नहीं सकता।

हिस्टेरिया, मिर्गी, चिड़चिड़ापन, दुःस्वप्न, अनिद्रा, दिल की धड़कन, मासिक धर्म की खराबी, सिर दर्द, कमर दुखना आदि अनेक शारीरिक रोगों की जड़ स्त्रियों के आन्तरिक असंतोष में रहती है। वे स्वाभाविक लज्जावश अपनी वेदना किसी से कह तो नहीं पाती, कहे भी तो अनुकूलता उत्पन्न करने का कोई उपाय उनके पास नहीं होता। ऐसी दशा में वे चुपचाप सहती तो रहती हैं, पर आन्तरिक असंतोष उनके अनेकों सद्गुणों को जलाता-भूनता रहता है। उनका कोमल मस्तिष्क एक प्रकार से विक्षिप्त रहने लगता है, फलस्वरूप शारीरिक स्वास्थ्य ही खोखला नहीं होता, वरन् वे मानसिक विशेषताएँ भी नष्ट होने लगती हैं जो पारिवारिक सुव्यवस्था एवं विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होती हैं।

मनु भगवान की उक्ति है कि “जहाँ नारी संतुष्ट है उस घर में समृद्धि की वर्षा होगी और जहाँ उसे असंतोष रहेगा वहाँ सब कुछ नष्ट हो जायगा।”

असंतोष के छोटे-मोटे कारण व्यवस्था, श्रम सम्बन्धी असुविधा, जीवनोपयोगी वस्तुओं के अभाव, तात्कालिक घटनाएँ एवं दूसरे लोगों का असद्व्यवहार आदि कारण भी होते हैं, पर उसका प्रभाव बहुत गहरा नहीं होता। उनमें सुधार भी हो सकता है, भुलाया भी जा सकता है और संतोष भी किया जा सकता है, पर जो कमी और किसी प्रकार पूरी नहीं हो सकती वह पति के प्रेम की कमी है। उपेक्षित नारी विधवा से भी अधिक दुःखी रहती है। विधवा अपने दुर्भाग्य को अटल मानकर संतोष कर लेती है, पर सुहागिन को तो अपनी स्थिति पर आँसू ही बहाते रहना पड़ता है।

असंतुष्ट नारी के गर्भ से कभी सद्गुणी सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। अवैध संतान के गर्भकाल में माता अनेकों चिन्ताओं, विक्षोभों और भय, लज्जा, दुर्भाव आदि में ग्रस्त रहती है इसलिए आमतौर से ऐसे बच्चे उद्दण्ड और दुर्गुणी निकलते हैं। इसी प्रकार पति के प्रेम के अभाव या अन्य किन्हीं कारणों से यदि नारी असंतुष्ट और विक्षुब्ध बनी रहती है तो उसका प्रभाव गर्भस्थ संतति पर निश्चित रूप से पड़ने वाला है। ऐसे बालक को उच्च शिक्षा भी उसके मानसिक एवं आत्मिक दुर्गुणों से रहित नहीं बना सकती। इसलिए संतान को सुयोग्य और प्रबुद्ध बनाने की भूमिका के रूप में पत्नी को संतुष्ट, सुखी और निश्चित बनाने की व्यवस्था के लिए तो यह कार्य अनिवार्य ही है, क्योंकि बाहर से स्वस्थ दीखने पर भी जो भीतर से विक्षुब्ध रहती है उस नारी के आचरण में व्यवस्था, शिष्टता आदि की कमी बनी ही रहेगी। वह सुयोग्य गृहिणी नहीं बन सकेगी। अविचल विश्वास और परिपूर्ण प्रेम पाकर नारी परम संतुष्ट रह सकती है। जहाँ उसे स्नेह और सम्मान मिलता है, सहानुभूति और कृतज्ञता से देखा जाता है वहाँ वह आत्म-समर्पण करके सब कुछ होम देने को तैयार हो जाती है। नारी का रंग-रूप, वेश-विन्यास, बनाव-श्रृंगार देखना निरर्थक है, यह चीजें बहुत ही तुच्छ और क्षणिक हैं। आन्तरिक सौन्दर्य काले, कुरूप, अशिक्षित और अस्वस्थ शरीर में भी हो सकता है। उस सच्चे सौन्दर्य का पुष्प भावनाओं की टहनियों पर खिलता है। इस आन्तरिक सौन्दर्य का रसास्वादन पति-पत्नी जहाँ आपस में किया करते हैं, वहाँ स्वर्ग ही विराजमान रहता है। जिन पति-पत्नी ने अपनी अन्तरात्मा को एक करके एकता और आत्मीयता की, प्रेम और विश्वास की गंगा प्रवाहित कर ली, उनके परिवार में सदा मंगल ही मंगल रहेगा। एकता वहाँ की नष्ट न होगी, लक्ष्मी वहाँ से टाले न टलेगी। ऐसे घर के हर व्यक्ति का भविष्य आशा और उत्साह की दिशा में ही अग्रसर होगा।

वा. ४८/४.९

व्यक्ति से ही समाज और समाज से ही राष्ट्र बनते हैं। ऐसा व्यक्ति जिसका परिवार अंतर्कलह से ग्रस्त है, समाज और राष्ट्र के निर्माण में क्या योगदान दे सकता है? गृहस्थ जीवन, जिसके ऊपर समाज और राष्ट्र की स्थिति निर्भर है, उसकी इस दुर्दशा का समाधान किए बिना सुख-शांति, उन्नति विकास की कल्पना करना एक विडम्बना होगी। जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन की दुर्घटनाग्रस्त गाड़ी के मलबे में दबा हुआ सिसक रहा है, वेदना से छटपटा रहा है वह समाज अथवा राष्ट्र के कल्याण के लिए सोच ही क्या सकता है? और क्या कर सकता है?

वा. ४८/४.१५

हमारा पारिवारिक जीवन और गृह-कलह

शास्त्रकार ने पिता को उसके दायित्वों का बोध कराते हुए स्पष्ट कहा है -

मालाकारो यथा वृक्षान्प्रभु प्रदत्ता सुसिञ्चति।

वात्सल्येन तथा सुष्ठु पालयेत्कृत्य निष्ठाया॥

कन्या सुपुत्रयोस्तुल्यं वात्सल्यं च भवेत् सदा।

तुल्यानन्दं विजानीपाद द्वयोर्भर्तसि प्राप्तयोः॥

अर्थात्? जिस प्रकार माली उद्यान के हर वृक्ष को निराई, गुड़ाई, सिंचाई द्वारा विकसित करने में लगा रहता है उसी प्रकार सभी बालक चाहे वह पुत्र हो या पुत्री परमात्मा द्वारा प्रदत्त पुष्प-वृक्षों की तरह हैं उनका लालन-पालन समान भाव से करना चाहिए।

वा. ४८/४.२०

परिवार यों न तोड़ें

“सभी युगों में नर-नारियों के जीवन के दो प्रधान अवलम्बन रहे हैं एक विवाह-दूसरा घर। वर्तमान युग में यह दोनों आधार तलाक नामक अमंगलकारी प्रेत के प्रभाव से ध्वस्त हो गये हैं। इसने नर-नारियों के हृदयों को भय से भर दिया है, इससे समाज को महान क्षति उठानी पड़ रही है। परिवार टूटते जा रहे हैं, बच्चों का भविष्य संकट में पड़ गया है।” पारस्परिक सहयोग, प्रेम, स्नेह की भावना का विकास विवाह-विच्छेद की परिकल्पना से रुक जायेगा एवं परिवार टूटते जायेंगे। इस कल्पना से हृदय काँप जाता है। अलगाव की इस प्रवृत्ति को तब तक निरुत्साहित ही करना चाहिए जब तक कि वैसा करने के लिए अनिवार्य विवशता ही सामने न आ खड़ी हो।

वा. ४८/४.२३

परिवार में एक-दूसरे के प्रति हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए? छोटों के प्रति बड़ों का क्या उत्तरदायित्व होता है? बड़े अपने छोटों के प्रति किस तरह निष्पक्ष रूप से व्यवहार और निर्णय करें। आपसी न्याय का प्रतिपादन किस प्रकार किया जाय? पारिवारिक जीवन में सद्भावना का क्या स्थान है आदि ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं जिसका अनुपालन परिवार में होने लग जाय तो सुख और शान्ति की आनन्दानुभूति सबको होने लग जाय।

इस गुलशन को उजाड़ें नहीं सँवारें

सराय एवं होटलों में सारी चीजें उपलब्ध रहती हैं। पैसे द्वारा उन्हें खरीदा जा सकता है। पर बहिन का स्नेह और माँ की ममता, पिता का वात्सल्य तथा पत्नी का प्यार भारी कीमत देकर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी कोई भी संस्था अथवा संगठन अब तक नहीं बन सके हैं जो परिवार संस्था का स्थानापन्न बन सकें और मनुष्य की शरीर से इतर मनः एवं भाव जगत की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। घूम-फिर कर नजर सदियों से चली आ रही परिवार संस्था पर ही जाती है। जहाँ मानसिक एवं भाव जगत की परितृप्ति संभव है।

वा. ४८/४.२४

हम पारिवारिक संवेदना खो ही देंगे क्या ?

अमुक व्यक्ति ने आत्म-हत्या कर ली, भाई द्वारा भाई की हत्या कर दी गयी, कपड़ों में मिट्टी का तेल छिड़क कर पत्नी ने खुदखुशी कर ली, महिला बच्चों समेत कुएँ में कूदी, बहू की हत्या के जुर्म में पति, सास व देवर को आजीवन कारावास-ऐसी घटनाएँ आये दिन समाचार पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। शायद ही कोई ऐसा दिन होगा जिस दिन परिवारों में कलह, हिंसा, मारपीट आदि के समाचार न मिलते हों। यह समाचार एक ओर उस पतन के द्योतक हैं जिससे आज का समाज बुरी तरह ग्रस्त होता चला जा रहा है। दूसरी ओर वे इस तथ्य के प्रमाण भी हैं कि हमारा पारिवारिक स्नेह, आत्मीयता और सौमनस्य किस तरह पीड़ा और पतन का प्रतीक बन गया है।

वा. ४८/४.२९

इस युग में ऐसे परिवारों की संख्या बहुत कम ही होगी जिसमें स्नेह-सौजन्य एवं सहयोग रूपी अमृत की धारा बहती हो। घर-घर में प्रत्येक सदस्य के बीच कलह-क्लेश, ईर्ष्या-द्वेष, वैमनस्य तथा मनोमालिन्य की भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। परिवार में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-बहू के मध्य जो

प्यार और कर्तव्य-भावना होनी चाहिए, उसकी सभी उपेक्षा करते दिखाई देते हैं।

परिवार की इन असह्य विकृतियों के कारण लोग पारिवारिक जीवन से ऊबे, शोक-सन्ताप में डूबे अपने भाग्य को कोसते नजर आते हैं। ऐसे कलुषित एवं कलह पूर्ण पारिवारिक जीवन में सुधार लाने के लिए आवश्यक है कि उसमें स्नेह, ममता, सौहार्द, उदारता इत्यादि दैवी गुणों के बीज बोये जायें और उसे सुव्यवस्थित बनाया जाये, क्योंकि व्यवस्थाक्रम में गड़बड़ी होने पर ही मनोमालिन्य, असन्तोष तथा लड़ाई-झगड़ों की शाखाएँ फूटने लगती हैं। परिणाम स्वरूप उस वातावरण में सुख-समृद्धि, उन्नति का मार्ग अवरूद्ध होता जाता है। इन्हीं परिस्थितियों के उत्पन्न होने के कारण ही गृहस्थ जीवन की दिशा निर्धारित नहीं होती। चलने से पूर्व यदि अपने गन्तव्य स्थान का निर्धारण कर लिया जाय तो मंजिल तक पहुँचने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार पारिवारिक जीवन प्रारम्भ करने से पहले उसका आयोजन समझ लिया जाय और उसके अनुरूप ही चला जाय तो ही उत्पन्न होने वाली विकृतियों का उभार सम्भव है। अतः गृहस्थ बसाने से पूर्व उसका अर्थ एवं उद्देश्य भली प्रकार समझ लेना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। मूलतः गृहस्थ का अर्थ परिवार में दूसरे के प्रति आत्मीयता और संवेदना के भावों से होता है। भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन का एक निश्चित एवं श्रेष्ठ उद्देश्य रहा है। सुखी और समृद्ध जीवन के साथ-साथ सेवा, संवेदना, त्याग, उदारता आदि दैवी गुणों का विकास ही उसका मूल आधार है।

वा. ४८/४.३०

गृह-कलह-कारण और निवारण

आज जिधर भी दृष्टि डालिए लोग पारिवारिक जीवन से ऊबे, शोक-सन्ताप में डूबे, अपने भाग्य को कोसते नजर आते हैं। बहुत ही कम परिवार ऐसे होंगे जिनमें स्नेह-सौजन्य की सुधा बहती दिखाई पड़े, अन्यथा घर-घर में कलह, क्लेश, कहा-सुनी, झगड़े-टंटे, मार-पीट, रोना-धोना, टूट-फूट, बाँट-बटवारा और दरार, जिद फैली देवर-भौजाई यहाँ तक कि पति-पत्नी तथा बच्चों एवं बूढ़ों में टूट-फूट लड़ाई-झगड़ा, द्वेष-वैमनस्य तथा मनोमालिन्य उठता और फैलता दिखाई देता है। आज का पारिवारिक जीवन जितना कलुषित, कुटिल और कलहपूर्ण हो गया है कदाचित् ऐसा निकृष्ट जीवन पहले कभी भी नहीं रहा होगा।

अपने पैरों खड़े होते ही पुत्र असमर्थ माता-पिता को छोड़ कर अलग घर बसा लेता है। भाई-भाई की उन्नति एवं समृद्धि को शत्रु की आँखों से देखता है।

पत्नी-पति को चैन नहीं लेने देती। बहू-बेटियाँ, फैशन प्रदर्शन के सन्निपात से ग्रस्त हो रही हैं। छोटी संतानें जिद्दी, अनुशासनहीन तथा मूढ़ बनती जा रही हैं। परिवारों के सदस्यों के व्यय तथा व्यसन बढ़ते जा रहे हैं। कुटुम्ब कबीले वाले कौटुम्बिक प्रतिष्ठा को कोई महत्व देते दृष्टिगोचर नहीं होते। निःसन्देह यह भयावह स्थिति है। परिवार टूटते, बिखरते जा रहे हैं। चिन्तनशील सद्गृहस्थ इस विषपूर्ण विषम स्थिति में शरीर एवं मन से चूर होते जा रहे हैं। गृहस्थ धर्म एक पाप बनकर उनके सामने खड़ा हो गया है। अनेक समाज हितैषी, लोकसेवी, परोपकार की भावना रखने वाले सद्गृहस्थ इस असहनीय पारिवारिक परिस्थिति के कारण अपने जीवन लक्ष्य की ओर न बढ़ सकने के कारण अपने दुर्भाग्य को धिक्कार रहे हैं। वा. ४८/१.६८

पारिवारिक जीवन की इस पतनपूर्ण दयनीय दशा का कारण खोजने पर पता चलता है कि इसका दायित्व हम गृहस्थों पर ही है, जिन्होंने परिवार परम्परा का मुख्य उद्देश्य विस्मरण कर दिया है और इसे एक टूटी-फूटी गाड़ी समझकर खींचते रहना ही अपना कर्तव्य समझ लिया है। परिवार बसा लेना आसान है, लोग आये दिन बसाते ही रहते हैं। उसका पालन भी कोई विशेष कठिन नहीं, सभी उसका पालन करते हैं, किन्तु परिवार को समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने के लिये उसका निर्माण करना एक श्रमसाध्य कर्तव्य है। अधिकतर लोग परिजनों के लिये अधिकाधिक सुख-सुविधाएँ देने, उनके लिये अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र तथा आराम की चीजें जुटाना ही पारिवारिक जीवन का उद्देश्य मान बैठे हैं। उनका ध्यान परिवार की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए धनोपार्जन तक ही सीमित रहता है। वे यह भी नहीं सोच पाते कि भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा स्वास्थ्य के साथ परिवार की एक सर्वोपरि आवश्यकता और भी है और वह है उसे सद्गुणी बनाना।

सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने परिवार को एक वाटिका तथा अपने को उसका उत्तरदायी माली समझे। जिस प्रकार एक माली अपने बाग को सींचता, उसमें खाद देता और एक-एक फूल-पत्ती की देखभाल एवं साज-सँभाल करता हुआ इस बात का भी ध्यान रखता है कि उसके पौधों में कोई कीड़ा तो नहीं लग रहा है, उसके बाग में निरर्थक झाड़-झंखाड़ तो नहीं उग रहे हैं और यदि वह इसके लक्षण देखता है तो तुरन्त ही सावधान होकर उनको दूर करने के उपाय करता है। इसी प्रकार सद्गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने परिवार का पालन करे, उसे भोजन, वस्त्र दे, शिक्षा-दीक्षा दिलवाये, किन्तु इस पर भी पूरा ध्यान रखे कि उसके परिवार का कोई व्यक्ति व्यसनी, स्वार्थी अथवा संकीर्ण तो नहीं हो रहा है, उसके घर में कलह-क्लेश तथा टूट-फूट के कारण तो नहीं उभर रहे हैं। यदि उसे ऐसे कोई संकेत मिलें तो तुरन्त

सुधार में तत्पर हो जाये। स्नेह, सख्ती, शासन, अनुशासन जिस उपाय से बने पनपती हुई विकृतियों को दूर करे।

वा. ४८/१.६९

गृह-कलह के कारण क्या होते हैं ? इस पर विचार किया जाये तो यही निष्कर्ष सामने आता है कि बहुत छोटी-छोटी बातों को तूल देने वाला छिछोरा अहं, तालमेल न बैठ सकने की हेकड़ी, भावनात्मक असंतुलन एवं पारस्परिक अविश्वास ही इसके मूल में होते हैं और इसका परिणाम घर को नरक बना डालने के रूप से सामने आता है।

वा. ४८/४.३७

शिक्षा के वर्तमान रूप का जब अधिक विस्तार नहीं हुआ था, तब यह माना जाता था कि अशिक्षा ही गृह-कलह का कारण है। यद्यपि हमारे देश में शिक्षा का औसत अभी भी बहुत कम है, तो भी पहले की तुलना में तो उसका प्रभाव-परिणाम, पारस्परिक सामंजस्य, संतुलन, माधुर्य और शान्तिपूर्ण घरेलू वातावरण के रूप में सामने आता था, परन्तु देखा विपरीत ही जा रहा है। शिक्षित पति-पत्नियों में आपसी मनमुटाव कुछ कम नहीं है और परिवार के अन्य सदस्यों से तो उनका तालमेल न बैठना सामान्य बात होकर रह गई है।

गृह-कलह धनियों में भी पाया जाता है, गरीबों में भी। सुशिक्षितों के बीच भी, अशिक्षितों के बीच भी। शरीर से तगड़े लोगों में भी आपसी घरेलू विवाद देखा जाता है और दुबले-पतले में भी। इससे यह स्पष्ट होता है कि घर की शान्ति, सामंजस्य और सद्भाव, स्वास्थ्य शिक्षा या सम्पन्नता पर ही पूरी तरह निर्भर नहीं करते। सफल सद्गृहस्थ भी सभी वर्गों धनी-गरीब, मोटे-पतले, शिक्षित-अशिक्षित आदि सभी में पाये जाते हैं। देखा यह जाता है कि एक परिवार में तो शिक्षा आपसी समझदारी और संतुलन तथा उदारता का आधार बनती है, दूसरे में वही बाल की खाल उधेड़ने वाली, बौद्धिक खींचातानी तथा छोटी बात को 'फील' करने, यानी गहराई तक उसकी प्रतिक्रिया होने का आधार प्रस्तुत कर देती है। समुचित धन एक परिवार को नमक, तेल, लकड़ी की दैनन्दिन चिन्ताओं से मुक्त कर, उन्हें स्वाध्याय, पर्यटन, अनुभव-विस्तार तथा समाजसेवा में सक्रिय रहने की प्रेरणा देता है, तो उतना ही धन किसी अन्य परिवार में मजा-मौज, दुर्व्यसन, अलगाव और दुराव का कारण बन जाता है। अच्छा स्वास्थ्य स्वाभाविक उत्फुल्लता और गतिशीलता से किसी प्रकार परिवार में हर्ष-विनोद का वातावरण बनाये रखने का आधार बनता है तो अन्यत्र वही असंयमित देहावेग और उससे उत्पन्न निष्ठाहीनता, तनाव तथा संघर्ष का रूप ले लेता है।

पारिवारिक आनन्द के लिए अपेक्षित गुण मुख्यतः जीवन-दृष्टि से सम्बन्धित हैं। सबसे पहला विचारणीय तथ्य यही है कि जीवन के बारे में परिवार के वयस्क सदस्यों की अवधारणा क्या है? क्या वे उसे परमसत्ता की एक प्रकाश किरण मानते हैं या पानी का बुलबुला मात्र। जो जीवन के प्रति नास्तिक भाव रखते हैं, उनमें भी पारस्परिक सन्तुलन संभव तो है, परन्तु यह सन्तुलन किसी बड़े स्वार्थ के सामने कभी भी टूट सकता है। जबकि जीवन को दिव्यचेतना का अंश मानने वाले लोग किसी भौतिक उपलब्धि के लिए अपनी निष्ठाएँ नहीं बदल सकते।

जीवन-दृष्टि से ही जुड़ी अन्य बात यह है कि जीवन की सार्थकता किसी क्रिया या क्षेत्र-विशेष में मानी जा रही है अथवा जीवन की विविधताओं को स्वीकार कर चला जा रहा है। ऐसे व्यक्ति जिन्हें अपने गुण-विशेष में ही जीवन का निचोड़ नजर आता है, फिर वह लेखन हो, संगीत हो, सौन्दर्य हो, नृत्य हो, कला हो या कुछ और हो तथा साथ ही अपने इस गुण के सामने जो और किसी को कुछ नहीं गिनते, वे इस विशेष में चाहे बहुत आगे बढ़ जायें, परन्तु समाज एवं परिवार में वे अपने छोटे-छोटे आग्रहों की पूर्ति के लिए विक्षोभ-विक्षेप, कलह-कटुता पैदा करने में हिचकते नहीं। जहाँ दूसरों की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आधारभूत आवश्यकताएँ भी अपने मामूली स्वार्थ, शौक या भावतरंग के सामने हेय मानने की प्रवृत्ति हो, वहाँ पारस्परिक सद्भाव कैसे टिक सकता है। जहाँ संकीर्ण स्वार्थपरता रहती है, वहाँ अविश्वास अवश्य होता है। अविश्वास भी एक प्रकार की नास्तिकता ही है। क्योंकि यह मानना कि वे स्वयं तो किसी भी स्थिति में गलती नहीं कर सकता और दूसरा गलतियों से बच नहीं सकता या कि एक बार भूल करने के बाद फिर उसे सुधार नहीं सकता, इससे उनके बीच की दूरी बढ़ती जाती है।

पारिवारिक जीवन में ऐसे अवसर आते ही रहते हैं, जब एक-दूसरे के बारे में सन्देह पनप जाने की स्थिति आ खड़ी होती है। यदि आपस में विश्वास रहे तो यह सन्देह निःसंकोच भाव से पूछकर जाँचा-परखा जा सकता है। ऐसा न करने पर भीतर ही भीतर पनपता-फैलता सन्देह घृणा-विद्वेष का विष वृक्ष बनकर प्रकट होता तथा विग्रह, विरोध एवं विलगाव के फल देता है। खाई बढ़ने का एक अन्य कारण यह है कि अपनी ही धुन में मस्त रहकर दूसरे की जरूरतों और भावनाओं की उपेक्षा की जाती है। यह उपेक्षा स्पष्टतः क्षुद्रता का परिणाम होती है। देखा यहाँ तक जाता है कि बाहर के अपने मित्रों-परिचितों की हारी-बीमारी,

प्रसन्नता-हताशा की एक-एक घटना में रुचि दिखाने वाले लोग अपने परिवार के दूसरे सदस्य की बीमारी, परेशानी या समस्या पर सिर्फ नाक-भौं सिकोड़ते हैं, सहानुभूति-सहयोग की कभी जरूरत ही नहीं समझते। उपेक्षा, अविश्वास, स्वार्थपरता, अहमन्यता और सन्देह ये सभी दोष जीवन-दृष्टि से सम्बन्धित हैं। जहाँ उदारता, सदाशयता, समानता और सहानुभूति की भावना तथा विचार होगा, वहाँ ये परिस्थितियाँ टिक नहीं सकतीं। इसीलिए सुखी परिवार के लिए बाहरी व्यवहार के सूत्र ढूँढ़ने और उन पर यान्त्रिक ढंग से अमल करने से काम चलने का नहीं।

‘मैनर्स’ और ‘टेक्नीक’ का अपना महत्व है। शिष्टता-भद्रता और तौर-तरीके आकर्षक एवं प्रसन्नतादायक होते हैं। लेकिन मात्र उतने से परिवार में आपसी सौमनस्य स्थापित नहीं हो जाता। जहाँ स्वार्थों की आपसी टकराहट नहीं है, अधिक अवधि तक साथ रहना नहीं है, वहाँ सभा-सोसाइटी, भीड़ में अथवा प्रारंभिक परिचय में तो शिष्टता के तौर-तरीके भाते हैं, एवं प्रभावित करते हैं, लेकिन इनका असर तात्कालिक ही होता है, स्थायी नहीं रह पाता। यदि सामने वाले के प्रति मन में अनादर-अविश्वास आ जाये, तो वही शिष्टता आडम्बर प्रतीत होने लगती है। परिवार के सदस्यों को एक दूसरे का व्यवहार देखने-परखने का तो भरपूर अवसर मिलता ही है, अपने प्रति अमुक सदस्य के मनोभाव क्या हैं? यह भी हर एक को ज्ञात होता रहता है। इसलिए वहाँ शिष्टता एवं व्यवहार सम्बन्धी नियमों-उपनियमों के निर्वाह भर से बात नहीं बन सकती। इन सबसे ऊपर सर्वाधिक महत्पूर्ण है भावनात्मक श्रेष्ठता और सच्ची आत्मीयता।

वा. ४८/४.३८

यह आत्मीयता जीवन-दृष्टि का परिणाम है जहाँ मात्र भौतिक सुख-सुविधाएँ ही जीवन की वास्तविक उपलब्धियाँ मानी जाएँगी, वहाँ सीमित साधनों के कारण परिवार में परस्पर एक दूसरे को प्रतिस्पर्धी मानकर चला जायेगा। प्रतिस्पर्धा का भाव साधनों की प्रचुरता से मिटने वाला नहीं क्योंकि तब प्रत्येक की सुखोपभोग की इच्छा भी उसी अनुपात में फैलती-बढ़ती जायेगी। प्रतिस्पर्धा का भाव न रहा, तो उदासीनता का भाव आ सकता है। क्योंकि मन की आसक्ति तो अपने लिए सुख-सुविधा जुटाने की ही दिशा में रहेगी। दूसरों की अपने जैसी ही चिन्ता करने का अवकाश कहाँ रहेगा? हाँ, अपनी किसी ने तनिक भी उपेक्षा की तो जरूर माथा गरम होने लगेगा।

प्रतिस्पर्धा के स्थान पर आत्मीयता का, भावनात्मक एकरूपता का भाव सही जीवन दृष्टि द्वारा ही आता है और बना रहता है। यह आत्मीयता रही तो

तौर-तरीकों में कभी चूक भी हो गई, तब भी तनाव बढ़ेगा नहीं। शिष्टाचार एवं व्यवस्था के नियमोपनियमों की तकनीक बाह्य कलेवर है, आवश्यक वह भी है। पारिवारिक स्वरूप उसी आधार पर सुन्दर बनता है, किन्तु आत्मीयता, एकरूपता की जीवन-दृष्टि तो परिवार का प्राण है। उसके बिना पारिवारिक भावना जीवित ही नहीं रह सकती। अतः सर्वोपरि आवश्यकता परिवार के आधारभूत दर्शन को, सघन आत्मीयता को, प्रखर अनुभूति के स्वरूप को समझने की है। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ गृह-कलह कभी भी पनपता नहीं। जहाँ इसका अभाव होता है, वहाँ पारिवारिक शान्ति कभी टिक नहीं पाती।

वा. ४८/४.३९

दाम्पत्य में बिस्तराव कारण और निवारण

दाम्पत्य जीवन अनन्य सहकार की परिणति है। एक को दूसरे का ध्यान रखना पड़ता है। दोनों को समान रूप में एक दूसरे को स्नेह, सम्मान, विश्वास और सहकार प्रदान करना पड़ता है। ताली दोनों हाथ से बजती है। पति उच्छृंखलता बरते और पत्नी को दासी समझे तो दोनों पहियों की समता-सहकारिता रहने पर भी गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।

वा. ४८/२.१७

प्यार वह नहीं जिसमें उत्कृष्ट लक्ष्य का समावेश न हो। बाजारू दोस्ती का स्वरूप यह है कि प्रियपात्र का चापलूसी के सहारे अधिकाधिक शोषण किया जाय। पतियों को पत्नियों के साथ प्रेम के नाम पर इसी विडम्बना को रचते देखा जाता है। वास्तविकता की परख यह है कि साथी को बहिरंग और अन्तरंग दृष्टि पाने से किसने किसे कितना समुन्नत बनाया?

वा. ४८/२.१९

गृहस्थ जीवन की सफलता के लिए शिक्षा, सम्पन्नता और योग्यता ही पर्याप्त नहीं हैं। गृहस्थ जीवन का आधार है पति-पत्नी और उन दोनों के जीवन में सामंजस्य तथा सम्बन्धों में मधुरता। यह हो तो पारिवारिक जीवन सुखी बिताया जा सकता है, अन्यथा घर में छोटी-छोटी बातों को लेकर दिन-रात चिख-चिख होती रहती है और पति-पत्नी कितने ही योग्य सुशिक्षित क्यों न हो, घर का वातावरण कलह और तनाव से ही भरा रहता है।

उन परिवारों की ओर निगाह दौड़ाई जाय जहाँ कि पति-पत्नी दोनों ही अशिक्षित और गँवार हैं, परन्तु एक दूसरे के प्रति समर्पित हैं। पत्नी स्वयं को पति की सेविका, दासिता तथा उसकी इच्छाओं की डोरियों से बँधी कठपुतली मानती और पति अपने आपको उसका स्वामी मालिक। वहाँ बहुत कुछ परिवार का

वातावरण सुखी, शांत दिखाई देता है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुर ही रहते हैं। तनाव, क्लेश-कलह उन परिवारों में भी होता है, परन्तु पत्नी बचपन से मिले संस्कारों के कारण सब कुछ सहती जाती है। इस कारण परिवार में शान्ति भले ही दिखाई दे, लेकिन पत्नी उसकी प्रतिक्रिया अन्य और रूपों में प्रकट कर देती है। जैसे उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, छोटी-छोटी बातों को लेकर वह बच्चों को मारपीट देती है, परिवार के अन्य सदस्यों से वह अपेक्षित मधुरता नहीं बरत पाती आदि-आदि।

आधुनिक शिक्षित परिवारों में जहाँ पत्नी भी अपना दर्जा पुरुष के बराबर मानती है वहाँ सीधी टकराहट होती है, परिणाम होता है- पति-पत्नी से असन्तुष्ट और पत्नी-पति से। दोनों एक दूसरे के प्रति शिकायतों से भरे हुए और दोनों ही एक दूसरे से भीतर ही भीतर ऊबे हुए, इन कारणों से परिवार हर घड़ी टूटन के कगार पर खड़े रहते हैं। यदि पति-पत्नी एक दूसरे से सामंजस्य स्थापित कर सकें और वैसा ही स्नेह, सद्भाव बरतते रहें, जैसा कि दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करते समय नवदम्पति के रूप में बरतते थे तो परिवार का वातावरण सुख और आनन्द से परिपूरित हो जाय।

इस तथ्य को सभी स्वीकारते हैं कि पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति सामंजस्य बनाये रहने पर ही गृहस्थी को सुख-शान्ति का आगार बना सकते हैं, परन्तु जानते हुए भी यह क्यों नहीं हो पाता। इसके कारण है- पहला तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ जरूर होती हैं, पति-पत्नी विवाह से पूर्व अपने जीवन साथी की एक आदर्श छवि अपने मन में बनाये रहते हैं। विवाह होने पर नये-नये साथी के प्रति भावुकता भरा आकर्षण उन त्रुटियों को नजर अन्दाज करा देता है, परन्तु जैसे-जैसे परिचय पुराना होता जाता है पूर्व में सँजोयी गयी वह छवि धूमिल पड़ने लगती है और एक-दूसरे की कमियाँ अखरने लगती हैं।

आवश्यक है कि मनुष्य होने के नाते अपने जीवन साथी की कमियों, त्रुटियों और कमजोरियों के प्रति सहिष्णुता का दृष्टिकोण अपनाया जाय। इसका यह अर्थ नहीं कि त्रुटियों को सहन करने से आशय जीवन साथी के व्यक्तित्व और चरित्र को दूषित ही रहने देना है। विवाह ही इसलिए किया जाता है कि पति-पत्नी एक प्रगाढ़ आत्मीय साथी के रूप में एक-दूसरे का विकास करें। लेकिन जीवन साथी की त्रुटियों को पुलिस अधिकारी की तरह देखने और उसे अपराधी समझने की जो प्रवृत्ति है वह दाम्पत्य जीवन की सरसता को तो तोड़ती ही है। यहीं से एक दूसरे के प्रति शिकायत रखने और असन्तोष व्यक्त करने की

शुरूआत होती है। वस्तुतः शिकायत इसलिए नहीं होती कि पति या पत्नी में कोई अवगुण है, बल्कि शिकायत इसलिए रहती है कि उस अवगुण के कारण स्वयं अपने को असुविधा हो रही है। जैसे मान लीजिये पति रिश्वत ले रहा है, मिलावट कर रहा है, चोरबाजारी या कालाबाजारी कर रहा है तो आमतौर पर पत्नियाँ इन आपराधिक प्रवृत्तियों के लिए पति को नहीं रोकतीं। सामान्य गृहणियाँ अपने पति के शराब पीने से भी परहेज नहीं रखती हैं। शराब पीना बुरा इसलिए लगता है कि पति शराब पीकर उसके साथ मारपीट या गाली-गलौज करता है अथवा सारी आमदनी की भेंट चढ़ा देता है, जुआ खेलने वाले पति जब जुए में बहुत सी रकम जीत कर लाते हैं तो कई पत्नियाँ प्रसन्नता व्यक्त करती हैं, परन्तु जब वह रकम हार कर आता है और दुबारा पैसा माँगता है तो शिकायत होने लगती है।

वा. ४८/४.४५

इसी प्रकार पत्नी पड़ोस के लोगों से, घर के अन्य सदस्यों से चाहे जितना लड़-झगड़ ले कोई गम्भीर बात नहीं है। बात गम्भीर तो तब बनती है जब पत्नी पतिदेव की सेवा टहल में कोई कमी कर देती है या उसको इच्छित सुविधाएँ नहीं दे सकती है। कहने का अर्थ यह कि पति-पत्नी को एक दूसरे के अवगुणों से उतनी घृणा नहीं होती जितनी कि उनके कारण स्वयं को होने वाली असुविधा से। इसी मनोवृत्ति के कारण पति-पत्नी एक-दूसरे के विकास में सहायक होने के स्थान पर एक-दूसरे को परेशान करने वाले शत्रु की तरह बरताव करने लगते हैं। अवगुणों का परिष्कार या व्यक्तित्व का परिमार्जन ही यदि उद्देश्य रहे तो उससे पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति इतना भयंकर रुख नहीं अपनाते जितना कि आमतौर पर अपना लेते हैं। अवगुण या व्यक्तित्व की दुर्बलताएँ तो बीमारियों की तरह हैं जिन्हें उपचार से ठीक किया जाना चाहिए। बीमार और कमजोर आदमी को कोई बैर अथवा प्रताड़ना की दृष्टि से नहीं देखता, बल्कि उसके प्रति सहानुभूति ही रखता है। उद्देश्य यदि वस्तुतः अपने जीवन साथी के व्यक्तित्व का परिमार्जन ही है तो उसके लिए सहानुभूतिपूर्वक उपचार किया जाना चाहिए, न कि एक-दूसरे को लताड़ा या फटकारा जाय, परन्तु असली शिकायत तो स्वयं को होने वाली असुविधा है और इसीलिए सुधार के स्थान पर शोषण या दमन के प्रयास होते देखे जाते हैं।

पति-पत्नी में एक दूसरे से असन्तोष भी इसीलिए रहता है कि उनकी अपेक्षाएँ पूरी नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, पति की शिकायतें हो सकती हैं कि पत्नी उस पर बराबर ध्यान नहीं देती, समय पर खाना नहीं बनाती अथवा उसकी आकांक्षा के अनुरूप सज-धज कर नहीं रहती, उसके पास अधिक समय तक

नहीं बैठती आदि-आदि। पत्नी भी अपनी उपेक्षा होने, माँगें जिन्हें आवश्यकता भी कहा जाता है पूरी नहीं की जाती, पति उसे अपने साथ बाजार घुमाने नहीं ले जाता, सैर-सपाटे नहीं कराता है अथवा अपने दोस्तों में ही लगा रहता है आदि-आदि की शिकायत करती है। यह अपेक्षाएँ किया जाना स्वाभाविक है, पर कई दृष्टियों से ये गौण महत्व की भी हो जाती हैं। जैसे परिवार में पति या पत्नी के अतिरिक्त दूसरे अन्य सदस्य भी होते हैं। उनका भी मुखिया और गृहणी पर अधिकार है। यों भी कहा जा सकता है, परन्तु पति या पत्नी चाहते हैं कि हमारा जीवन साथी सारा समय हमारे लिए ही लगाये। यह अनुचित है और इस अपेक्षा के मूल में जो कारण रहते हैं वही अन्य तमाम समस्याएँ पैदा करते हैं। सारे असन्तोष की जड़ यह है कि दम्पति का उद्देश्य एक-दूसरे की सेवा करना, परस्पर सहयोग द्वारा एक-दूसरे का विकास करना नहीं, बल्कि जीवन साथी का उपयोग अपनी सुविधा के लिए करना होता है। एक विचारक ने कहा है - कि दाम्पत्य जीवन में असन्तोष तथा असफलताएँ इसलिए नहीं आती कि किसी में कोई कमी है, बल्कि असफलता का मुख्य कारण तो यह है कि दोनों घटक एक दूसरे की सेवा करने के स्थान पर एक-दूसरे का शोषण करने में ज्यादा लगे रहते हैं।

इस दृष्टिकोण को यदि अपनाया जा सके और पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति सेवा, सद्भावना, सहिष्णुता और सुधार के कर्तव्य पूरे करते रहें तो दाम्पत्य जीवन में सुख-शान्ति, स्नेह-मधुरता का निर्रर बहाया जा सकता है।

वा. ४८/४.४६



११. संयुक्त परिवार सौभाग्य और समुन्नति का द्वार

संयुक्त परिवार हर तरह से उपयोगी

संयुक्त परिवार के गुणों और दोषों दोनों का विचार एवं स्मरण आवश्यक है। संगठन और सहयोग से, प्रेम एवं आत्मीयता से उपलब्ध होने वाले आनन्द तथा लाभ सम्मिलित परिवारों की स्वाभाविक उपलब्धि है। किन्तु ये अच्छाइयाँ, तभी तक बनी रहती हैं, उनके सुफल तभी तक मिलते रहते हैं, जब तक उनके आधार कायम रहें और आवश्यक नियमों का पालन किया जाता रहे। संयुक्त-परिवार में सुख-शांति एवं सुव्यवस्था का आधार आत्मीयता एवं पारस्परिक सहयोग ही होता है। जिम्मेदारियों का आपसी बँटवारा सभी के सिर का बोझ उठा सकने योग्य बना देता है। सामूहिक उपार्जन से सबसे बड़ा लाभ यह है कि सम्मिलित सम्पत्ति की मात्रा अधिक होती है और उस पर हर एक को अपना अधिकार प्रतीत होने से प्रसन्नता होती है। पारिवारिक समृद्धि परिवार के प्रत्येक सदस्य को हर्ष देती है। वह जानता है कि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में उसका उपयोग होगा। उपयोग के अतिरिक्त समृद्धि का होना अपने आप में लोगों की प्रसन्नता का आधार बनता है। इसका कारण उस समृद्धि के कारण हो सकने वाली सुरक्षा का बोध ही है। संयुक्त परिवार में यह बोध गलत भी नहीं सिद्ध होता। हारी-बीमारी, विपत्ति, दुर्घटना, शोक आदि के क्षणों में परिवार की सम्पत्ति एवं सहायता काम आती है। विवाह-शादियों तथा उल्लास के अन्य आयोजनों, उत्सवों में भी जो विशेष खर्च सिर पर आ पड़ता है, उसे संयुक्त परिवार की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति तथा मिली-जुली पूँजी से सहजता से उठाया जा सकता है। बाद में उसे स्वाभाविक क्रम से पूरा किया जाता रहता है। इससे ऋण के ब्याज तथा मानसिक बोझ दोनों से मुक्ति मिलती है। एक-दूसरे के सहयोग से पहिया लुढ़कता रहता है और अत्यधिक श्रम तथा चिन्ता का अवसर नहीं आ पाता।

मनुष्य को आर्थिक सहयोग की तो जब-तब ही आवश्यकता पड़ती है, पर मानवीय सहयोग की आवश्यकता सदैव ही पड़ती रहती है। हर्ष-उल्लास और विपत्ति-पीड़ा के अवसर पर जब परिवार के लोग एक साथ ही उठ खड़े होते हैं तथा अपने-अपने ढंग से सहायता करते हैं, तो उससे होने वाली प्रसन्नता अनुभव की ही वस्तु है।

वा. ४८/३.१९

सबके साथ रहने का उल्लास ही अलग है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अपरिचितों के बीच पहुँचकर भी उसका दिमाग एकान्त के तनाव-बोझ से हलका होने लगता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। परिचितों से अपने अनुभवों का सम्प्रेषण करने, आदान-प्रदान करने की ललक हर एक में होती है। फिर आत्मीय-स्वजनों के बीच उत्पन्न होने वाले उल्लास का क्या कहना! माँ की ममता भरी दृष्टि, पिता का गम्भीर व्यक्तित्व, भाई-बहिनों का उमड़ता स्नेह, मीठी नौक-झोंक, पत्नी का प्रेम तथा बच्चों की मधुर-मधुर नटखट, कुतूहल-जिज्ञासा, तुतलाहट इन सबका सम्मिलित आनन्द मन को सरस-सक्रिय बनाये रहता है। कष्ट की स्थिति में उपलब्ध सेवा सुश्रुषा, आत्मीयता की छाया, उसे सहज तथा हलका बना देती है। मिल-जुलकर रहने से समाज में परिवार की साख बढ़ती है। लोग भी सम्मान करते हैं। विरोधी चाहे जब अहित करने की कुचेष्टा का दुस्साहस नहीं कर पाते।

संयुक्त परिवार की सम्मिलित पूँजी और विश्वस्त सहयोग नये उद्योग प्रारम्भ करने का आधार बन सकता है। दूसरे सहयोगी या नौकर लाभ के प्रति उतने उत्सुक नहीं होते या फिर निश्छल नहीं होते, अकेले लाभ कमाने के चक्कर में रहते हैं, दिन-रात जुटना भी पसन्द नहीं करते। घर की पूँजी और घर का श्रम, विश्वस्त आत्मीयों का सहयोग-सहभागिता निश्चय ही अधिक लाभ का आधार बनती है। खेती, बागवानी, पशुपालन एवं गृह उद्योग में घर के लोगों का सम्मिलित श्रम ही लाभकारी सिद्ध होता है। छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, सबके उपयुक्त काम की गुंजाइश भी होती है। न कोई निठल्ला रहता है, न बेकार। सभी शक्ति अनुसार काम करते और आवश्यकतानुसार सुविधा-साधन प्राप्त करते रहते हैं।

श्रद्धा-सम्मान, विनम्रता, सौजन्य, सन्तुलन जैसे सदगुणों के प्रशिक्षण का सर्वाधिक उपयुक्त स्थल संयुक्त परिवार ही है। बड़ों के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति, छोटों के प्रति प्यार-दुलार की मधुरता, शील-संकोच, कब खुलकर बात करना, कब चुप रहना, कैसे-क्यों कहना, मनोरंजन आदि के समय भी कैसे मर्यादा बनाये रखना, ये सब संयुक्त परिवार में दैनन्दिन जीवन में ही स्वभाव का अंग बनते जाते हैं। अपनी आवश्यकताएँ दूसरों के तारतम्य के अनुसार मर्यादित करना, दूसरों के अंश का भी ध्यान रखना, दूसरों के लिये त्याग की तत्परता जैसे अमूल्य सदगुण संयुक्त परिवार में ही स्वाभाविकता से सीखे जाते हैं। पति-पत्नी, बच्चों वाले परिवार में बच्चों को श्रेष्ठ गुण सीखने के अवसर कम ही मिलते हैं। उन्हें लेना ही लेना आता है, देने की त्याग की वृत्ति का उनका नियमित

प्रशिक्षण नहीं हो पाता। यह भावनात्मक प्रशिक्षण संयुक्त परिवार प्रथा की सबसे बड़ी विशेषता है। श्रमशीलता, सहयोग, आत्मानुशासन, मितव्ययिता जैसे प्रगति के लिये आवश्यक गुणों का विकास पारिवारिक भावना की स्वाभाविक निष्पत्ति है। शिष्टाचार, वाक्-संयम, आवेग-आवेश पर नियन्त्रण का अभ्यास परिवार के वातावरण में अनायास होता चलता है।

साथ-साथ रहने पर कई तरह की बचत होती है। चार भाई अलग रहकर चार चुल्हे जलायेंगे। चार कमरे, चार उपकरण, चार अलग-अलग व्यवस्थाएँ जुटानी होंगी। यही बात प्रकाश, साज-सामान आदि पर लागू होती है। साथ रहने पर कम खर्च आता है। आमोद-प्रमोद के साधनों में तो अच्छी खासी बचत हो जाती है। एक रेडियो, एक अखबार, सम्मिलित पुस्तकालय से सबका काम चल जाता है। बच्चों की पुस्तकें भी एक दूसरे के काम आ जाती हैं। एक ही कक्षा के बच्चे किताबों के एक सेट से काम चला लेते हैं। इसी प्रकार अनेक मदों में बचत होती रहती है। छोटी-छोटी बचत ही कुल मिलाकर बड़ा रूप ले लेती है और ठोस लाभ का आधार बन जाती है। अपनी पत्नी-बच्चों को लेकर अलग परिवार बसा लेने वालों को रोग-विपत्ति, प्रसव-काल तथा बच्चों के लालन-पालन के समय आटा-दाल का भाव मालूम पड़ता है। ऐसे परिवार में पति या पत्नी अथवा छोटे बच्चे में एक से अधिक बीमार पड़ा, तो सारा कामकाज अव्यवस्थित होने लगता है। पत्नी रोग शय्या पर है तो घर और बच्चे की व्यवस्था सम्हालने के लिये पति अवकाश ले और खीझता-झन्नाता जैसे-तैसे काम निपटाए। घर का काम ही इतना हो जाता है कि रोगी की समुचित सुश्रुषा, देखभाल नहीं हो पाती और उसके अच्छा होने में अधिक समय लगता है। माता-पिता, भाई-बहन के साथ रहने पर, एक-दो व्यक्तियों की बीमारी से उनकी परिचर्या समान्य क्रम में ही होती रहती है, किसी एक को पूरे समय खपना नहीं पड़ता। घर में कोई अस्त-व्यस्तता नहीं आती।

यही स्थिति दुर्घटना, संकट, आकस्मिक विपत्ति के समय होती है। अकेले आदमी के ऐसे समय हाथ-पाँव ही फूलने लगते हैं। कहीं अपाहिज-असमर्थ हो गये, तो आजीविका का विकट प्रश्न आ खड़ा होता है। नौकरी छूट जाने पर बच्चों की पढ़ाई बन्द होने व उनके भूखों मरने तक की नौबत आ जाती है। संयुक्त परिवार में ऐसी भयंकर स्थिति कभी नहीं आती। परस्पर सहयोग से सब झेल लिया जाता है। जिस पत्नी को लेकर, सन्तान के अधिक अच्छे ढंग से लालन-पालन की कामना से अलग घर बसाया गया था, वह जब सचमुच ही

आसन्न-प्रसवा होती है, तो खुशी का वह अवसर भी चिन्ता एवं परेशानी का पहाड़ साथ लिये आया लगने लगता है। अस्पताल में भी प्रसव-काल में घर-परिवार या परिचय की किसी स्त्री की उपस्थिति आवश्यक होती है। उस समय आत्मीय सहायक की उपस्थिति कष्ट के उन क्षणों को हलका बनाती है। प्रसव के उपरान्त लम्बे समय तक जच्चा को सेवा-सुश्रूषा की अत्यधिक आवश्यकता होती है। संयुक्त परिवार में यह सब सुगमता से होता रहता है। जबकि एकाकी परिवारों की दशा उस समय अत्यधिक कठिनाइयों से भरी हो जाती है। इसका जच्चा और बच्चा, दोनों पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। प्रसव से टूटी स्त्री लम्बे समय तक पनप नहीं पाती। उस समय यदि अधिक श्रम करना पड़ गया, उचित विश्राम न मिल पाया तो पोषक पदार्थों का संग्रह किसी काम नहीं आने का। थकान में वह खाया ही न जायेगा। शरीर टूट जायेगा, बच्चे को भी पौष्टिक दूध न मिल सकेगा। एकाकीपन अत्यधिक महँगा सिद्ध होगा।

वा. ४८/३.१९

बच्चों का पालन-पोषण भी कोई हँसी-खेल नहीं है। उनके उमड़ते उल्लास से भरपूर अनन्त जिज्ञासा को प्रतिपल उचित समाधान चाहिए, कल्पना-प्रिय मन को किस्से-कहानियों का भण्डार चाहिए और सक्रिय शरीर को संरक्षक-मार्गदर्शक साथी चाहिए। बड़े-बूढ़े इन सभी आवश्यकताओं की स्वाभाविक पूर्ति करते हैं। उनके पास समय और अनुभव दोनों भरपूर होते हैं। बच्चों-बूढ़ों की जोड़ी खूब जमती है। इस प्रकार संयुक्त परिवार प्रथा से बच्चों, बूढ़ों, वयस्कों सभी को अनगिनत लाभ हैं। वयस्कों को बड़े-बूढ़ों के प्रति कृतज्ञता का मानवीय भाव रखना ही चाहिए। उनके जरा-जीर्ण शरीर को अपना बोझ आप ढोने, बिना सेवा-सहायता के दुर्गति सहने के लिये छोड़ देना कठोरता एवं कृतघ्नता है। अपने संकीर्ण सुखों की भ्रान्त कामना के कारण अपने पालकों, जीवन दाताओं को निस्सहाय छोड़ देना क्या उचित है? संयुक्त परिवार ही वह एकमात्र व्यवस्था है, जिसमें किसी विधवा या परित्यक्ता को ससम्मान मायके में शरण मिल जाती है। उसका शील पूर्णतः सुरक्षित रहता है तथा एकाकी आर्थिक भार भी नहीं उठाना पड़ता। अपनी क्षमता भर श्रम करने से उसका भी परितोष होता है और सामान्य क्रम में गुजारा हो जाता है। इसी प्रकार विधुरों को गृह-व्यवस्था की ऊब भरी झंझट नहीं मोल लेनी पड़ती। संयुक्त परिवार ही वह प्रणाली है, जिसमें असमर्थ, असहाय, अयोग्य, अविकसित लोग भी खप सकते हैं, अन्यथा वे दर-दर की ठोकें खाते फिरते हैं और समाज के नियमों के लिये एक समस्या बने रहते हैं।

इस प्रकार संयुक्त परिवार हर तरह से उपयोगी लाभकारी एवं आवश्यक है, लेकिन सिर्फ तब, जब वे अपने आधारों पर खड़े हों। अपनी अन्तर्निहित प्रेरणाओं से भरे हों।

वा. ४८/३.२१

सामंजस्य की रीति-नीति

जिस परिवार में सुख, शान्ति और संतोष विद्यमान हो वह स्वर्ग के समान है। इसके विपरीत जिस घर में कलह, अशांति और असन्तोष हो वह नर्क के समान होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

भारत में अधिकतर संयुक्त परिवार परिपाटी चली आ रही है। पाश्चात्य देशों में विवाह होने पर पुत्र और पुत्रवधू परिवार से अलग रहने लगते हैं। माता-पिता के लिए मासिक या वार्षिक पेन्शन भेजकर अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ बैठते हैं। माता-पिता या कोई पारिवारिक सदस्य अस्पताल में बीमार पड़ा हो तो पुत्र औपचारिकता के नाते सम्वेदना का तार भिजवाकर संतोष कर लेता है, परन्तु हमारे देश में अभी तक ऐसी स्थिति पैदा नहीं हुई है। यहाँ भी पारिवारिक विघटन की स्थिति प्रायः पैदा हो रही है। माँ-बाप के सुनहले स्वप्न साकार नहीं हो पाते। पुत्र पैदा होने पर यही इच्छा रहती है कि कब बड़ा हो? कब हमारे जीते जी इसका विवाह हो? कब बहू आए? कब बहू आए? इत्यादि। कभी-कभी वे बाल-विवाह कर देने में कोई हर्ज नहीं समझते। ऐसी स्थिति में कोई (अबोध नवदम्पति) अपने कर्तव्य को कैसे समझ पाएगा? कभी-कभी चट मँगनी और पट ब्याह भी हो जाती है।

नई बहू परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। स्वभावतः पुत्र द्वारा माँ के स्नेह में कमी आ जाती है। यदि दुर्भाग्यवश बहू को दहेज कम मिला हो तो सास के सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती। कोई न कोई बहाना ढूँढ़कर बहू को डाँटने, फटकारने, भला-बुरा कहने में कोई और कोर-कसर बाकी नहीं रखती। कोई सुशील स्वभाव की बहू हो तो चुपचाप कड़वा घूँट पीकर आत्महीनता एवं ग्लानि का जीवन जी लेती है। यदि तेज तर्रार हुई तो खूब जम कर ठनती है। पति दुविधा में पड़ जाता है कि क्या किया जाए? किसका पक्ष लिया जाए? सास-बहू, ननद-भावज और देवरानी-जेठानी के कलह से सारा परिवार परेशान हो जाता है।

वा. ४८/३.३६

भारतीय परिवारों में सास-बहू का झगड़ा सदियों पुराना बन गया है। बहू एक नये भिन्न परिवार की लड़की है, जिसे अपने ससुराल की कोई जानकारी

नहीं। घर का काम-काज और सदस्य उसके लिए अजनबी है। उसे उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है। वह अपनी सास से माँ का प्रेम प्राप्त करना चाहती है, किसी कमाण्डर जैसे व्यवहार को नहीं। उससे किसी भी कार्य से गलती होना स्वाभाविक है, अतः अच्छी प्रकार उसे काम समझाया जाना चाहिए। वह अपने मायके की हेठी और आलोचना सहन नहीं कर सकती, भले ही वह किसी निर्धन परिवार की लड़की हो। आत्म सम्मान की रक्षा हर व्यक्ति करना चाहता है फिर उसे क्यों वंचित किया जाए? यह जरूरी नहीं कि बहू तो सर्वगुण सम्पन्न हो और सास झगड़े की जड़। बहू जब अपने कर्तव्य में जान-बूझकर उपेक्षा करती है, धृष्टता, दुर्जनता का व्यवहार करती है, तो सास बड़ी होने के नाते यह कैसे सहन कर लेगी? जहाँ सास से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बहू को पुत्रीवत् देखे, मातृवत् स्नेह दे, वहाँ बहू से भी यह आशा की जाती है कि वह सास को सर्वोपरि सम्मान दे। घरेलू काम-काज को कर्तव्य समझकर करती रहे, भावज और देवरानी के बच्चों को नहलाए, उनके कपड़े साफ करे और उन्हें प्यार करे। परिवार के सभी बड़ों की यथायोग्य सेवा करे। सहनशीलता, सूझ-बूझ, कार्य-कुशलता और श्रमशीलता का परिचय दे। किसी से अशिष्ट व्यवहार न करे। तभी पारिवारिक कलह की समूल समाप्ति हो सकती है।

माँ-बाप बच्चों को जन्म दे देते हैं, किन्तु सही लालन-पालन सुसंस्कार देने की आवश्यकता नहीं समझते। बच्चे परिवार की इकाइयाँ हैं। इनकी उपेक्षा देश के प्रति उपेक्षा होगी। बच्चों को संस्कारवान एवं स्वस्थ बनाने के लिए निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(१) माता-पिता अपने लाड़ले को अनावश्यक कुछ भी न सिखाएँ। खाने-पीने और शौचादि का समय निश्चित कर दीजिए। कम से कम एक वर्ष तक माँ को अपने बालक को स्तनपान कराना ही चाहिए। तभी माँ के संस्कार बच्चे में प्रविष्ट हो सकते हैं। बच्चे को आवश्यकता से अधिक न खिलाएँ, हर वक्त खिलाते रहने से उसे अपच ही होगा।

(२) बच्चों को भूत-प्रेत और अन्धेरे का भय मत दिखाइए। इस से बच्चे का स्वभाव शंकालु और डरपोक हो जाता है। व्यक्तित्व के विकास के लिए निडरता का होना परमावश्यक है।

(३) पारिवारिक कलह के धिनौने वातावरण से बच्चों को दूर रखा जाए। गाली-गलौज देने वालों से बच्चों का सम्पर्क न हो। शिष्टाचार के पालन में तनिक भी कठोरता न बरती जाए।

(४) पारिवारिक व्यक्ति अपने व्यसनों का प्रदर्शन बच्चों के सामने न करें। बच्चा-बन्दर की भाँति नकलची होता है। धूम्रपान करने वाला और शराबी पिता अनायास ही ये दुर्गुण विरासत में अपनी सन्तान को दे देता है।

(५) जादू-परियों और दैत्यों की कहानी के बजाय महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग बच्चों के मनःस्तरानुसार सुनाने चाहिए, जिससे उनमें निर्भीकता, वीरता, साहस, सज्जनता, दया, विवेक और परहित कातरता आदि गुण स्वतः विकसित हो सकें।

पारिवारिक शांति, समृद्धि एवं हित के लिए अपव्यय को रोकना आवश्यक है। फैशन, मृत्युभोज, ब्रह्मभोज एवं अन्य असंगत कार्यों पर धन खर्च करने की अपेक्षा बच्चों को सुशिक्षित, सुसंस्कारी बनाने पर धन खर्च किया जाना चाहिए।

समय का अपव्यय भी एक विकट समस्या है। स्त्रियाँ खाली समय में प्रायः निरर्थक बातें या किसी की निन्दा करती हैं। खाली समय में परिवार की शिक्षित स्त्रियाँ घर की सजावट-सफाई का कार्य कर सकती हैं अथवा कोई अन्य दस्तकारी का काम कर सकती हैं। इससे परिवार की आर्थिक स्थिति कुछ हद तक सुधर सकती है। परिवार के प्रबुद्ध व्यक्ति अपने व्यस्त जीवन से समय निकालकर परिवार के सदस्यों की सम्भावित त्रुटियाँ दूर करने के लिए प्रेम तथा लगन से काम करें। उन्हें चरित्रवान्, सद्गुणी एवं परोपकारी बनाने के लिए उत्साहित करें। यह तभी सम्भव हो सकता है यदि परिवार का मुखिया इस स्तर का व्यक्ति हो।

वा. ४८/३.३७

पृथकता छोड़ें-सामूहिकता अपनायें

यह समस्त विश्व एक शरीर की तरह है। इसमें मनुष्य का स्थान एक उँगली के बराबर समझा जा सकता है। उँगली का महत्व तभी तक है जब तक कि वह शरीर के साथ जुड़ी हुई है।

असंख्य आत्माओं में जगमगाने वाली चेतना की ज्योति का केन्द्र एक ही है। पानी की प्रत्येक लहर पर एक-अलग सूर्य चमकता है, पर वस्तुतः वह एक ही सूर्य की अनेक प्रति-छवियाँ हैं। समुद्र की हर लहर का अस्तित्व भिन्न दिखाई पड़ने पर भी वस्तुतः वे विशाल सागर की हिलोरें ही हैं। इस समस्त विश्व में केवल एक ही समष्टि आत्मा है-जिसे परमात्मा के नाम से पुकारते हैं। सबमें वही प्रतिभाषित हो रहा है, जो माला की मणियों के मध्य पिरोये हुए धागे की तरह पृथक दीखने वाले प्राणियों को परस्पर एक सूत्र में बाँधे हुए है। इस बन्धन में बाँधे रहना ही श्रेयस्कर है। समग्र का परित्याग कर जब हम पृथक होते

हैं, अपने अहंकार की पूर्ति के लिये अपना वर्चस्व प्रकट करने और अलग रहकर अधिक सुविधा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तब हम भारी भूल करते हैं। पाते कुछ नहीं खोते बहुत हैं। समग्रता के वैभव से लाभान्वित होने की सुविधा खो बैठते हैं और एकाकीपन के साथ मिलने वाली तुच्छता हर दृष्टि से अपर्याप्त सिद्ध होती है।

अँगुली हाथ से अलग कटकर रहने की तैयारी करते समय यह सोचती है कि मैं क्यों सारे दिन हाथ का आदाब बजाऊँ? क्यों उसके इशारे पर नाचूँ? इसमें मेरा क्या लाभ? मेरे परिश्रम और वर्चस्व का लाभ मुझे क्यों न मिले? यह अलग रहकर ही हो सकता है। इसलिए अलग ही रहना चाहिए। अपने श्रम और उपार्जन का लाभ स्वयं ही उठाना चाहिए। यह सोचकर हाथ से कटकर अलग रहने वाली अँगुली कुछ ही समय में देखती है कि उसका अनुमान गलत था। शरीर के साथ जुड़े रहने पर उसे जो जीवनदाता रक्त मिलता था वह मिलना बन्द हो गया। उसके अभाव में वह सूख कर सड़ गई। उस सड़े टुकड़े को छूने में भी लोगों ने परहेज किया जब कि हाथ में साथ जुड़े रहने पर वह भगवान का पूजन करती थी। हाथ मिलाते समय बड़ों के स्पर्श का आनन्द लेती थी। महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखती थी। बड़े काम करने का श्रेय प्राप्त करती थी। पृथक होने के साथ-साथ वह सारी सुविधाएँ भी समाप्त हो गई। अँगुली नफे में नहीं घाटे में रही।

फूल का अपना अलग भी महत्व है, पर वह नहीं जो माला में गुँथे रहने पर होता है। एकाकी फूल किसी महापुरुष या देवता के गले में नहीं लिपट सकता। यह आकांक्षा तो सूत्रात्मा को आत्म समर्पण कर माला में गुँथने के बाद ही पूरी हो सकती है। व्यक्तिवादी, एकाकी स्वार्थी, संकीर्ण मनुष्य समूहगत चेतना से अपने को अलग रखने की सोच सकता है। अपने ही लाभ में निमग्न रह सकता है। दूसरों की उपेक्षा कर सकता है, उन्हें क्षति पहुँचा सकता है और इस प्रकार अपने उपार्जन को, शोषणात्मक उपलब्धियों को अपने लिए अधिक मात्रा में संग्रह कर सकता है, पर अन्ततः यह दृष्टिकोण अदूरदर्शितापूर्ण सिद्ध होता है। पृथकता के साथ जुड़ी हुई दुर्बलता उसे उन सब लाभों से वंचित कर देती है, जो समूह का अंग बनकर रहने से ही मिल सकते थे।

समुद्र की हर लहर अपना सरंजाम अलग खड़ा करे तो वे तनिक से जल के रूप में बिखर जायेंगी और ज्वार-भाटे के समय उनका जो गौरव देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाते थे, उससे उन्हें वंचित ही रहना पड़ेगा। नौकाओं को पलट देने की शक्ति, गरजती हुई ध्वनि फिर उनमें कहाँ रहेगी? किसी गद्दे

में पड़ी सूख जायेंगी। अपने स्वरूप को भी स्थिर न रख सकेंगी। सूखने के बाद उनका अस्तित्व, उनकी सरसता की चर्चा का अस्तित्व भी मिटा देगा। वहाँ सूखा नमक भर शमशान की राख की तरह पड़ा होगा? लहरें समुद्र से पृथक अपने अस्तित्व का स्वतंत्र निर्माण करने की एषणा, महत्वाकांक्षा के आवेश में भटकने का ही उपक्रम करती हैं। लाभ के लोभ में घाटा ही वरण करती हैं।

ईंटों के समन्वय से भवन बनते हैं। बूँदों के मिश्रण से बादल बनते हैं। परमाणुओं का सहयोग पदार्थ की रचना करता है। अवयवों का संगठित स्वरूप शरीर है। पुर्जों की घनिष्टता मशीन के रूप में परिणत होती है। पंचतत्त्वों से मिलकर यह विश्व सृजा है। पंच प्राण इस काया को जीवित रखे हुए हैं। दलबद्ध योद्धा ही समर्थ सेना है। कर्मचारियों का गठित समूह ही सरकार चलाता है। यदि इन संघटकों में पृथकतावादी प्रवृत्ति पनपे और डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकने लगे तो जो कुछ महान दिखाई पड़ता है तुच्छता में बदल जायगा।

वा. ४८/३.३९

तुच्छता अपना अस्तित्व तक बनाये रख सकने में असमर्थ है। प्रगति भी पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है। दूसरों को पीछे छोड़कर एकाकी आगे बढ़ जाने की बात सोचने वाले उन संकटों से अपरिचित रहते हैं जो एकाकी के अस्तित्व को ही संकट में डाल सकते हैं। अँगुली हाथ से कटकर अलग से अपने बलबूते पर प्रगति करने की कल्पना भर कर सकती है। व्यावहारिक क्षेत्र में उतरने पर ही यह कड़ुई सच्चाई सामने आती है कि पृथकता लाभदायक दीखती भर है वस्तुतः लाभदायक तो सामूहिकता ही है।

एक ही आत्मा सबमें समाया हुआ है। इस तथ्य को गम्भीरतापूर्वक समझना चाहिए और एक ही सूर्य की असंख्य लहरों पर चमकने के पीछे सन्निहित वस्तुस्थिति पर ध्यान देना चाहिए। हम सब परस्पर सघनतापूर्वक एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। मानवीय प्रगति का गौरवशाली इतिहास उसकी समूहवादी प्रवृत्ति का ही सत्परिणाम है। बुद्धि का विकास भी सामूहिक चेतना के फलस्वरूप ही सम्भव हुआ है। बुद्धि ने सामूहिकता विकसित नहीं की, सहयोग की वृत्ति ने बुद्धि का विकास संभव किया है।

हमें समूह का एक अंग होकर रहना चाहिए। अपने को समाज का एक घटक अनुभव करना चाहिए। प्रगति एकाकी नहीं हो सकती। सुविधाओं का उपभोग एकाकी किया जाय तो उससे अगणित विकृतियाँ उत्पन्न होंगी। बाहर ईर्ष्या-द्वेष बढ़ेगा, आक्रमणकारी बढ़ेंगे और व्यसनों की भरमार आ धमकेगी।

अन्तस में चोर जैसी आत्मग्लानि खाने लगेगी और परिवार में आपा-धापी पैदा होगी। व्यक्तिगत बड़प्पन के प्रयत्नों को ही तो स्वार्थ कहा जाता है। स्वार्थी सम्मान नहीं तिरस्कार प्राप्त करता है। उस मार्ग पर चलते हुए उत्थान नहीं पतन ही हाथ लगता है। संकीर्णता की परिधि में आबद्ध पोखर का जल सड़ेगा और सूखेगा ही। स्वच्छता और सजीवता तो प्रवाह के साथ जुड़ी हुई है। बहता हुआ जल ही सराहा जाता रहा है।

हम पृथकतावादी न बनें। व्यक्तिगत बड़प्पन के फेर में न पड़ें। अपनी प्रतिभा अलग से चमकाने का झंझट मोल न लें। समूह के अंग बनकर रहें। सबकी उन्नति में अपनी उन्नति देखें और सबके सुख में अपना सुख खोजें। यह मानकर चलें कि उपलब्ध प्रतिभा, सम्पदा एवं गरिमा समाज का अनुदान है और उसका श्रेष्ठतम उपयोग समाज को सज्जनतापूर्वक लौटा देने में ही है।

समुद्र बादलों को देता है, बादल जमीन को देता है, जमीन नदियों के द्वारा उस जल को पुनः समुद्र में पहुँचा देती है। यही क्रम विश्व की स्थिरता, हरितिमा शांति और शीतलता का आधार है। हम अपने को विस्तृत करें। सबको अपने में और अपने को सब में देखें। आत्माओं में चमकती हुई परमात्मा की सत्ता को समझें। यदि ऐसा कर सके तो हमें व्यक्तिवाद की तुच्छता छोड़कर समूहवाद की महानता ही वरण करनी पड़ेगी।

वा. ४८/३.४०



१२. परिवार निर्माण के लिए मानसिक पोषण भी आवश्यक है

शरीर को जब आहार की आवश्यकता होती है तो हमें भूख लग जाती है, तब हम खाने के लिये आतुर हो उठते हैं, उसी प्रकार मन, मस्तिष्क को भी भूख लगती है। उन्हें भी उस भूख को मिटाने के लिये आहार चाहिए। यह भूख हर मनुष्य को लगती है। यह बात दूसरी है कि वह उस भूख का अनुभव कर पाता हो या नहीं कर पाता हो। शारीरिक भूख को मिटाने के लिये दूध, फल, रोटी, शाक, भात आदि आहार लिया जाता है। उसी प्रकार मन-मस्तिष्क का आहार स्वाध्याय तथा सत्संग से पूरा होता है। स्वाध्याय से तात्पर्य किसी पुस्तक को स्वयं पढ़ना या दूसरे से पढ़वा कर स्वयं सुनना। सत्संग से तात्पर्य है किसी विद्वान तथा चरित्रवान व्यक्ति के अर्जित गुणों तथा अनुभवों का लाभ उनकी वाणी तथा आचार-व्यवहार से प्राप्त करना।

जिन लोगों को इस बात का ज्ञान होता है कि हमारे शरीर को पोषण देने के लिये किस प्रकार का भोजन करना चाहिए। शरीर के लिये सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति करने वाला स्वच्छ तथा पवित्र और ईमानदारी से उपार्जित आहार ही हमारे शरीर को समुचित पोषण प्रदान करता है। यह जानने वाले व्यक्ति भोजन में इन सब बातों का ध्यान रखते हैं, किन्तु इनसे अनभिज्ञ व्यक्ति उनका ध्यान नहीं रखते, उन्हें तो पेट भरने से मतलब रहता है, शरीर तो अपनी माँग को पूरी कराके ही छोड़ता है।

अकाल की स्थिति में लोग अन्न के अभाव में जीवित रहने के लिये व भूख शांत करने के लिये वृक्षों के पत्ते, छाल तथा अन्य कई पदार्थ भी खा जाते हैं। इसी प्रकार यदि हम अपने मन-मस्तिष्क की भूख को अच्छे मानसिक खाद्य-उत्तम पुस्तकों व सत्संग के द्वारा पूरी नहीं करते तो वह इधर-उधर मुँह मारकर जो कुछ हाथ लगता है, उसे ही उदरस्थ कर लेता है और उसी के अनुरूप हमारे विचार व आदतें, व्यवहार आदि बन जाते हैं। वा. ४८/२.४०

आहार कैसा हो? इस सम्बन्ध में तो हम कुछ जानते भी हैं, सावधानी भी रखते हैं किन्तु मन और मस्तिष्क को कैसा आहार दिया जाय उसके सम्बन्ध

में अभी तक अधिकांश लोग अनजान ही हैं। उन्हें तो यह भी पता नहीं है कि इन्हें भी भूख लगती है। जबकि ये तो शरीर से भी अधिक समर्थ व क्रियाशील रहने वाले हैं। इसलिये ये जो भी सामने आता है उसे खा लेने में पीछे नहीं रहते और उसका परिणाम यह होता है कि खराब व जहरीला भोजन करने से हमारा शरीर रोगी हो जाता है ठीक उसी प्रकार हमारा मन, मस्तिष्क भी विकारग्रस्त हो जाता है।

परिवार के मुखिया तथा समझदार सदस्यों पर यह दायित्व आ जाता है कि वे अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों की मानसिक भूख को शांत करने का भी समुचित प्रबन्ध करें। भक्ष्याभक्ष्य का जो विवेक भोजन के सम्बन्ध में बरता जाता है वैसा ही स्वाध्याय तथा सत्संग के सम्बन्ध में बरता जाय। इसके लिये एक घण्टा या दो घण्टे का समय निश्चित कर देना चाहिए। इस समय भोजन की तरह अनिवार्य रूप से सभी को स्वाध्याय व सत्संग में आना ही चाहिए, ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था नहीं बनती है तो परिवार के वे सदस्य जिन्हें यह पता नहीं लगता है कि मन, मस्तिष्क को भी भूख लगती है और उसे भी शुद्ध, पवित्र व पोषक आहार की आवश्यकता होती है तो वे अपनी अनजानी भूख को इधर-उधर तृप्त कर आते हैं।

हम अपने रोजमर्रा के जीवन में देखते हैं कि महिलाएँ अत्यधिक बातूनी होती हैं। इनकी बातों के विषय प्रायः एक दूसरे की निन्दा व टीका-टिप्पणी होती है। इसका मूल कारण यही मानसिक भूख तथा उसे गलत खाद्य मिलता रहना है। पहले महिलाओं की पढ़ाई पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था, वे प्रायः अशिक्षित होती थीं। उन्हें पुरुष से नीचा माना जाता था, अतः पुरुषों की अपेक्षा उनके मानसिक पोषण पर कम ध्यान दिया जाता था। फिर भी भूख तो भूख ही है वह इधर-उधर की बातों में ही तृप्त होती रही। यह भूख कितनी प्रबल होती है उसका उदाहरण गाँवों के पुराने पनघटों पर देखने को मिल जाता है। ग्रामीण महिलाएँ सिर पर सेरों पानी का बोझ उठाये देर तक बातें करती रहती हैं। उन्हें उसका पता ही नहीं चलता। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय कई स्वाध्यायशील नेताओं को जेल में पढ़ने के लिये पुस्तकें नहीं दी जाती थीं। इसके पीछे उनकी मानसिक भूख को अतृप्त रखने का ही उद्देश्य था। डॉ. राममनोहर लोहिया जब लाहौर की जेल में थे तो उन्हें महीनों तक पुस्तकों के दर्शन ही नहीं होते थे। यह उन जैसे अध्ययनशील व्यक्ति के लिए भोजन न देने से भी बड़ी सजा थी। परिवार के वे मुखिया जो परिवार वालों के भोजन, वस्त्र, मकान आदि शारीरिक आवश्यकताओं को पूरी करके ही अपने दायित्व की इतिश्री समझ लेते हैं वे अपने परिवार वालों

को अनजाने में वैसी ही सजा देते हैं जैसी डॉ. लोहिया को साम्राज्यवादी विदेशी सरकार ने दी थी।

बच्चों के बढ़ते हुए शरीर को जिस प्रकार अधिक पोषक आहार वयस्कों से अधिक बार चाहिए जिससे कि उनके वृद्धिशील शरीर की आवश्यकताएँ पूरी होती रहें वे कुपोषण के शिकार न हों। इसी भूख के कारण वे दिन भर 'भूख-भूख' करते रहते हैं। इसी प्रकार उनके मन-मस्तिष्क को भूख लगती है। उसी के कारण वे अपने से बड़े सदस्यों से हरदम कोई न कोई प्रश्न पूछते रहते हैं। यह जिज्ञासा और कुछ नहीं उनके मन, मस्तिष्क की भूख ही होती है। जिस प्रकार कड़ी भूख लगने पर पौष्टिक आहार लेकर शरीर का बल व आकार-प्रकार, सौष्ठव किया जा सकता है उसी प्रकार बालकों को शारीरिक व मानसिक खाद्य मिलता रहे तो उनके भावी जीवन के प्रासाद की नींव सुदृढ़ हो जाती है। बालकों के मन में जो संस्कार इस काल में भरे जा सकते हैं वे बड़े हो जाने पर सम्भव नहीं हो सकते। वे अपनी जिज्ञासा की तृप्ति के लिये अपने माता-पिता से जो प्रश्न पूछते हैं उनका उत्तर यदि सावधानी व बुद्धिमत्ता पूर्वक दिया जा सके तो उनकी बहुत कुछ मानसिक क्षुधा तृप्त की जा सकती है। यही नहीं उनका बहुत कुछ शिक्षण भी इसके साथ किया जा सकता है।

इतने महत्वपूर्ण मानसिक पोषण की ओर आज तक अधिकांश परिवार के कर्ता ध्यान नहीं दे पाये, किन्तु इस ओर अब उन्हें ध्यान देना ही चाहिए। कुछ घण्टे पूरी तरह इसी प्रयोजन के लिये रखे जायें। यों तो जब भी समय मिले बातचीत के दौरान इस बात का ध्यान रखा जाय कि परिवार के सदस्यों के मन, मस्तिष्क को खुराक मिलती रहे।

परिवार में सभी सदस्यों के मानसिक विकास के लक्ष्य को पूरा करने वाली सुरुचिपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं व साहित्य को बजट में स्थान मिलना चाहिए। शरीर की पुष्टि के लिये आहार के मद में जितनी राशि रखी जाती है उसका दशमांश तो इस मद में रखना ही चाहिए। शाम के समय जब भोजनादि से सब लोग निवृत्त हो जाते हैं तब मनोरंजन व स्वाध्याय दोनों उद्देश्यों को पूरा करने की गरज से शिक्षाप्रद कहानी कहने या कोई अच्छी शिक्षाप्रद पुस्तक पढ़ने का क्रम चलाना चाहिए। इसमें परिवार के सब सदस्यों का सहयोग रहे तो ज्ञान वृद्धि व जीवन निर्माण की दिशा में बहुत उपयोगी कदम हो सकता है।

बच्चों को तो कहानी सुनने में बड़ा ही रस आता है। उन्हें भूत-प्रेत व परियों की कहानियाँ न सुनाकर शिक्षाप्रद कहानियाँ तथा महापुरुषों के जीवन वृत्तान्त सुनाये

जायें तो उनसे वे बहुत कुछ सीख सकते हैं। भय, रहस्य व कपोल-कल्पना पर आधारित कहानियाँ बच्चों के विकास में बाधक बनती हैं। महापुरुषों के जीवनवृत्त इसके लिये बहुत ही उपयुक्त हैं।

वा. ४८/२.४१

जिन परिवारों में सब लोग पढ़े-लिखें हैं और उनकी वय तथा रुचियाँ भिन्न हैं तो वे अपनी पढ़ी हुई पुस्तक या पत्रिका की महत्वपूर्ण बातें इस समय सुना सकते हैं। इससे सभी का सभी विषयों में सामान्य ज्ञान बढ़ेगा। देश-विदेश के समाचारों तथा समाज में पनप रही विकृतियाँ व चल रही गतिविधियों पर चर्चा भी यहाँ हो सकती है। जिन परिवारों में पढ़े-लिखे व्यक्ति कम हैं तो वे पढ़े-लिखे व्यक्ति चाहे किसी वय के हों अपने परिवार के अन्य सदस्यों से वे सब बातें बताएँ जो दूसरों के लिए उपयोगी हैं और उसकी ज्ञान-वृद्धि के लिये आवश्यक हैं। माता-पिता को यदि पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला और वे अपने पुत्र, पुत्रियों को पढ़ाने में रुचि रखते हैं तो उनके अक्षर ज्ञान व पढ़ाई से लाभ उठाएँ, उनसे काम की पुस्तकें पढ़वाएँ या स्वयं पढ़ना सीख लें। जिनके पास जीवन का अनुभव है भले ही वे पढ़े-लिखे न हों तो उस अनुभव को पढ़े-लिखे लोग भी उनकी बातों के द्वारा पा सकते हैं। इस प्रकार यह पारस्परिक सहयोग का क्रम परिवार के समग्र विकास में बहुत सहायक होगा।

बिना रसोईघर के घर की कल्पना जिस प्रकार नहीं की जा सकती, उसी प्रकार बिना स्वाध्याय का क्रम चलाये परिवार की कल्पना भी आधी-अधूरी ही रहेगी। इस सत्य को जितना शीघ्र स्वीकार कर लिया जाय व वैसी व्यवस्था बनायी जाय, परिवार निर्माण की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम होगा।

वा. ४८/२.४२

अब गुरुकुल रहे नहीं-धर्मोपदेश के नाम पर निरर्थक बिडम्बनाएँ चलती और भ्रम फैलाती रहती हैं। जीवनोपयोगी शिक्षा के लिए घर के लोगों को किसी विद्यालय में पढ़ने भेजा जाय यह तो सम्भव नहीं। ऐसे सुयोग्य शिक्षक अपने घर में आकर रहने लगें, यह भी असम्भव है। फिर ऐसे सूक्ष्मदर्शी, प्रभावशाली लोग हैं भी कहाँ जो व्यक्ति की, समाज की वर्तमान समस्याओं का सही और सामयिक समाधान प्रस्तुत कर सकें। इन सब कठिनाइयों का समाधान घरेलू पुस्तकालय की स्थापना से ही सम्भव हो सकता है। जीवित या स्वर्गीय महामानवों की अति महत्वपूर्ण शिक्षा किसी भी समय कितनी ही देर तक प्राप्त करते रहने, उनके साथ सत्संग करते रहने का उपाय एक ही है कि इनके ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाय और यह मनन किया जाय कि उस कसौटी पर अपनी स्थिति कितनी

खरी उतरती है ? साथ ही यह भी मनन किया जाय कि उत्कृष्टता अपनाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है।

वा. ४८/२.४३

परिवार निर्माण में कथा पुराणों का योगदान

परिवार के प्रत्येक सदस्य में यदि दूसरों के प्रति तप, त्याग और बलिदान की पवित्र भावना विद्यमान रहती है तो कोई कारण नहीं कि उस परिवार में स्वर्गीय जीवन की अनुभूति न होती हो। पुराणों ने इस कार्य को बड़ी तत्परता से किया है। पग-पग पर परिवार के हर सदस्य के दूसरों के प्रति आवश्यक कर्तव्यों का सुन्दरता से प्रतिपादन किया है। ऐसे आदर्श उदाहरण कथाओं के माध्यम से दिये गये हैं जो इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं और भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य किसी देश के इतिहास में ऐसे आदर्श उदाहरण देखने-सुनने को नहीं मिलते, तभी तो उन उच्च सिद्धान्तों के आदर्शों का प्रतिपादन करने वाले इन ग्रन्थों को विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त है।

विदेशियों ने इन पर खोजें की हैं, विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, विस्तृत लेख लिखे गये हैं। कारण स्पष्ट है, पारिवारिक जीवन की जटिल समस्याओं को सुलभ रूप से सुलझा देना ही इनकी विशेषता है। पुराणों की कथाओं को अपना आदर्श मानने वाले परिवार में कभी कलह-क्लेश होना सम्भव नहीं है। आज्ञाकारी पुत्र के रूप में राम, श्रवणकुमार, भीष्म, नचिकेता आदि के उज्ज्वल उदाहरण हमारे सामने हैं। राम ने पिता की आज्ञा को मानकर राज्य का त्याग किया और १४ वर्षों तक वनों की भीषण कठिनाइयों को सहन किया, श्रवणकुमार ने अपने अन्धे माता-पिता को काँवर में बिठाकर तीर्थयात्रा कराई, भीष्म ने पिता की प्रसन्नता और अपने राज्याधिकार को तिलांजलि दी, पिता के दान करने पर नचिकेता प्रसन्नता से यमपुर गये। आज ऐसे पुत्र ढूँढ़े नहीं मिलते और माता-पिता के प्रति घोर उपेक्षा हो रही है।

भाई-भाई के आदर्श सम्बन्धों के लिए राम, लक्ष्मण और भरत के नाम सर्वप्रथम हमारे सामने आते हैं। एक दूसरे के प्रति त्याग की भावना से भ्रातृ-प्रेम जग पाया है। कौरव सदैव से पाण्डवों के विरोधी रहे थे, परन्तु जब यक्षों ने कौरवों को बन्दी बनाया तो युधिष्ठिर ने उन्हें छुड़वाया था। पुष्कर के दुर्व्यवहार को भुलाकर राजा नल ने अपने भाई को क्षमा कर दिया था। आज घर-घर में, भाई-भाई में कटुता दिखाई देती है, बैटवारे होते हैं। संघर्ष होते हैं, आपसी सम्बन्धों का विच्छेद होता है, साथ-साथ रहने की भावना धूमिल होती जा रही है।

पुराणों में वर्णित दाम्पत्य जीवन की कथाओं की पुनरावृत्ति सारे विश्व में सम्भव नहीं है। राजमहलों में भोग-विलास का जीवन व्यतीत करने वाली सीता अपने पति की कठिनाइयों को सरल करने के लिए घोर दुःखों को स्वयं निमन्त्रण देती है और उसी में अपना सौभाग्य मानती है। गान्धारी को जब पता चला कि उसके भावी पति प्रज्ञाचक्षु हैं तो उसने भी अपने नेत्रों पर पट्टी बाँध ली। उसने सोचा जब मेरे पतिदेव खुले नेत्रों से इस जड़ जगत को निहार नहीं सकते तो मुझे इसे देखने का कोई अधिकार नहीं है। सावित्री जानती थी कि वह एक वर्ष के बाद विधवा हो जायेगी। परन्तु एक बार उसने अपना पति वरण कर लिया तो वह जन्म-जन्मान्तरों के लिए उसका आराध्य हो गया। यमराज भी उसकी धारणा को बदलने में असफल रहे।

महासती अनुसूया, शैव्या, दमयन्ती, सुकन्या आदि के जीवन आज भी हमारे लिए आदर्श बने हुए हैं। वैज्ञानिक युग की पत्नी समानधिकार माँगती है और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहती है, वह किसी भी प्रकार के अंकुश के विरोध में है तभी ऐसी घिनौनी घटनाएँ सामने आ रही हैं, जिन पर मानवता रोती है और असुरता खिल-खिलाकर उपहास करती है।

पुराणों में मदालसा जैसी आदर्श माताओं के जीवन चरित्र विस्तार से दिये हैं, जिन्होंने अपने बच्चों को लोरियाँ सुनाते हुए आत्मज्ञान का उपदेश दिया है। ऐसी जागरूक माताएँ ही अपनी सन्तान का सच्चा पथ प्रदर्शन कर सकती हैं। आज की माताएँ अपने बच्चों को सुखी, भौतिक जीवन की तो शिक्षा दे सकती हैं। धर्म, सदाचार, संयम, आत्मज्ञान की शिक्षायें तो उनके लिए अनावश्यक मानी जाती हैं। सीता एक आदर्श बहू थी जिसने सास को अपनी माता समझकर उनकी हर आज्ञा का पालन किया। कौशल्या ने सीता को अपनी पुत्री समझकर उसे मातृत्व स्नेह प्रदान किया। व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को आत्मज्ञानी बनाया। बड़े होने पर जब स्वयं शिक्षा देना उचित नहीं समझा तो ब्रह्मज्ञानी राजा जनक के पास भेज दिया।

वा. ४८/२.३७

पुराणकारों ने परिवार निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया है। परिवार निर्माण के अमूल्य सूत्रों को उन्होंने माला की तरह पिरो दिया है और तत्सम्बन्धी चरित्रों का चित्रण इस ढंग से किया है कि पाठक व श्रोता के मन में भाव तरंगे उछलने लगती हैं कि काश! मैं भी ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत कर सकता। पारिवारिक जीवन के आदर्शों को प्रेरित और प्रोत्साहित करने में पुराणकार बहुत अंशों में सफल हुए हैं।

वा. ४८/२.३८

इस तथ्य को समझते हुए परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के गुण-कर्म-स्वभाव में शालीनता के समावेश का निरन्तर प्रयास होना चाहिए। इस कार्य में परिवार के वरिष्ठ एवं समझदार लोगों का विशेष उत्तरदायित्व है। श्रमशीलता, शिष्टता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था एवं सहकारिता के पंचशीलों को पाँच देवों की तरह आराध्य मानने की बात हर एक के गले उतारनी चाहिए। उनकी महिमा एवं महत्ता विस्तार पूर्वक समझानी चाहिए। सीधे ऐसे परामर्श काम न करते हों, तो फिर दूसरा तरीका एक ही बच जाता है कि प्रगतिशील लोगों के जीवन चरित्रों, संस्मरणों के प्रेरक प्रसंग समय-समय पर सुनाते रहा जाय। अच्छा तो यह है कि रात्रि को अवकाश के समय घरेलू मनोरंजन की तरह कथा-कहानियाँ कहते रहने का क्रम चलाया जाय, यह तद्विषयक पुस्तकों के सहारे हो सकता है। घर में ऐसा साहित्य रहना ही चाहिए, जिसे पढ़ने-सुनने से उत्कर्ष की दिशाधारा का परिचय मिले। कहानियाँ स्वयं में एक अच्छा मनोरंजन हैं, उसमें लोकरुचि भी होती है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों पर तीन-चौथाई, कथा-साहित्य मिलता है, क्योंकि माँग और बिक्री भी उसी की रहती है। वेद केवल चार बनकर ही समाप्त हो गये, पर पुराण अट्ठारह बने। इनमें से प्रत्येक का कलेवर इतना बड़ा है, जिसे वेदों-उपनिषदों की तुलना में कहीं अधिक विस्तार वाला देखा जा सकता है। यह कथा सुनने की लोकरुचि का प्रमाण है। वह छोटों से लेकर बूढ़ों तक को समान रूप से प्रिय होता है।

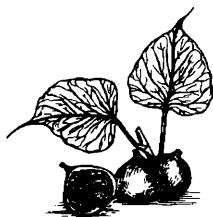
‘पंचतन्त्र’ ग्रन्थ के निर्माण की कथा प्रसिद्ध है। एक राजा के लड़के बड़े उजड़ु थे। पढ़ाने वाले किसी अध्यापक को टिकने न देते थे। पढ़ने-लिखने में तनिक भी रुचि नहीं लेते थे। राजा को चिन्ता हुई कि इनका भविष्य कैसे होगा? उसने घोषणा की, कि जो अध्यापक हमारे लड़कों को पढ़ाने और सुधारने में सफल होगा, उसे मुँह माँगा पुरस्कार दिया जायगा। कई विद्वान आये और हार मानकर वापस लौट गये। अन्त में एक विष्णु शर्मा नामक विद्वान आये, उन्होंने नया बीड़ा उठाया और नया तरीका अपनाया। वे मात्र कहानियाँ सुनाते थे। राजकुमारों को धीरे-धीरे इसमें दिलचस्पी बढ़ी और वे देर तक अध्यापक के पास बैठकर कहानियाँ सुनते रहते। वे कथायें बड़ी सारगर्भित होती थीं, उनमें जीवन विकास के तथ्यों का भरपूर समावेश रहता था। सुनने वाले लड़कों के मन में वे तथ्य भी उतरते गये। उन्हें अपने भविष्य और विकास के सम्बन्ध में सोचने का अवसर मिला। फलतः उनकी विचारधारा बदलती चली गयी। वे सही मार्ग समझने के साथ-साथ उस पर चलने भी लग गये। इस प्रकार कुछ ही दिन में

उनकी समस्त गतिविधियाँ सन्तोषजनक एवं उत्साहवर्द्धक बन गयीं, पढ़ने-लिखने लगे। धीरे-धीरे ऐसे बन गये, जैसा कि राजा चाहता था। पंडित को मुँह माँगा पुरस्कार मिला और वह कथा ग्रन्थ 'पंचतन्त्र' के नाम से लोकप्रिय हुआ।

वा. ४८/२.२०

शिल्प, संगीत, साहित्य, कला-कौशल अर्जित करने के लिए जिस प्रकार दीर्घकालीन और अनवरत अभ्यास करना पड़ता है। उसी प्रकार सद्गुणों को स्वभाव का अंग बनाने के लिए, उन्हें दैनिक जीवन में भरपूर स्थान देने के लिए प्रयत्नरत रहना पड़ता है। आदतें देर में पकती हैं, वे हथेली पर सरसों जमाने की तरह न तो तुरंत-फुर्त उपलब्ध होती हैं और न जमी हुई आदतों से पीछा छुड़ाना जल्दी से सम्भव हो पाता है, उन्हें योजनाबद्ध रूप से अपनाना और क्रमबद्ध रूप से व्यवहार में उतारना पड़ता है। परिवार के वरिष्ठों का ध्यान इसी केन्द्र पर केन्द्रित रहना चाहिए और उन्हें अपने परिजनों को सुसंस्कारी बनाने के लिए परिपूर्ण सतर्कता के साथ अनवरत प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य में अपना समय और परिश्रम लगाने में कृपणता नहीं बरतनी चाहिए।

वा. ४८/२.२३



१३. अपने परिवारों का पुनर्निर्माण - एक अनिवार्य उपयोगी आवश्यकता

परिवार निर्माण की सर्वतोमुखी सुखद सम्भावनाएँ

पारिवारिकता एक दर्शन है जिसे अपनाये बिना अन्य प्राणियों का काम तो किसी प्रकार चल भी सकता है, पर मनुष्य के लिए इसके बिना कोई गति ही नहीं। अस्तु, प्रकारान्तर से हर स्थिति के व्यक्ति को परिवार के साथ गुँथा रहना पड़ता है। ऐसी दशा में हर किसी के लिए आवश्यक है कि ऐसे महत्वपूर्ण संस्थान को परिष्कृत करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करे।

महिलाएँ प्रमुख भूमिका निभायें सो ठीक है, पर सब कुछ उन्हीं पर छोड़कर पुरुष वर्ग दूर से तमाशा देखे और उन्हीं से सब कुछ कर गुजरने की अपेक्षा रखे ऐसा नहीं हो सकता। मोर्चे पर लड़ना तो सैनिक को ही पड़ता है, किन्तु उसे ठीक तरह लड़ सकने और विजयी बनकर लौटने के लिए दूसरों को भी कम प्रयत्न नहीं करने पड़ते। सैनिकों को भोजन, वस्त्र, आयुध, वाहन, प्रशिक्षण, मार्ग-दर्शन आदि अनेकानेक साधनों की आवश्यकता पड़ती है। इन्हें जुटाने में असंख्य मनुष्यों का अनवरत श्रम और नागरिकों का कर रूप में दिया गया अनुदान प्रचुर परिमाण में नियोजित होता है तब कहीं वह स्थिति बनती है जिसमें सैनिकों को सफलतापूर्वक मोर्चा सँभाल सकना संभव हो सके।

जाग्रत नारी की भूमिका अग्रिम होगी यह निश्चित है, पर परिवार निर्माण अभियान इतना बड़ा है जिसके लिए जाग्रत पुरुष को भी इससे कम नहीं अधिक ही प्रयास करने होंगे। सैनिक लड़ें तो पर उनका पथ प्रशस्त करने के लिए इंजीनियर, डॉक्टर, ड्राइवर, रसोइया, कारीगर आदि का अता-पता भी न हो तो विजय श्री प्राप्त करना तो दूर, मोर्चे तक पहुँचना एवं लड़ने के लिए सार्थक बनना तक सम्भव न हो सकेगा।

जाग्रत महिलाएँ परिवार निर्माण की अग्रिम भूमिकाएँ निभायें और दूसरे लोग उसको भरपूर सहयोग करने तथा साधन जुटाने में किसी प्रकार कमी न रखें तभी बात बनेगी। महिला जागरण से अभिप्राय उस पुरुष वर्ग को भी सम्मिलित रखने का है जो इस महान प्रयोजन की उपयोगिता समझते हैं और उसमें सहयोग देने के लिए उत्सुक हैं।

वा. ४८/२.४६

यह भेद अब मिटना ही चाहिये

परिवार के भावनात्मक सम्बन्धों पर आघात करके उन्हें जर्जर बनाने के लिये पुत्र और पुत्री के बीच का भेदभाव भी है। प्रारम्भ से ही उनके बीच भेद के बीज पड़ जाने से वे परिवार और समाज में अनेक शाखाओं, उपशाखाओं के रूप में फैलने लगते हैं। परिवार लड़के-लड़कियों, महिलाओं-पुरुषों से ही मिलकर बनता है। कन्या के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार सिर्फ इसलिये कि वह कन्या है, नारी है, स्पष्ट रूप से मानवीय भावनाओं का हनन है। कारण जो भी रहे हों, इस स्तर का पक्षपात आज भारतीय समाज में बुरी तरह घुसा हुआ है। उसके कारण बच्चों के मनो में अहंकार अथवा आत्महीनता एवं द्वेष के बीज अनचाहे-अनजाने ही पड़ते चले जाते हैं।

पुत्र जन्मा तो बहार आ गई, हँसी-खुशी, राग-रंग, बधाइयाँ, भोज, दावतें और न जाने क्या-क्या? पुत्री जन्मी तो पतझर, दुःख, निराशा और भाग्यहीनता के उच्छ्वास। हमारी भारतीय संस्कृति में नारी की दयनीय दशा की करुण कहानी यहीं से प्रारम्भ होती है और अन्त तक दुःखान्त ही चली जाती है। बेटे का पालन-पोषण, लाड़-प्यार से इस तरह किया जाता है जैसे उसे अगले दिनों राजगद्दी मिलने वाली हो। कन्या को तो जीवन निर्वाह की सुविधायें प्रदान कर दी जाती हैं, यही क्या कम उपकार है उसके लिये?

शहरों की बात दूसरी है जहाँ सामाजिक जीवन अब नई करवट लेता जा रहा है, पर गाँवों में आज भी स्थिति यही है कि यदि किसी ने बच्ची को पढ़ाने-लिखाने का साहस दिखाया तो कक्षा ५ या अधिक से अधिक सुविधा वाले क्षेत्रों में कक्षा १० तक पढ़ा दिया और इस पढ़ाई तक पहुँचने से पूर्व ही उसके लिए साँकल तलाश दी। बेचारी ने जरा साँस ली कि गले में विवाह का बन्धन डाल दिया। लड़के अवारागर्दी करें तो माँ-बाप की यही इच्छा रहती है कि बेटा पढ़-लिखकर कुछ हो जाये उधर कन्या पढ़ने-लिखने की हार्दिक अभिलाषा को कुचलकर मन मसोस कर रह जाती है। फिर वह चाहे कितनी की बौद्धिक क्षमता सम्पन्न क्यों न हो।

वा. ४८/२.८४

किसी भी पक्ष से देखें अभिभावकों एवं सन्तान के बीच भावनात्मक प्रगाढ़ता आवश्यक भी है और उपयोगी भी। बच्चों के मन में इसी आधार पर वह श्रद्धा-सद्भाव जाग्रत हो सकता है जो माता-पिता के लिए भी सुखद हो और बच्चों को जीवन में प्रगति की अनेक दिशायें खोल दे। इस सद्भाव के अभाव में ही घरों में लड़कों को बागी होते देखा जाता है। लड़कियाँ प्रत्यक्ष बगावत तो नहीं

करतीं किन्तु उनके अन्दर जो असन्तोष एवं आत्महीनता दबी रहती है, वह उनकी संतानों में कुसंस्कार के बीजों के रूप में स्थापित हो जाती है। अस्तु, कुशल गृहिणी एवं गृहपति को परिवार में वह वातावरण प्रारम्भ से ही बनाना चाहिए जहाँ संतान पर समुचित अनुशासन कायम रखते हुए भी उनके बीच भावनात्मक निकटता भी बढ़ती चले।

वा. ४८/२.८४

मिल-जुलकर रहने, योग्यतानुसार कमाने, आवश्यकतानुसार खर्च करने की आदर्शवादिता परिवार का मेरुदण्ड है। अध्यात्म की दृष्टि से अधिक लोगों का आत्मीयता के बन्धनों में बँधना सुख-दुःख को मिल-बाँटकर वहन करना, अधिकार को गौण और कर्तव्य को प्रमुख मानकर चलना पारिवारिकता है।

वा. ४८/२.५

दूसरों की आदतें बदलने के लिए अपनी आदतें बदलनी होती हैं। दूसरों का स्वभाव सुधारने के लिए पहले अपना सुधारना होता है। उपदेशों से जानकारी भर दी जा सकती है, व्यक्ति को सुधारना उन्हीं के लिए सम्भव होता है जो अपने आपको आदर्श के रूप में विकसित कर सके हैं। शिक्षा तो सहज ही सुनी जा सकती है, पर प्रेरणा तभी मिलती है जब अनुकरण के लिए प्रभावशाली आदर्श सामने हो। ज्योतिवान दीपक ही दूसरे नयों को जलाता है। साँचे के अनुरूप ही खिलौने या पुर्जे ढलते हैं। दूसरे को कुछ सिखाना बताना भर हो तो बात दूसरी है अन्यथा, ढालने का लक्ष्य सामने हो तो सर्वप्रथम स्वयं ढलने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

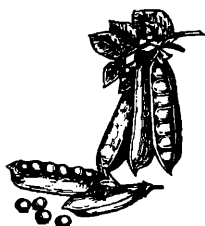
उपदेशों को लोग मनोरंजन समझते हैं, उनसे प्रेरणा ग्रहण करने लायक उनकी मनःस्थिति नहीं होती। मनुष्य अनुकरणीय स्वभाव का है, बन्दर की तरह वह भी नकल उतारना जानता है। क्या कहा गया ? इसे सुनने की अपेक्षा यह देखा जाता है कि क्या-क्या किया जा रहा है ? जो किया जा रहा है वही मर्म-स्थल होता है। बाप दिन भर हुक्का गुड़गुड़ाता रहे और बेटे को छिपकर बीड़ी पीने के लिए मना करे तो वह उपदेश गले न उतरेगा। सोचा जाता है कि यदि तम्बाकू पीना वस्तुतः बुरा होता तो बाप स्वयं क्यों पीता ? वह दुनिया का दुरंगापन देखता है और सोचता है कि हाथी के दाँत दिखाने के अलग और खाने के अलग होते हैं। दुनिया की कथनी और करनी में अन्तर रहता है। इस मान्यता के उपरान्त बच्चे झूठ बोलने लगते हैं। पूछने पर अपराध स्वीकार नहीं करते, उसे छिपाते हैं और दुर्व्यसनों के लिए पैसा या तो चुराते हैं या झूठ बोलकर किसी बहाने माँगकर ले जाते हैं। इस प्रकार चुपके-चुपके उनमें कुसंग, जुआ, सिनेमा, आवारागर्दी आदि दोष पनपते

रहते हैं। जब प्रकट होते हैं, तब बुरी आदतें परिपक्व होकर चर्चा का विषय बन जाती हैं।

वा. ४८/२.३०

परिवार को सुसंस्कारी बनाने के प्रयास में उसके लिए अग्रणी लोगों को सर्वप्रथम अपनी ही गढ़ाई करनी पड़ती है। इस सन्दर्भ में जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेंगे उन्हें परिवार निर्माण में उसी अनुपात में सफलता मिलेगी। जो गुण सहचरों में उत्पन्न करने हैं वे सर्वप्रथम अपने में उत्पन्न करने होंगे। अनुकरणप्रिय मनुष्य प्राणी जो कुछ समझता है उसमें तो शिक्षकों के परिश्रम का फल भी कहा जा सकता है पर जो बनता है उसमें प्रायः उन्हीं के चरित्रों का योगदान होता है जो साथ रहते और प्रभावित करते हैं। कुसंग और सत्संग के परिणामों से सभी परिचित हैं, इनमें शिक्षण परामर्श नहीं वह प्रभाव काम करता है जो साथी की भली-बुरी विशिष्टता के कारण उत्पन्न होता है।

वा. ४८/२.९



१४. परिवार की आन्तरिक व्यवस्था

गृह की आन्तरिक व्यवस्था भी एक कला है। प्रायः देखा जाता है कि घर में दो प्रकार के सदस्य होते हैं (१) कार्य करने वाले, जो प्रातः से सायंकाल तक निरन्तर कार्य में लगे रहते हैं, (२) आराम तलब और कामचोर- ये व्यक्ति आनन्द अधिक लेते हैं और उस अनुपात में कार्य नहीं करते। काम करने वाले वर्ग में मुख्यतः घर का स्वामी, मालकिन, बड़ी भौजाई तथा अन्य उत्तरदायित्व का अनुभव करने वाले व्यक्ति आते हैं। द्वितीय वर्ग में नवयुवक तथा स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियाँ, नवीन वधुएँ, मेहमान या पढ़ने के लिए आये हुए दूसरे घर के विद्यार्थी गिने जाते हैं।

अपने परिवार का अध्ययन कर मालूम कीजिए कि इन दोनों वर्गों में किस व्यक्ति का स्थान कहाँ है? आपकी नीति सबसे उसकी आयु के अनुकूल कार्य लेने की होनी चाहिए। परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसमें सबका समान अधिकार है। काम भी सभी को करना उचित है अन्यथा परिवार की नींव ढह जायेगी।

घर के विभिन्न कार्यकर्ता

घर के सब कार्यों की सूची तैयार कीजिए। मान लीजिए आपके घर में निम्न कार्य हैं- घर की झाड़ू, कमरों की सफाई, बैठक की झाड़ू-फूँक, सजावट, प्रातः दूध दुहना या बाजार से लाना, पशुओं की देखभाल, बाजार से सब्जी तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का खरीदना, रुपये की आय-व्यय का हिसाब, घर का भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, बच्चों को पढ़ाना, मासिक बजट तैयार करना, दवादारू और चिकित्सा का प्रबन्ध, सफर करने का बन्दोबस्त, डाक की सुव्यवस्था इत्यादि। इन सब कार्यों को करने के लिए आप परिवार से निम्नलिखित कार्यकर्ता चुन लीजिए-

- (१) गृहमन्त्री, (२) यातायात मन्त्री, (३) विदेश मन्त्री,
(४) स्वास्थ्य मन्त्री, (५) अर्थमन्त्री।

गृहमन्त्री का कार्य प्रमुख व्यक्ति करे, जो घर की सब छोटी-मोटी जानकारी रखे, भावी कठिनाइयों के लिए परिवार को चौकस रखे, लड़ाई-झगड़ों से बचाकर परिवार की प्रतिष्ठा का ध्यान रखे, घर की सामान्य पॉलिसी

का निर्णय करे। दूसरा प्रमुख कार्य अर्थमन्त्री का है। यह व्यक्ति हिसाब करने, बजट बनाने, अध्ययन का ठीक ब्यौरा रखने, मौसम के समय खाद्य वस्तुओं को खरीदने और बचत की व्यवस्था में चतुर होना चाहिए।

घर में पाई-पाई का हिसाब रखा जाय। मास से पूर्व ही वह बजट तैयार कर ले और एक-एक कर सब जिम्मेदार सदस्यों के पास घुमा दे। उनकी आवश्यकताओं के विषय में पूछ ले और उसका उल्लेख बजट में यथास्थान कर दे। कर्ज में आने से परिवार की रक्षा करे। यातायात मन्त्री सफर, मेहमानदारी, यात्रियों की देखभाल करे। विदेश मन्त्री चिट्ठी-पत्री, अखबार मँगाना, बाहर वाले मेहमानों से अच्छे सम्बन्ध स्थिर रखने का कार्य करे। यदि घर के सब व्यक्ति इन कार्यों में पृथक-पृथक काम विभाजित कर अग्रसर होंगे तो घर का काम क्षण भर में हो सकेगा। किसी के ऊपर अनुचित भार भी न पड़ेगा।

प्रातःकाल उठकर यदि प्रत्येक सदस्य स्वयं अपने कमरे में झाड़ू लगा ले, अपना बिस्तर स्वयं उठा दे, स्नान के उपरांत साबुन यथास्थान रख दे और तौलिया स्वयं धो डाले, अपने जूते पर स्वयं पालिश कर लिया करे, अपने कपड़े नियत स्थानों पर रखे, तो बहुत सहूलियत हो सकती है। जब एक-एक व्यक्ति काम छोड़कर लापरवाही करते हैं, तो काम पहाड़-सा प्रतीत होता है। यदि प्रत्येक आदमी अपना-अपना काम निपटाता चले तो सब कुछ क्षण भर में निपट जाता है। नौकर के ऊपर निर्भर रहना उत्तम नहीं है। नौकर आ जाने से प्रत्येक व्यक्ति के मन में आलस्य, कामचोरपन, दूसरे पर शासन करने की भावना आती है। थोड़े दिन पश्चात् कार्यभार से त्रस्त होकर नौकर भाग जाता है। यही हाल रसोइया का होता है। कल्पना कीजिए कि यदि रसोइया एक-एक व्यक्ति के लिए बैठा रहे, तो कैसे भोजन का अन्त हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को नियत समय पर जो बने, उसे प्रसन्नतापूर्वक खा लेने की आदत डालनी चाहिए।

वा. ४८/३.५०

घर की सुव्यवस्था कैसे करें

मैं आपको अपने घर की सैर कराऊँ। यह देखिये, हमारा स्टोर है। इसमें जो सामान अलमारी है, इसमें छोटे-छोटे सात पीपे चुने रखे हैं। प्रत्येक पीपे पर कुछ लिखा हुआ है। ये सात प्रकार की दालें हैं, जिन पर दाल के साथ दिन का नाम दर्ज है। कौन-सी दाल किस दिन तैयार होगी, इसका प्रबन्ध पहले से ही है। मास के पहले दिन इन पीपों को देख लिया जाता है और मुँह तक भर दिया जाता

है। दूसरी ओर मसालों के पीपे हैं, जिनमें वर्ष भर के लिए नमक, धनियाँ, मिर्च, हल्दी, जीरा, गरम मसाला पिसा हुआ रखा है। जब रसोई के मसालदान में कोई वस्तु कम हो जाती है, तो इसमें से ले ली जाती है। एक ओर दो बड़े बोरे गेहूँ के रखे हैं, एक पीपे में चावल हैं, गाय-भैंस के लिए १ बोरी खल-चुनी इत्यादि रखी है। एक पीपे में ढक्कन से बन्द आटा रखा हुआ है। खूँटी पर तराजू मौजूद है। नियत भिकदार में आटा और दाल तोल कर गृहमन्त्री देता है। इसी में करीने से सजी हुई एक ओर लकड़ी एकत्र रखी है, शेष लकड़ियाँ छत पर एकत्रित हैं। कुछ उपले भी मौजूद हैं। एक कोने में मिट्टी के तेल का पीपा और दो बोतलें रखी हुई हैं। मास के प्रारम्भ में देख लिया जाता है कि स्टोक में क्या-क्या है। स्टोक रखने वाला व्यक्ति बजट के लिए वस्तुओं के परिमाण के सम्बन्ध में सूचना देता है।

ऊपर एक अलमारी में (जो बन्द है) पाँच तरह के अचार-मुरब्बे और घी एकत्रित है। इसे मास के प्रारम्भ में भर लिया गया है। कुछ तिल का तेल भी रखा है। इसी में पापड़, मँगौड़ी और सूखे मेवे-किशमिश, बादाम, छुहारे, खोपरा स्पेशल भोजन के लिए तैयार रखे हैं। अलमारी के निचले खाने में दो दर्जन कटोरियाँ, दो दर्जन चम्मच, कुछ थालियाँ गिलास इत्यादि एकत्रित हैं। कुछ बढ़िया गुड़ भी बन्द पीपे में सुरुचिपूर्ण ढँग से रखा है। इस स्टोर में एक मास के लिए तरकारी के अतिरिक्त सब कुछ एकत्रित कर लिया गया है।

रसोई भी देख लीजिए। एक अलमारी में साफ किए हुए बर्तन सजे रखे हैं। महरी ने उसे धो दिया है, चूल्हा लिपा-पुता साफ है, पटरा धुला हुआ है। एक ओर आले में शक्कर का पीपा, चलनी, कुछ चम्मच, चाय का इन्तजाम है, दूसरी ओर मसालदान विराज रहे हैं। एक ओर दूध बिलोने का यन्त्र रखा है, दही जमा रखा है, मक्खन ढका रखा है। प्रत्येक बालक को प्रातः मक्खन से रोटी और एक पाव दूध का नाश्ता मिलेगा, उसके लिए सब तैयारी है। कुछ सूखी तरकारियाँ भी यहीं रखी हुई हैं। बाजार में बिकने वाले कुछ रायते, सूखे आलू, टमाटर की चटनी, अचार, सिरका मौजूद है। यह आपको इतना साफ-सुथरा इसलिए प्रतीत होता है, क्योंकि प्रति ३ मास में घर के हर व्यक्ति मिलकर स्वयं इसकी पुताई कर डालते हैं।

आगे आइये, यह हमारा गुसलखाना है, छोटा पर साफ। एक ओर साबुन तथा मंजन। देखिये, दूसरी ओर साफ तौलिया लटक रहा है। हाथ धोने के पश्चात् इसे काम में लिया जाता है। प्रतिदिन प्रातःकाल फिनाइल से इसकी

दीवारें और राख से नल की टोंटी माँज दी जाती है। पाखाना इतना साफ है कि कहीं मक्खी का नाम तक नहीं। इसी में आले में फिनाइल का डिब्बा है, नल है, बाहर से धोने के लिए पिचकारी है। बाहर के नल में लगाकर इसे प्रतिदिन खूब स्वच्छ कर दिया जाता है। पाखाना धुलने की बारी प्रति सप्ताह बदलती है। घर के सहन में एक डायरी कील पर लटक रही है, उसी में एक पेंसिल बँधी है। जिस किसी वस्तु को बाजार से मँगाने की आवश्यकता होती है, वह कोई भी इस डायरी में दर्ज कर देता है। प्रत्येक बच्चा-बूढ़ा इसका प्रयोग करता है। अपनी जरूरत की वस्तु के साथ नीचे अपने हस्ताक्षर भी कर देता है। जब बाजार से चीजें लाने वाला व्यक्ति बाजार जाता है, तो इस स्लिप को फाड़कर ले जाता है और सबकी वस्तुएँ एक साथ आ जाती हैं।

यह हमारा सन्दूकों का कमरा है। इसमें दस पन्द्रह छोटे-बड़े सन्दूक आप देख रहे हैं। यह सबसे बड़ा सन्दूक रजाई, बिछौना और कम्बलों के लिए है, जिसमें फिनायल की तेज महक आ रही है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति का सन्दूक पृथक् है। उस कोने के सन्दूक में मैले कपड़े रखे हैं, जो धोबी ले जायेगा। धोबी के घर से धुला हुआ प्रत्येक कपड़ा आठ दिन तक चलना होता है। रात्रि की पोशाक पृथक् है। प्रातःकाल नहा-धो कर स्वच्छ पोशाक धारण करने की योजना है। परिवार की आन्तरिक व्यवस्था सही कर हम अन्य कार्यों में निश्चिततापूर्वक लग सकते हैं।

तीन कमरे विशेष महत्व रखते हैं। पहला पूजा गृह है, यह अपेक्षाकृत छोटा पर, स्वच्छ, अगरबत्तियों से सुगन्धित और धार्मिक चित्रों से सुसज्जित है। प्रातः-सायं घर के सब सदस्यों को भजन, प्रार्थना और पूजा के लिए अनिवार्य रूप से यहाँ उपस्थित होना पड़ता है। बचपन में डाले गये संस्कारों से प्रत्येक बालक आशावादी, संघर्षशील, आस्तिक और कर्तव्य परायण होता है। इसी में एक छोटा घरेलू पुस्तकालय भी है, जिसमें अनेक छोटे-बड़े धार्मिक, आध्यात्मिक और चरित्र निर्माण करने वाले ग्रंथों, मासिक-पत्रिकाओं का संकलन है। भोजन के पश्चात् सब सदस्य इस कमरे में एकत्रित होते हैं। रेडियो द्वारा मनोरंजन, समाचार तथा अन्य आवश्यक तत्वों का यहाँ ज्ञान कराया जाता है। बच्चे प्रायः इसमें अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं। वा. ४८/३.५१

हमारा शयनागार दो बातों में विशेष महत्व रखता है। यह खूब खुला हुआ हवादार, प्रकाशमय है। बिस्तर सफाई से एक ओर तय करके रखे हुए हैं। शाम होते-होते इन्हें बिछा दिया जायगा। बिस्तर लगाना और उठाना यह कार्य

छोटे बच्चों का है। उनकी सहायता के लिए एक बड़े व्यक्ति की ड्यूटी भी लगी हुई है। बच्चों के लिए और भी छोटे-छोटे कार्य चुन दिये गए हैं जैसे- भोजन खिलाना, कुर्सियों की सफाई, पुस्तकों को उठाकर यथास्थान पर जमाना, अपने वस्त्र, जूते, बस्ता नियत स्थान पर रखना, छोटे शिशुओं को खिलाना, घर के पशु-पक्षियों, तोता, बिल्ली, कुत्ता, गाय को मामूली भोजन प्रदान करना इत्यादि। उनकी आयु के साथ धीरे-धीरे उन्हें अधिक जिम्मेदारी का स्थान प्रदान किया जाता है। सबसे अधिक परिश्रम बैठक में किया जाता है। प्रातः काल इसकी सफाई की जाती है। बिखरी वस्तुओं को यथास्थान रखा जाता है। कुर्सियों की झाड़-पोंछ, पुस्तकों, अलमारी, आलों, बेंचों की सफाई, तस्वीरों की रक्षा, तथा कोनों, किवाड़ों या छत में लगे हुए जालों को तोड़ने का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसमें किसी भी सदस्य को उसकी व्यक्तिगत वस्तु को छेड़ने नहीं दिया जाता, केवल बैठने, अपने मित्रों के साथ ठहरने, आमोद-प्रमोद तथा बातचीत करने का अधिकार है। बैठक से घर की प्रतिष्ठा रहती है। उसकी स्वच्छता के लिए प्रत्येक सदस्य प्रयत्नशील रहता है।

वा. ४८/३.५२



१५. सुख का आधार सज्जन्ता नहीं आत्मीयता

परिवारों में स्वर्ग की कल्पना एवं अनुभूति जिस आधार पर की जा सकी-की जा सकती है, वह उसके सदस्यों के बीच कोमल संवेदनात्मक आदान-प्रदान ही है। यों हर परिवार के सदस्यों में बातचीत, हास-परिहास से लेकर वस्तुओं के आदान-प्रदान का कुछ न कुछ क्रम चलता ही रहता है, किन्तु यह सब यदि संवेदनाहीन स्थिति में है, मात्र शिष्टाचार, लोकलाज अथवा अपने बड़प्पन के प्रदर्शन के लिये किए जाते हैं, तो उससे परिवार में स्वर्ग सृजन की कल्पना नहीं की जा सकती। धनी परिवारों में सामान्य प्रसंगों पर भी परिजन एक दूसरे को मूल्यवान् उपहार दिया करते हैं। पिकनिक, मनोरंजन जैसे कार्यक्रमों में लम्बे समय तक साथ-साथ रहते, हँसते-बोलते हैं, किन्तु गरीब परिवारों में न तो लोगों के पास भेंट आदि देने के लिए अतिरिक्त धन होता है और न मनोरंजन आदि के लिए उतना समय ही वे लगा सकते हैं, किन्तु इतने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि अमीर घरों में स्वर्ग रहेगा-गरीब घरों में नहीं। बल्कि इसके विपरीत अमीरी की तड़क-भड़क के पीछे नारकीय यंत्रणाओं की झलक और गरीबी के पीछे से उठती स्वर्गीय सुगन्धि का अनुभव किया जा सकता है। स्थूल समय-साधन कितने जुट पाते हैं, यह बात गौण रह जाती है व आत्मिक चेतना का अपनत्व भरा प्रवाह कितना उठता है, यह बात प्रमुख हो जाती है। परिवार के सभी सदस्यों में इसी का विकास और संचार अभीष्ट है।

वा. ४८/२.४६

विलासिता मनुष्य को स्वप्नदर्शी बनाती है। वह वर्तमान की तरह भविष्य को भी सदा सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा रखने की आशा करता रहता है। जबकि सही बात यह है कि प्रतिकूलता की हवा बहने पर वह ताश का बना काल्पनिक महल देखते-देखते धराशायी हो जाता है। तब तक समय निकल चुका होता है और नये सिरे से सद्गुणों की सम्पदा अर्जित करना कठिन हो जाता है।

वा. ४८/२.२३

गरीबी में भी कई परिवार स्वर्ग का आनन्द उठाते हैं और कई के यहाँ प्रचुर लक्ष्मी होते हुए भी नरक का वातावरण बना रहता है। कितने ही लोग गरीब घर में जन्म लेकर प्रगति के पथ पर अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़े हैं और उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचे हैं। इसके विपरीत कितने ही व्यक्ति अमीरी में बढ़े और सब कुछ प्राप्त होने पर भी पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार की प्रचुर संपदा को गँवा बैठे हैं। उन्नति के सब साधन मिलने पर भी आगे बढ़ना तो दूर उल्टे अवनति के गर्त में गिरे हैं। इसलिए यह सोचना भूल है कि आर्थिक प्रबंध ठीक होने पर सारा प्रबंध सुखद एवं संतुष्टिदायी रह सकता है। तथ्य यह है कि शांति, प्रगति और समृद्धि मनुष्यों के स्वभाव पर निर्भर रहती है। दृष्टिकोण के गलत या सही होने के कारण ही द्वेष बढ़ता है या प्रेम पनपता है। अच्छी आदतें जहाँ होती हैं वहाँ पराये अपने बन जाते हैं। परायों को अपना बना लेने के सद्गुण जिनके पास हैं सचमुच इस संसार में वे ही अमीर हैं, वे जहाँ-कहीं भी रहेंगे वहाँ उनके मित्र और सहयोगी पर्याप्त मात्रा में पैदा होने और बढ़ने लगेंगे। गुलाब की खुशबू अपने चारों ओर भौरे और मधुमक्खी जमा कर लेती है। अच्छी आदतें मनुष्य रूपी फूल में खुशबू का काम करती हैं, उनके कारण दूसरे असंख्य लोग मधुमक्खी और भौरे के रूप में सहायक एवं प्रशंसक बनकर मँडराने लगते हैं। इसके विपरीत बुरी आदतें वह दुर्गन्ध हैं जिनसे हर किसी की नाक फटती है और हर कोई वहाँ से दूर भागता है।

वा. ४८/१.१२

बाड़े में बन्द भेड़ों की तरह एक घर में रहने वाले मनुष्यों के समूह को परिवार कह भले ही लिया, जाये पर उनसे प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती, जो परिवार संस्था के साथ जुड़ा हुआ है। एक-दूसरे को स्नेह, सहकार प्रदान करते हुए, उदारता एवं कृतज्ञता का रसास्वादन कराते हुए संयुक्त समाज की संरचना में अपनी-अपनी जिम्मेदारी निबाहें तभी परिवार-एक छोटे किन्तु सुव्यवस्थित राष्ट्र की भूमिका सम्पादित कर सकते हैं और उसका प्रत्येक सदस्य लाभान्वित हो सकता है।

परिवार की प्रारम्भिक आवश्यकता तो रोटी, कपड़े और मकान की होती है। इसके बाद शिक्षा, चिकित्सा, आतिथ्य, रीति-रिवाजों के निर्वाह और आपत्तिकालीन स्थिति का सामना कर सकने वाली सामर्थ्य भी रखनी होती है। यह कार्य उपार्जन और खर्च का संतुलन बनाये रहने पर सम्भव हो सकता है। यदि

जीवनयापन के लिए आवश्यक सामान्य ज्ञान और लोकव्यवहार का अनुभव हो तो मनुष्य पैसे की तंगी में न रहेगा और खर्च की सुविधा से सम्बन्धित घर परिवार की मोटी आवश्यकताएँ बहुत बड़ी अड़चनों का सामना किये बिना पूरी होती रहेंगी। कम आमदनी हो तो खर्च घटाया जा सकता है। एक उपार्जनकर्ता पर निर्भर न रहकर घर के दूसरे लोग भी थोड़ी-थोड़ी आमदनी के छोटे-मोटे गृह उद्योग अपनाकर अर्थ संतुलन में सहायक हो सकते हैं। मनुष्य को जितनी बुद्धि मिली है और कलाइयों में जो क्षमता है वह इसके लिए पर्याप्त है कि किसी सामान्य परिवार का गुजारा किसी प्रकार हँसी-खुशी के साथ होता चला जाय।

वा. ४८/१.५४

परिवार के सदस्यों की सच्ची सेवा उन्हें सद्गुणी और स्वावलम्बी बनाने में है। बाप-दादों की छोड़ी सम्पदा से ब्याज-भाड़े पर गुजारा करने वाली सन्तान भले ही आराम के साथ दिन काट ले पर उसकी प्रतिभा का स्तर लुंज-पुंज ही रहेगा। जिसने कठोर कर्मक्षेत्र में उतरकर भुजबल और मनोबल को चरितार्थ करने का अवसर नहीं पाया उसे एक प्रकार से अपंग ही कहना चाहिए। पूर्वजों की कमाई पर गुजर करने वाली सन्तान को पराक्रम की कसौटी पर कसते हुए अपंग ही घोषित करना पड़ेगा।

वा. ४८/१.४९

चिड़िया घोंसले में थोड़ा मजबूत होने वाले बच्चे को उड़ना सिखाने के लिए घोंसले से नीचे धकेलती है। बच्चा डरता है, हिचकता है, तो भी वह लाड़-प्यार की भावुकता भुलाकर उसे धकेल ही देती है। नीचे गिरते हुए बच्चा पंख खोलता है, अभ्यास न होने से वह लड़खड़ाता है तो चिड़िया सहारा देती है। लगातार साथ रहकर उसे उड़ने का अभ्यस्त बना देती है। वह जानती है कि जन्म देना या पाल देना ही नहीं बच्चे को स्वावलम्बी बनाना भी आवश्यक है। यह दृष्टिकोण प्रत्येक अभिभावक का रहना चाहिए।

वा. ४८/१.५०

विलासिता, आरामतलबी और फिजूलखर्ची की आदत घर में किसी को भी नहीं पड़ने देनी चाहिए। चुस्ती और स्फूर्ति स्वभाव का अंग बनती चली जाय। कठिनाइयों से जूझने की हिम्मत बढ़ती जाय तो समझना चाहिए कि उत्तराधिकारी को ऐसी सम्पदा मिल गई जिसके आधार पर वे प्रगतिशील जीवन जी सकेंगे। हँसने-हँसाने हलके-फुलके रहने, स्नेह-सद्भाव, कठोर परिश्रम करने और व्यस्त

रहने की आदत अपने घर के लोगों को देकर जो अभिभावक विदा हुए समझना चाहिए उन्होंने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह सही रीति से कर दिया।

वा. ४८/१.५१

परिवार के सदस्यों को सुसंस्कृत बना देना ही उनकी सबसे बड़ी सेवा है। इस तथ्य को भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिए। अधिक सुविधाओं की रिश्त देकर परिजनों को प्रसन्न करने या अनुकूल बनाने की नीति उस स्थिति से तो बहुत ही अवांछनीय बन जाती है, जब उसके लिए अनीति अपनायी पड़ रही हो। अधिक घनिष्ठ सम्बन्धियों के लिए अधिक सम्पदा छोड़ने और अधिक सुविधा देने की नीति तात्कालिक प्रसन्नता भले ही उत्पन्न कर ले, अन्ततः निश्चित रूप से दुष्परिणाम ही उत्पन्न करती है। परिजनों के लिए सुसंस्कारिता के अनुदान देकर ही कोई गृहपति सच्चे अर्थों में गौरवान्वित हो सकता है। विलासिता के अनावश्यक साधन देकर प्रियजनों का हित नहीं साधा जाता, वरन् उन्हें भावी विपत्ति में धकेला जाता है। गृहपति की उपेक्षा या परोक्ष सहमति से घर में कुसंस्कारिता और अव्यवस्था बढ़ती गई, परिजन संकीर्णता और उद्वण्डता के अभ्यस्त बनते गये तो समझना चाहिए कि अनजाने ही उनका अहित सँजोया गया, जिनके हित की उथली चिन्ता सिर पर सवार रहती है। ऊँचा दृष्टिकोण, उज्ज्वल और सज्जनोचित स्वभाव यदि परिजनों को दिया जा सके, तो समझना चाहिए कि गृहपति ने अपने आश्रितों को लाख करोड़ की सम्पदा उत्तराधिकार में प्रदान की है।

वा. ४८/२.५८

मितव्ययी बनिये, सुखी रहिये

परिवार की आर्थिक सुव्यवस्था

वह व्यक्ति धन्य है जिसकी आवश्यकताएँ परिमित हैं और उपभोग के लिए उसे अपना अधिक समय नष्ट नहीं करना पड़ता। उसका अधिक समय अध्ययन, चिंतन, उच्च विषयों के ध्यान तथा दूसरों की सहायता में व्यतीत होता है।

वह गृहस्थ धन्य है जिसके यहाँ फैशन नहीं, झूठा दिखावा, थोथी टीप-टाप या फिजूलखर्ची नहीं। जहाँ प्रत्येक पैसे का उचित उपयोग होता है और पति-पत्नी, बन्धु-बान्धव सभी उसमें सहयोग प्रदान करते हैं। पति कमा

कर लाता है, पत्नी घर की दैनिक वस्तुओं का संग्रह, सदुपयोग और वर्गीकरण करती है, सामान को नष्ट होने से बचाती है और पुत्र घर का हिसाब-किताब रखता है। यह हिसाब प्रत्येक मास खातों में लिखा जाता है और फिर यह मालूम किया जाता है कि किस मद में कितना रुपया व्यय हुआ? भविष्य में किसी प्रकार व्यय रोका जा सकता है? मास के अन्त में जो आर्थिक कठिनाई हुई, उससे कैसे मुक्त हो सकते हैं?

जिसे आर्थिक सामर्थ्य का ज्ञान है, जो अपनी चादर देखकर पाँव फैलाता है, वह अधिक काल तक जीवित रहता है और आन्तरिक शान्ति का उपभोग करता है। नियंत्रण करना सीखिये। कुछ लोग कहा करते हैं कि हमें अपने आप पर नियंत्रण नहीं होता। इसका कारण यह है कि वे कृत्रिमता या विलासिता की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे हैं, उन्होंने अपनी शौकीनी इतनी अधिक बढ़ा ली है कि उस आमदनी में उनका गुजारा नहीं होता। यदि आदमी अपने विवेक को जाग्रत करे और गम्भीरता से सोचे कि मैं किन-किन खर्चों से बच सकता हूँ? कौन-कौन सी विलासिताओं में डूबा हुआ हूँ? तो वह नियंत्रण में सफल हो सकता है। नियंत्रण के प्रारम्भ में कुछ कठिनाई अवश्य होती है, किन्तु ज्यों-ज्यों विवेक-बुद्धि और दुनियादारी जाग्रत होती है, त्यों-त्यों वह शक्ति धन और जीवन, परहित साधन में लगाता है। बाह्य प्रदर्शन, मिथ्या अहंकार का त्यागता है। अपव्यय से मुक्ति पाने का अमोघ उपाय एकमात्र विवेक जनित नियंत्रण है।

क्षणिक भोग-विलास की पूर्ति के लिए, जिह्वा की तृप्ति के लिए, मिथ्या गौरव के प्रदर्शन के लिए कभी कर्ज न लीजिए। आप भारतीय हैं, भारतीय जनता सादगी-पसन्द तथा निर्धन है। शादी, गमी-न्यौता इत्यादि में अपव्यय हमारी मूर्खता का परिचायक है। चाहे आप जितना भी बढ़-चढ़ कर विवाह कीजिए, समय के प्रवाह के साथ जनता सब कुछ विस्मृत कर देती है। विवाह में जो कर्ज लेते हैं, वह पर्वत के समान हमारे ऊपर बोझ डालता रहता है, विवाहित जोड़ा सब कुछ विस्मृत कर देता है। घर या मकान तक बिक जाता है।

आभूषणों से सावधान! गृहणी का सच्चा आभूषण है उसका स्वास्थ्य, पारिस्परिक प्रेम, सद्भावनाएँ, शिक्षा और योग्यता। वह युग गया जिसमें आभूषणों द्वारा ही बड़प्पन प्रतीत होता है।

क्या आपके घर में जूठन छोड़ी जाती है? क्या प्रत्येक थाली में दाल-सब्जी छोड़ी जाती है? खाद्य पदार्थ चूहों के लिए खुले पड़े रहते हैं? भोज्य

पदार्थ घर पर आने वाले अनेक फकीरनुमा आलसी व्यक्तियों को दिया जाता है ? क्या आपके घर बासी रोटी रखने और उसे कुत्ते बिल्लियों को देने की प्रथा है ? यदि ऐसा है तो तुरन्त आपको गरीबी और तंगी के लिए तैयार हो जाना चाहिए। जो व्यक्ति रोटी का एक टुकड़ा भी फेंकता है, वह गरीब जनता के रक्त से अर्जित अनाज-राशि को नष्ट करता है, वह महापापी है।

धन को गाढ़कर रखना भी एक प्रकार से अपव्यय है। यदि धन है, तो उसका उचित उपयोग कीजिए। यदि आप बैंक में रखते हैं, तो एक तो वह सार्वजनिक काम में आता है, दूसरे आपको उस पर व्याज मिलता है। आपके हाथ से रुपया दूर रहने के कारण आप पर नियंत्रण रहता है। वस्तुओं के उपभोग के सम्बन्ध में साधारणतः सरकार द्वारा नियंत्रण होना चाहिए। दाल, आटा, शक्कर, दियासलाई, मिट्टी का तेल इन सभी को प्रत्येक नागरिक को नाप-तौल कर मिलना चाहिए। इससे मनुष्य को नियंत्रण की आदत सिखाई जा सकती है। मादक वस्तुओं पर तो इतना कड़ा नियंत्रण होना चाहिए कि कोई उसे बिना लाइसेंस के खरीद ही न सके।

वा. ४८/५.१४

अधिक व्यय करने की हानियाँ

हमारे समाज में आय के अनुपात में एक हैसियत है, एक स्थिति है। यदि हम इस हैसियत के अनुसार व्यय नहीं करते हैं, आवेश या टीपटाप, मिथ्या प्रदर्शन या फिजूलखर्ची में अधिक व्यय कर डालते हैं, तो यह निश्चय है कि हमारा जीवन सदा मिथ्या भार से दबा रहेगा और विकास रुक जायगा। हम बाहर से तो लिपे-पुते, बने-ठने दिखाई देंगे, पर अन्दर हमारी आत्मा पर कर्ज का बोझ बढ़ता जायेगा। यह हमारे जीवन को घुन की तरह खा लेगा।

यदि हमारे पास रुपया है तो उसे श्रृंगार तथा दिखावे में खर्च करने के स्थान पर हमें ऐसे आवश्यक पदार्थों में व्यय करना चाहिए, जिनसे स्थायी लाभ हो। जेवर कदापि आवश्यक चीज नहीं है। आवश्यक पदार्थ ये हैं:-

- (१) पौष्टिक पदार्थ, अच्छे-अच्छे फल, तरकारियाँ, सूखे मेवे, दूध-दही।
- (२) साफ-सुथरे वस्त्र जो चलाऊ हों, धुल सकें और मजबूत रहें।
- (३) स्वच्छ मकान जिसमें वायु का प्रवेश खूब हो, आस-पास स्वच्छ हो।
- (४) संतान के लिए उत्तमोत्तम शिक्षा, पत्र-पत्रिकाएँ, अच्छी पुस्तकें।
- (५) बचत- रोग, वृद्धावस्था, विवाह, मृत्यु, मकान आदि के लिए।
- (६) दान- सत् शिक्षा और दीन-दुःखियों के लिए सहायता।

यदि हमारी आमदनी थोड़ी है तो हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमारी सब आवश्यकताएँ और दिल बहलाव की चीजें तो पूर्ण नहीं हो सकतीं, अतः हमें खास आवश्यकताओं को सबसे पूर्व रखना होगा। जो पूरी नहीं हो सकती उनके प्रति आत्म-संयम से काम लेना होगा, मन का दमन करना होगा। जो चीजें हम क्रय नहीं कर सकते उनके प्रति मन में इच्छाएँ करना ही अपने जीवन को दुःखमय बनाना है। अभाव की इच्छा जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है। जब मनुष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो वह असत्य, अविचार, बेईमानी का पथ ग्रहण करता है, घर-घर भीख माँगता है, चोर-डाकू बनकर जाति और देश को कलंकित करता है। जो आमदनी हो उससे कम व्यय कीजिये और थोड़ा-थोड़ा भावी आवश्यकताओं के लिए अवश्य बचाते चलिये। अपनी चादर देखकर पाँव फैलाइये। ऋण बुरी बला है-यह झूठ, नीचता, कुटिलता, चिंता और मायाचार की जननी है।

वा. ४८/५.४

बहुत से फैशनपरस्तों ने अपने पूर्वजों की गाढ़ी कमाई केवल इसलिए व्यय कर दी कि लोग उनकी गिरती हुई आर्थिक कमजोरी को न जान लें। सामाजिक प्रतिष्ठा कायम करने के लिए वे तबाह हो गये हैं, अन्त में असमर्थता और बेबसी में कंगाल होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। आखरी वक्त में वे सब मिथ्या प्रशंसक उन्हें छोड़ बैठें जो कभी उनकी पोशाक की तारीफ के पुल बाँधा करते थे। आज तीन चौथाई लोग भ्रष्टाचार, झूठ या धोखाधड़ी के मामलों में गिरफ्तार होते हैं, महज इसलिए ही अपमानित और लज्जित होते हैं क्योंकि वे बाहरी लिफाफा खूबसूरत बनाने में ही लगे रहे, आन्तरिक मजबूती की ओर ध्यान ही नहीं दिया। समाज की क्षणिक प्रशंसा की भूख में क्या आप अपने को तबाह कर देंगे? क्या अपने परिवार को आयु भर के लिए ऋण के राक्षस को सौंप देंगे? क्या अपने बच्चों को अशिक्षित और मूर्ख बनाये रखेंगे? क्या दुनिया में बदनामी का धब्बा अपने ऊपर लगा हुआ छोड़ जायेंगे? समाज की प्रशंसा की भूख एक मृगतृष्णा है। उसे तो दूसरों की गिरावट में आनन्द आता है। वह तो उस दिन की प्रतिक्षा में है जब आपके पैसे समाप्त हो जायेंगे और आप दाने-दाने के मुहताज हो मारे-मारे फिरेंगे या दिवालिया होकर आत्म-हत्या करेंगे।

फैशनपरस्ती के रोग में औरतें बुरी तरह फँसी हुई हैं, वे हैसियत की कभी परवाह नहीं करतीं। उन्हें नए-नए किस्म की साड़ियाँ, आभूषण, पाउडर, क्रीम, बनाव-श्रृंगार चाहिए, सुन्दरता बढ़ाने की सैकड़ों वस्तुएँ चाहिए। सिनेमा का मनोरंजन चाहिए। दान देने के लिए ढेर-सा रुपया चाहिए, विवाहों और दूसरे

अवसरों पर दूसरों को दिखाने के लिए बहुत-सी चीजें देने को चाहिए। वे सदा अपने से अमीरों का अनुकरण करती हैं, उन्हें यह परवाह नहीं कि बेचारा पति किस मुसीबत से कमा कर लाता है, कितनी झिड़कियाँ सहता है, कितनों की खुशामद करता है। उनकी शिक्षा ऐसी है जिसमें वे बाह्य तड़क-भड़क, मिथ्या प्रदर्शन, फैशन की बाहरी श्रृंगार सज्जा में ही लगी रहती हैं। घण्टों वेशभूषा बनाने में व्यय कर देती हैं। शिक्षा का वास्तविक तात्पर्य आन्तरिक योग्यता और सदगुणों की अभिवृद्धि है, मनुष्यत्व का विकास है। अपनी सीमाएँ और हैसियत की जान पहचान है, पर स्त्रियाँ आजकल की दिखाऊ शिक्षा प्राप्त कर यह सब ग्रहण नहीं करती और पति के लिए एक सिरदर्द बन जाती हैं।

वा. ४८/५.३

मिथ्या-प्रदर्शन और झूठी नामवारी

भारत में केवल धनिक वर्ग को ही नहीं, साधारण स्थिति वालों तथा निम्न वर्ग को भी अपव्यय तथा मिथ्या प्रदर्शन की भावनाएँ हैं जो दूसरों के सम्मुख अपना अतिरंजित एवं झूठा स्वरूप रखना चाहते हैं। आज के युग में अभिशाप वे आदतें हैं जिन्होंने हमें व्यर्थ-व्यय में फँसा दिया है।

हम देखते हैं कि मध्यमवर्ग तथा निम्न वर्ग में एक ओर घर में पत्नी और बच्चे फटेहाल रहते हैं, संतान टुकड़ों को तरसती है, मेरे-तुम्हारे आगे हाथ पसारती है, तो दूसरी ओर दिखावा पसन्द पति अपने कपड़े-लत्ते, फैशन तथा जिह्वा की तृप्ति के निमित्त आवश्यकता से अधिक व्यय करता है। पुरुष सभा-सोसाइटी में बैठता है, दूसरों को बढ़िया सूट, नेकटाई और बूट में देखता है, तो स्वयं भी उनका अनुकरण करता है। वह अपनी स्थिति, आय और जिम्मेदारियों को नहीं समझता, यदि समझता है तो समझकर भी भूलना चाहता है।

मिथ्या-प्रदर्शन के अनेक रूप हैं:-

- (१) चटकीली-भड़कीली पोशाक, (२) मित्रों में प्रतिष्ठा रखने के हेतु अपव्यय,
- (३) विवाह, उत्सव, मेले, प्रतिष्ठाओं, जन्म-मरण संस्कारों में अनावश्यक खर्च
- (४) दान, दहेज, रिश्वत, चन्दा इत्यादि में अपनी आय की उपेक्षा कर अमितव्यय,
- (५) जात-बिरादरी, भाई-बन्धुओं के बीच अपनी झूठी शान रखने के लिए अपव्यय (६) अपनी गन्दी आदतों- सिगरेट, चाय, शराब, सिनेमा, बालडासिंग,
- व्यभिचार इत्यादि के वश में आकर नाना प्रकार के भोग-विलासों में फिजूलखर्ची,
- (७) प्रतियोगिता- अमुक व्यक्ति ने अपने लड़के की शादी में २०,००० व्यय

किए हैं तो हम ४०,००० व्यय करेंगे। अमुक ने अमुक काम में इतना खर्च किया है, अतः हमें भी इतना करना चाहिए। इस प्रकार पारस्परिक कम्पिटीशन में अनेक व्यक्ति बर्बाद होते हैं। मिथ्या-प्रदर्शन की भावना मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से थोथेपन, संकुचित, उथलेपन और छिछोरापन की प्रतिक्रिया है। जो व्यक्ति जितना कम जानता है, बिना पढ़ा-लिखा, अविवेकी और नासमझ है, वह उतना ही बाह्य प्रदर्शन करता है। जो स्त्रियाँ बिना पढ़ी-लिखी मूर्खा हैं, बनाव-श्रृंगार में अत्यधिक दिलचस्पी लेती हैं, वे लज्जा तक का ध्यान नहीं रखती। इसी फिजूलखर्ची का यह दुष्परिणाम है कि आज महिला-जगत में, विशेषतः पंजाबी नारी समाज में फैशन-परस्ती बुरी तरह अभिवृद्धि पर है। शाम को बड़े शहरों में ढेर-की-ढेर दिखावा पसंद नारियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों तथा सौन्दर्य के अन्य प्रसाधनों से विभूषित होकर निकलती हैं। इन्हें देखकर कौन कह सकता है कि भारत निर्धन देश है।

वा. ४८/५.३

कभी उधार न लीजिये

उधार एक ऐसी बला है, जो मनुष्य की सब शक्तियों को क्षीण कर डालती है। उसे सबके सामने नीचा देखना पड़ता है, हाथ तंग रहता है। उधार लेने की आदत बहुत बुरी है। उधार लेते समय तो चाहे वह रुपया हो या और कोई चीज कुछ पता नहीं चलता, परन्तु देते समय दशा बिगड़ जाती है। ऐसा लगता है, जैसे पैसे फेंक रहे हैं। धीरे-धीरे यह आदत इतनी जोर पकड़ती है कि उधार की चीज या पैसा लौटाने को मन नहीं होता और फल यह होता है— मित्रों से कन्नी काटना, समाज में निरादर, बदनामी आदि। फिर वह 'भेड़िया आया' वाली बात होती है। यदि कभी वास्तविक आवश्यकता पड़ी भी तो पैसा नहीं मिलता। इसलिए निश्चय करना चाहिए कि कभी कोई चीज या रुपया उधार नहीं लेंगे।

वा. ४८/५.६

दूरदर्शी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और खर्चों का पहले से ही बजट तैयार करता है। उसकी आय वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति में ही व्यय नहीं होती, प्रत्युत वह भविष्य के लिए, बच्चों की शिक्षा, विवाह, बुढ़ापे के लिए धन एकत्रित रखता है, अपनी परिस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ अवश्य बचाता है। किसी कवि ने कहा है—

कौड़ी-कौड़ी जोड़ि के, निर्धन होत धनवान।

अक्षर-अक्षर के पढ़े, मूर्ख होत सुजान॥

वा. ४८/५.८

इन बातों को स्मरण रखिये

पारिवारिक व्यय करते समय सभी खर्चों का खूब अनुमान लगा लीजिए। जो स्थायी व्यय हैं, उन्हें महीने के प्रारम्भ ही में कर डालिये। भोजन और स्थायी खर्च प्रारम्भ में कर लेने से महीने के अन्त तक आनन्द रहता है। यदि आप प्रतिदिन दूध खरीदते हैं तो दूध वाले को रुपया अग्रिम ही दे देना उचित है, अन्यथा इस महीने का भार दूसरे महीने पर पड़ेगा। अर्थात् यह रुपया एक प्रकार का कर्ज-सा बना रहेगा। चीजें नगद लेने की आदत डालिये, क्योंकि उधार आप भूल जायेंगे और फिर माँगने वाले किसी ऐसे समय आकर आपको तंग करेंगे, जब आप का हाथ तंग होगा। उधार या कर्ज ऐसी नंगी तलवार है जो आप पर सदैव लटकती रहती है। प्रायः दुकानदार उधार वाले को चीजें भी मँहगी देते हैं। त्यौहार, उत्सव और धर्म कार्यों में फिजूलखर्ची से बचना चाहिए। प्रायः मुसलमान तथा हिन्दू निर्धन व्यक्ति कर्ज लेकर त्यौहार मनाते हैं। कर्ज का एक पैसा खाना भी पाप है। उधार की एक कौड़ी भी भार स्वरूप है। जो स्थिति परमेश्वर ने आपको दी है, उसी के अनुकूल त्यौहार और उत्सव मनाइये। आत्मनिग्रह और संयम आपकी सहायता करेंगे। विवाह तक में जमाने की परवाह न कर अपनी हैसियत के अनुकूल व्यय करना चाहिए। तीर्थयात्रा, ब्राह्मण भोजन, रूढ़ियों, बिरादरी को प्रसन्न करने में व्यय करना छोड़ दीजिये। इसी प्रकार अतिथि सेवा आपका धर्म है, पर कर्ज लेकर मेहमानदारी करना मूर्खता है। वा. ४८/५.९

कर्ज वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता। गरीबी कष्टकर है, किन्तु ऋण भयावह है। एक लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि कर्ज, मनुष्य के लिए ऐसा है जैसे चिड़िया के लिए साँप। वा. ४८/५.१५

टॉल्सटाय कहा करते थे, कर्ज देना मानो किसी भारी चीज को पहाड़ की चोटी से नीचे ढकेलना है, मगर उसका वसूल करना उस चीज को नीचे से चोटी तक चढ़ाना है। कर्ज सब से बुरी गरीबी है।

ऋण लेकर जीना अथवा प्रतिमास पूरी की पूरी आय व्यय कर देना एक भारी मूर्खता है। अर्थ एक प्रकार की संचित शक्ति है, उस एकत्रित शक्ति को साधारण या अल्प-संतोष देने वाली क्षणिक, आवेशपूर्ण, जिह्वा या कामेन्द्रियों के स्वाद के लिए अविवेक से खर्च देना, अपने आपको कमजोर बना देना है। वेद में अपनी सीमित आय में ही निर्वाह करने का बार-बार आदेश दिया गया है-

“अवृणो भवामि” -अथर्व. ६/११७/१

वा. ४८/५.१

अर्थात् हे दुनिया के लोगो ! किसी के ऋणी मत रहो । अपनी स्थिति से बाहर खर्च न करो ।

“अनृणाः स्याम” –यजुर्वेद ३२

अर्थात्- खर्चीले व कर्जदार मत बनो । ऐसे काम मत करो । ऐसे व्यर्थ कार्य मत करो कि कर्ज लेना पड़े ।

“सर्वान् यथो अनृणा आक्षिपेम” –आयुर्वेद ३२

अर्थात् जो ऋण से मुक्त है, उसी की उन्नति होती है ।

वा. ४८/५.१७



१६. साधारण गृहस्थी के खर्च विभाग

तीन लम्बे लिफाफे लीजिये और उन पर यह लिखिये:- (१) चालू खर्च का रुपया (२) अचानक खर्च (३) प्रासंगिक खर्च। आपकी आमदनी के हिसाब से इन तीनों मदों में पृथक्-पृथक् रुपया डालिये। चालू खर्च में सर्वाधिक व्यय होगा, पर प्रति मास आपको ५-५ प्रतिशत अन्य दोनों मदों में भी व्यय करना होगा। यहाँ हम तीनों खर्चों की पूरी सूची देते हैं:-

चालू व्यय:- यह व्यय प्रतिमास करना होगा। इसमें कमी नहीं हो सकती। इसमें भोजन का बजट, मकान का किराया, बच्चों की फीस, नौकरों का खर्चा, वस्त्रों का व्यय, चिरागबत्ती, धोबी, साइकिल का व्यय, बीमा पॉलिसी, गाय-भैंस का खर्च, सूद इत्यादि। टैक्स, टायलेट (तेल साबुन, बाल कटाना), पोस्टेज, चाय, लकड़ी, कोयला इत्यादि। मसाले, पुस्तकालय का चन्दा, पानी-बिजली का खर्च साबुन कपड़ा धोने के लिये, बच्चों का पाकेट-खर्च, कर्ज की अदायगी, ताँगा खर्च आदि।

अचानक व्यय:- दैनिक स्थायी व्यय के अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें भी हैं, जिनमें मनुष्य को व्यय करना होता है। ये खर्चे अचानक मनुष्य पर टूट पड़ते हैं, यदि हमारे पास इस मद में रुपया न हो तो कर्ज की नौबत आ सकती है। इस मद में निम्नलिखित व्यय हैं-बीमारी, मेहमानदारी, अचानक कहीं जाना पड़े, तब उस यात्रा का खर्च। कोई अन्य आपत्ति आ पड़े जैसे- मुकदमेबाजी, किसी को कर्ज देना पड़े, किसी की मृत्यु हो जाय उसका व्यय, मकान गिर पड़े उसकी मरम्मत इत्यादि के लिये, घर में चोरी हो जाय उसके लिए व्यय। उसके अतिरिक्त जीवन की अनेक दुर्घटनाएँ हैं, जिनके लिये आपको रुपये की जरूरत पड़ सकती है।

प्रासंगिक खर्च तथा बचत:- तिथि, त्यौहार, भोज, मानता, श्राद्ध, शादी-विवाह, दान, यात्राएँ, उत्सव, धर्मादाएँ, आभूषण इत्यादि बनवाना। आमदनी को इन तीनों विभागों में बाँट कर बचत करनी चाहिए। जिसके पास बचा हुआ रुपया जमा नहीं है, वह कभी सुख की नौद नहीं सो सकेगा। चाहे थोड़ी ही सही, बचत के मद में कुछ न कुछ अवश्य रखना बुद्धिमानी है। बचत को सदैव नकद रुपयों के रूप में ही रखना चाहिए। चाहे एक समय भूखे रहें, किन्तु कुछ न कुछ अवश्य बचाकर अपने पास रखें।

संकट के समय में खर्च

संकट के समय में ज्यों-ज्यों आमदनी कम हो, त्यों-त्यों अपने खर्च कम करने के लिये प्रस्तुत रहिए। अपनी आदत बनाना आपके हाथ की बात है। अपनी कृत्रिम आवश्यकताओं, मनोरंजनों, आमोद-प्रमोद, वासनाओं की तृप्ति, जिह्वा के स्वाद, फैशनपरस्ती, दान, यात्राएँ आदि, कम आमदनी होने पर काट देने के लिये आपको तैयार रहना चाहिए।

सबसे पहले अपने मनोरंजन के व्यय को कम कीजिए। किसी क्लब के मेम्बर हों, तो छोड़ दीजिए, सिनेमा जाना बन्द कर दीजिए, स्वाद के लिए चाट, पकौड़ी, फल, सिगरेट, मद्यपान, सुपाड़ी छोड़ दीजिए, फैशन में कमी कीजिए। यदि फिर भी बजट ठीक न बैठे तो फुटकर खर्चों को कम कीजिए, नौकर छुड़ाकर स्वयं घर का काम कीजिए। यदि घर के आस-पास कुछ जमीन है तो शारीरिक परिश्रम से उसमें शाक-भाजी, इत्यादि उगाइए। बच्चों को स्वयं पढ़ाइए। वस्त्र स्वयं धो लिया कीजिए। रोशनी में कमी कर सकते हैं। दिन में काम कर लीजिए। जल्दी सोना जल्दी जगना स्वास्थ्यप्रद है। यदि फिर भी खर्च कम न हों, तो मकान बदल करके सस्ता मकान लेना होगा, लेकिन मकान हवादार और स्वच्छ स्थान पर होना चाहिए। बीमार न पड़ना होगा। बीमारी बड़ी महँगी बैठ जायेगी। वस्त्रों तथा जूते को सावधानी से रखकर अधिक से अधिक चलाना होगा। जितना ही आर्थिक संकट होगा, उतना ही मर्यादित और मितव्ययी आपको बनना होगा। मितव्यय, आत्म संयम और इन्द्रिय निग्रह के समान सुख देने वाला कोई गुण संसार में नहीं है।

वा. ४८/५.९

बीमारियों में हमें अनाप-शनाप व्यय करना होता है। पास पैसा नहीं होता तो ऋण लेकर व्यय करना होता है। बीमार पड़ना अत्यन्त महँगा है। अन्य चीजें इतनी महँगी नहीं है, जितनी बीमारियाँ। अतः आपको अधिक से अधिक अपने स्वास्थ्य की देख-रेख करनी होगी। संकट में सबसे पूर्व अपने स्वास्थ्य की चिन्ता कीजिए। यदि बीमार पड़ियेगा, तो आपकी सारी मितव्ययिता का बजट रखा रह जायगा। बजट तभी कम रहेगा, जब आपके सब घर वाले स्वस्थ और प्रसन्न हों, आत्मनिग्रह और संयम कर सकें। बीमारियों से सावधान रहिये।

वा. ४८/५.१०

सही बजट बनाइये

प्रत्येक परिवार के लिए यह उचित है कि वह अपनी आय और परिवार के सदस्यों के हिसाब से कुछ बचत अवश्य करे। बचत से मनुष्य में अज्ञान-

आपत्तियों को सहने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। मनुष्य बुढ़ापे, बीमारी या अंग-भंग हो जाने पर कमाने के लिए अयोग्य हो जाता है, बेरोजगारी, व्यापार में घाटा या मुख्य कमाने वाले के मर जाने पर आर्थिक संकट से घिर जाता है।

बचत इन सब में हमारी सहायता करती है। बच्चों की शिक्षा, विवाह, यात्रा तथा सामाजिक रीति-रिवाजों के लिए संचित धन की आवश्यकता होती है। फिजूलखर्च लोग वृद्धावस्था में दाने-दाने को मुहताज हो जाते हैं। फिजूलखर्चों को सामाजिक सम्मान नहीं मिलता, उसकी आय में वृद्धि नहीं होती, कभी कोई पूँजी इकट्ठी नहीं कर पाता। बचत से देश व समाज को भी लाभ पहुँचता है। बचत से देश में पूँजी की वृद्धि होती है और देश का आर्थिक विकास होता है। बचत से आय बढ़ती है और रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठता है। धीरे-धीरे बचत करने वाले की कार्यक्षमता में भी वृद्धि हो जाती है। अतः फिजूलखर्चों को छोड़कर बजट बनाकर ही खर्च करना चाहिए।

सबसे पहले भोजन पर व्यय कीजिए। वे सभी आवश्यक वस्तुएँ जैसे अनाज, सब्जी, घी, तेल, गुड़, चीनी, मसाले आदि खरीद लीजिए। प्रकाश और लकड़ी, ईंधन आदि का प्रबन्ध कीजिए। फिर वस्त्रों और मकान के लिए व्यय कीजिए। शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरंजन की मद में खर्च कीजिए। शेष बचाइये, आपकी आर्थिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है। व्यय और बचत दोनों में विवेकपूर्ण संतुलन हो। यदि मनुष्य विवेकपूर्ण नीति से पौष्टिक पदार्थों, कार्यक्षमतावर्द्धक वस्त्रों, अच्छे मकानों, बच्चों की शिक्षा, अच्छी पुस्तकों पर व्यय करता है तो स्वयं उसकी तथा उसके परिवार वालों की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। इससे व्यक्ति, परिवार और समाज सुखी व सम्पन्न बनता है।

यदि मनुष्य विलासिता की वस्तुओं पर अधिक व्यय कर देता है जैसे सिनेमा, ताश, मोटरकार, रेडियो, फैशन, दिखावा आदि, तब उसे दूध, दही, घी तथा अच्छी भोज्य सामग्री का सुख प्राप्त नहीं हो पाता। यदि किसी व्यक्ति के गलत उपयोग से स्वयं उसको या समाज को हानि की सम्भावना है, तब इस स्थिति में समाज अथवा सरकार को अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए। यदि एक उपभोक्ता दूसरे उपभोक्ताओं के सामने व्यय का एक अच्छा उदाहरण उपस्थित कर सकता है, तो वह अनुकरणीय है। विलासिता के उपभोग से क्रियाशीलता और कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती। आज देश की जो पूँजी विलासिताओं की वस्तुओं में व्यय की जा रही है, वह मनुष्य की अनिवार्यताओं और आरामदायक वस्तुओं के उत्पादन में व्यय होना चाहिए। विलासिताएँ, सामाजिक दृष्टिकोण से

हानिकारक और अवांछनीय हैं। यह वर्ग-विषमता फैलाती है। अमीर और गरीब के बीच द्वेष, जलन तथा घृणा फैलती है और पूरे समाज में द्वेष फैल जाता है। धनी व्यक्तियों को विलासिता की वस्तुओं का उपयोग करते देखकर गरीब भी उनकी अंधी नकल करने लगते हैं, इस अनुकरण का भयंकर परिणाम होता है। विलासिताओं के उपयोग से आदमी आलसी, विलासी और चरित्रहीन बन जाते हैं। उसका स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन नष्ट हो जाता है। उपभोक्ता व्यभिचारी और चरित्रहीन हो जाता है। स्मरण रखिए, समाज में जो सम्मान हमें प्राप्त होता है, वह केवल ऊपरी ठाठ-बाट से नहीं, प्रत्युत ईमानदारी, सज्जनता और व्यवस्थित जीवन से होता है। इन्द्रियों को विलासिता की ओर आकृष्ट करने से कौन बड़ा बना है? उलटे विलासी जीवन से स्वार्थपरता, बेईमानी, शोषण, निष्ठुरता, लोभ, अनुदारता, आलस्य और अज्ञान फैलता है। फिजूलखर्ची का घुन बड़े-बड़े परिवारों और अमीरों को धीरे-धीरे नष्ट कर देता है। एक को टीपटाप तथा फैशनपरस्त देखकर अन्य भी इसी दिशा में उसका अनुकरण करते हैं और समाज में बुराई का विष फैलता है। हमें व्यवस्थित जीवन का ही अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। आदर्श जीवन जीने में नेतृत्व करना चाहिए।

जीवन में जरूरतें भी बहुत हैं और शायद हर एक ही आवश्यक भी हैं, लेकिन हमें अपने तथा परिवार के लिए अधिक उपयोगिता और कम उपयोगिता को ध्यान में रखकर पहले बेहद जरूरी वस्तुओं पर ही व्यय करना चाहिए।

पैसा पास रखने फिजूल की चीजों में व्यय करने को जी चाहता है। पास न रखने से इच्छाएँ दबी रहती हैं। मन संयत रहता है और विवेकशीलता अधिक काम करती है। इसलिए या तो पैसे को ठोस और जीवनोपयोगी वस्तुओं में बदल दीजिए। अनाज इत्यादि वर्षभर के लिए रख लीजिए अथवा बीमा, बैंक या नेशनल सेविंग सर्टीफिकेट में लगा दीजिए। आँखों से दूर रहने पर आपकी फिजूलखर्ची की आदत बहुत कुछ कम हो जायेगी। मन से विलासिता और झूठी शौकीनी के उथले विचार निकाल देने पर मनुष्य का विवेक जाग्रत होता है और वह फैशनपरस्ती की व्याधि से बचता है।

वा. ४८/५.१८

पारिवारिक व्यय के लिए कुछ सुझाव

सब कमाने वाले सदस्यों को सम्पूर्ण आय मुख्य व्यक्ति के पास जमा करनी चाहिए। वह पूरी आय का योग कर परिवार की आवश्यकताएँ नोट करता जाय और बजट तैयार करे। उसमें प्रत्येक छोटे कुटुम्ब को कुछ हाथ खर्च दें।

यदि सम्भव हो तो जेब खर्च सबके लिए रखा जाय। सर्वप्रथम स्थायी व्ययों- अनाज, पानी, रोशनी, लकड़ी, मिर्च-मसाले, दूध का विधान रखा जाय। तत्पश्चात् वस्त्रों की योजना रहे, दृष्टिकोण यह रहे कि कम से कम सबको तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र मिल जायें। दफ्तर में काम करने वाले बाबू तथा विद्यार्थियों को कुछ विशेष वस्त्र बाहर के लिए अतिरिक्त प्रदान किए जा सकते हैं। वर्ष के प्रारंभ में ही बिछौना, दरियों, रजाइयों का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। मकान का प्रश्न आजकल बहुत जटिल हो गया है, किन्तु अपनी आय, मर्यादा, स्वास्थ्य की दृष्टि से मकान का चुनाव हो। यदि मकान घर का हो तो उसकी टूट-फूट का प्रतिवर्ष अच्छा इन्तजाम रहे। फुटकर खर्च जैसे बच्चों का अध्ययन, डॉक्टर की फीस, दवाइयाँ, देनदारी, टॉयलेट, मनोरंजन, नौकर, सफर इत्यादि का खर्च बहुत सम्हालकर रखा जाय। विलासिता के व्यय से बड़ा सतर्क रहा जाय। बीमा, विवाह-शादियों, मृत्यु, बीमारी, मकान, मुकदमेबाजी तथा परिवार पर आने वाले आकस्मिक खर्चों के लिए सावधानी से एक अलग खाता रखा जाय।

परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को संयमित करे और पूरे परिवार के लाभ को देखे। जिन परिवारों में एक विद्यार्थी को पढ़ाने के लिए सब अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को तिलांजलि देते हैं, सामूहिक उन्नति में विश्वास करते हैं, वह उत्तरोत्तर विकसित होता है।

वा. ४८/५.३६

मिल-जुलकर रहने, योग्यतानुसार कमाने, आवश्यकतानुसार खर्च करने की आदर्शवादिता परिवार का मेरुदण्ड है। अध्यात्म की दृष्टि से अधिक लोगों का आत्मीयता के बन्धनों में बँधना सुख-दुःख को मिल-बाँटकर वहन करना, अधिकार को गौण और कर्तव्य को प्रमुख मानकर चलना पारिवारिकता है।

वा. ४८/२.२



१७. व्यक्ति, परिवार और समाज निर्माण के लिए त्रिविध आयोजन

महिला शाखाओं का एकमात्र कार्य यह है कि परिवार निर्माण योजना द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों को गतिशील करना और उसका नेतृत्व कर सकने योग्य समर्थ महिलाओं की संख्या बढ़ाना। आधी जनसंख्या महिलाओं की है और परिवार संस्था से शत-प्रतिशत मनुष्यों का सम्बन्ध है। पूरी अथवा आधी मनुष्य जाति के वर्तमान और भविष्य का जिससे सीधा सम्बन्ध हो, वह अभियान संसार का भाग्य विधायक ही समझा जा सकता है। इतने बड़े काम को हाथ में लेने वाले, इतना बड़ा उत्तरदायित्व संचालने वाले अभियान को हर दृष्टि से महान ही कहा जा सकता है। युग परिवर्तन की सम्भावना सच्चे अर्थों में इसी पर निर्भर है। जो इसे अग्रगामी बनाने के लिए कार्यक्षेत्र में उतरते हैं उनकी दूरदर्शिता और उदारता को जितना सराहा जाय उतना ही कम है। वा. ४८/२.१०७

इस आन्दोलन के लिए बड़े सभा-सम्मेलनों की या बहुत बड़े प्रचार तन्त्र की आवश्यकता नहीं है। कुटीर उद्योग के स्तर पर ही इसे घर-घर पहुँचाने और आँगन-आँगन में उगाने की आवश्यकता है। इसके लिये प्रधान उपाय उपचार हैं- परिवार गोष्ठियों की व्यवस्था, हर्षोत्सवों के रूप में नियोजित भावभरे आयोजन इस प्रयोजन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। घर-परिवार, पड़ोस, रिश्ते की मित्र मण्डली इकट्ठी होकर किसी परम्परा को अपनाने एवं गतिशील करने में अधिक सफल हो सकती है। अपने समझे जाने वाले लोग कभी भी भावभरी मनःस्थिति में होंगे और किसी उपयोगी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे तो उनके फलित होने की सम्भावना स्वभावतः अधिक रहेगी। परिवार गोष्ठियों को प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक उपयोगी माना जा सकता है।

भारतीय संस्कृति में इस प्रयोजन के लिए संस्कारों और पर्वों के रूप में गृह उत्सवों की प्रथा प्रचलित थी और उस माध्यम से सभी को उपयोगी प्रेरणाएँ मिलती थीं। सम्मिलित होने वाले उन धर्मकृत्यों को अभीष्ट प्रगति के लिए गुरुजनों द्वारा अपनी परिस्थितियों के अनुरूप मार्ग-दर्शन प्राप्त करते थे। यों लकीर पीटने की तरह उन प्रथाओं की चिन्ह पूजा तो अभी भी होती है, पर उनमें अनुप्राणित करने की जो प्रखरता थी, वह समाप्त हो गई। उसे पुनर्जीवित करने का

ठीक यही समय है। देवालय तो पहले से ही बना है उसका जीर्णोद्धार हम सब मिल-जुलकर कर लें तो भी यह कम गर्व गौरव की बात नहीं है।

भारतीय धर्मानुयायी को सोलह बार या दस बार सुसंस्कारित किया जाता है और इसके लिए जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बार-बार ऐसे आयोजन किये जाते हैं जिनमें देवावाहन, धर्मानुष्ठान एवं उपयोगी मार्गदर्शन का समुचित समावेश है।

- (१) गर्भावस्था में पुंसवन,
- (२) जन्म के उपरान्त नामकरण,
- (३) छह महीने का होने पर अन्न प्राशन,
- (४) एक वर्ष की आयु में मुण्डन,
- (५) तीन वर्ष का होने पर विद्यारंभ,
- (६) बारह वर्ष में यज्ञोपवीत,
- (७) बीस-पच्चीस के बीच विवाह,
- (८) चालीस के उपरान्त वानप्रस्थ,
- (९) पैंसठ के बाद संन्यास

जीवित स्थिति में यह नौ संस्कार ही प्रधान हैं। दसवाँ, अन्त्येष्टि जीवन समाप्त होने के उपरान्त किया जाता है। यों संस्कारों की संख्या सोलह बताई गई है और उन सबके विधि-विधान भी हैं, पर वर्तमान व्यस्तता और महँगाई की परिस्थिति में यह नौ बन पड़ें तो भी कम संतोष की बात नहीं है। उपरोक्त नौ में पाँच ऐसे हैं जो छोटी धर्म गोष्ठियों के रूप में कुशल महिलाओं के नेतृत्व में परस्पर मिल-जुलकर ही सम्पन्न होते रह सकते हैं।

(१) पुंसवन, (२) नामकरण, (३) अन्नप्राशन, (४) मुण्डन, (५) विद्यारंभ के धर्मानुष्ठानों में बच्चों के प्रति शुभकामना प्रकट करने तथा उनके अस्तित्व अवतरण पर आनन्द मनाने का अवसर मिलता है। इसके साथ-साथ यह भी पूरी-पूरी गुंजाइश है कि उन अवसरों से तालमेल बिठाते हुए हर परिवार की स्थिति के अनुरूप समस्याओं के समाधान एवं प्रगति-प्रोत्साहन के लिए उपयोगी मार्गदर्शन प्रस्तुत किया जा सके। जिनके नेतृत्व में यह आयोजन होते वे अपनी कुशलता एवं दूरदर्शिता के आधार पर इन आयोजनों के माध्यम से उपयोगी सुधार परिवर्तन की दृष्टि से बहुत कुछ कर सकती हैं। रचनात्मक उत्साह पैदा कर सकती हैं। प्रेरणा वातावरण बना सकती हैं। इनमें से हर अवसर को उसमें क्रियान्वित किये जाने वाले कर्मकाण्डों की, श्लोक मन्त्रों की, प्रचलित कारणों की ऐसी विवेचना कर सकती हैं जिसमें उस परिवार की विशेष परिस्थिति के

अनुरूप आलोक एवं परामर्श समन्वित हो। एक-दूसरे के हर्ष शोक में सम्मिलित होने का प्रचलन मानवी सामाजिकता का उपयोगी चिह्न है। जिन परिवारों में महिला शाखाओं की संस्था है, उनमें इस प्रकार के संस्कार-आयोजन समय-समय पर सरलतापूर्वक सम्पन्न होते रह सकते हैं। निर्धारित तिथि पर मुहल्ले-पड़ौस में आमन्त्रण दिया जाय। तीसरे प्रहर का समय रखा जाय।

- (१) २४ बार सामूहिक गायत्री पाठ, (२) गायत्री हवन,
(३) पूर्णाहुति से पूर्व संस्कार का विशेष कृत्य, (४) भजन-कीर्तन,
(५) प्रवचन।

इन पाँच प्रकरणों में सभी संस्कार प्रायः एक जैसी क्रिया-पद्धति से सम्पन्न होते रह सकते हैं। थोड़े से विशेष कृत्य ही हर संस्कार में भिन्न होते हैं। पूर्णाहुति से पूर्व उन्हें करा देने की छोटी-छोटी विधियाँ भी वे महिलाएँ आसानी से करा सकती हैं जो हवन कराने में प्रवीण हैं।

संस्कार परम्परा को घर-घर में प्रचलित, पुनर्जीवित करना है। इसलिए उनका स्वरूप इतना सादा और सस्ता होना चाहिए कि निर्धन स्तर के लोगों को भी मन मसोस कर न बैठना पड़े। गरीबी और अमीरी का प्रदर्शन करने वाली कोई भिन्नता इन आयोजनों में न रहने पाये इसलिए उन्हें न तो आडम्बरपूर्ण बनाना चाहिए और न खर्चीला। शाखा की ओर से ही सारी व्यवस्था की जाय। हवन सामग्री, समिधा, अन्यान्य उपचार उपकरण शाखा की ओर से भेजे जायें। स्वागत के लिए भुनी सौंफ का प्रबन्ध भी शाखा ही करे। एक छटाँक शुद्ध घी का प्रबन्ध भार ही उन पर डाला जाय। जिनके यहाँ यह आयोजन हो आतिथ्य में पानी के अतिरिक्त और किसी के यहाँ कुछ भी स्वीकार न किया जाय। इस प्रकार आयोजन कराने वाले पर घी के अतिरिक्त कुछ भार न पड़ेगा। अन्य खर्च एवं प्रबन्ध शाखा की ओर से किया जाएगा। उसके बदले में शाखा को कोई दान प्राप्त होता हो तो उसमें न आपत्ति की जायगी और न माँग रखी जायगी। इस प्रकार यह आयोजन सदस्यों के घरों पर वर्ष में एकाध बार तो हो ही जाया करें। बड़े परिवारों में तो कई-कई बार भी उनकी बारी इकट्ठे एक ही तिथि में भी किये जा सकते हैं।

वा. ४८/२.१०८

भारतीय समाज में अनेकानेक पर्व त्यौहार हैं। कहते हैं कि उनसे वर्ष का कोई दिन खाली नहीं रखा गया। इन सबको मनाया जाना तो कठिन है पर इनमें से कुछ बहु प्रचलितों को तो प्रेरणाप्रद वातावरण उत्पन्न करने की दृष्टि से परिष्कृत ढंग से मनाया ही जा सकता है।

(१) दीपावली, (२) गीता जयन्ती, (३) बसन्त पंचमी,
 (४) होली, (५) रामनवमी, (६) गायत्री जयन्ती, (७) गुरु पूर्णिमा,
 (८) श्रावणी (रक्षाबंधन), (९) कृष्ण जन्माष्टमी, (१०) विजया दशमी

ये पर्व आमतौर से सर्वत्र प्रचलित हैं। प्रान्त विशेष में शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी, मकर संक्रान्ति, वैशाखी आदि को भी विशेष महत्व मिला हुआ है। स्थानीय मान्यताओं के अनुरूप इनमें से जहाँ जो विशेष उत्साह से मनाये जाते हों उनमें काट-छाँट करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि औसतन हर महीने एक पर्व मन जाया करे। साप्ताहिक सत्संग में मात्र महिलाओं की उपस्थिति होती है। पर्व आयोजनों में स्त्री-पुरुष सभी मिल-जुलकर सम्मिलित हुआ करें। मनाने का ढंग प्रायः वही है जो साप्ताहिक सत्संगों में रखा गया है।

(१) सामूहिक सस्वर, संगीत सहित गायत्री मंत्र पाठ २४ बार,

(२) गायत्री हवन, (३) भजन-कीर्तन, (४) प्रवचन।

संस्कारों में पूर्णाहुति से कुछ पूर्व विशेष कृत्य किये जाते हैं। पर्वों में देव पूजन के समय ही पर्व की अधिष्ठात्री देव सत्ता की सामूहिक पूजा-अर्चा होती है। इसी प्रकार सामाजिक समस्याओं के समाधान एवं सामूहिक प्रगति के उपायों का सुविस्तृत और सामयिक विवेचन पर्वों के इतिहासों एवं प्रयोजनों के साथ तालमेल बिठाते हुए भली प्रकार किया जा सकता है। कर्मकाण्ड भास्कर पुस्तक में यह सभी कर्मकाण्ड पहले से ही प्रकाशित हो चुके हैं। इस संदर्भ में छपी हुई छोटी-छोटी पुस्तकों में विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है। पर्व और संस्कारों के पीछे छिपे उद्देश्यों के सम्बन्ध में उन पद्धतियों में ऐसे श्लोक भी दिये गये हैं जो उनके साथ जुड़े हुए उद्देश्य एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हैं। इन आयोजनों के माध्यम से युग निर्माण योजना के दो उद्देश्यों को जनमानस में उतारने से उत्साहवर्द्धक सफलता मिल सकती है। धर्मश्रद्धा एवं प्रथा परम्पराओं का समन्वय रहने से इन आयोजनों में ऐसी भाव-सम्बेदना जुड़ जाती है जो प्रस्तुत प्रसंग को हृदयंगम कराने में असाधारण रूप से समर्थ-सिद्ध होती है। परिवार निर्माण और समाज निर्माण के सम्बन्ध में इन आयोजनों के माध्यम से लोकमानस को प्रशिक्षित करने में अन्य उपायों की तुलना में अधिक सरलता रहती है।

तीसरा प्रयोजन है व्यक्ति निर्माण। इसके लिए हर मनुष्य को आत्म निरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म निर्माण एवं आत्म विकास के लिए कुछ महत्वपूर्ण सोचने और करने के लिए स्वयं साहस जुटाना चाहिए। अपनी मनःस्थिति और

परिस्थितियों पर गम्भीर दृष्टिपात करके अवगति के कारणों को ढूँढ़ निकालना और उन्हें निरस्त करने के लिए आत्म सुधार के लिए उपाय सोचना एवं तत्पर होना मनन कहलाता है। मनन में आत्मशोधन होता है और वे छिद्र बन्द होते हैं, जो पिछड़ेपन के लिए, दुर्गति के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी हैं। मनन का दूसरा साथी है चिन्तन। चिन्तन का अर्थ है भावी प्रगति के सम्बन्ध में विचार करना, योजना बनाना और उसके सम्बन्ध में जिन विशेषताओं का सम्पादन आवश्यक है उनका उपार्जन करने के लिए सुनियोजित रीति से कटिबद्ध होना। मनन में भूल पर दृष्टि रखते हुए और चिन्तन में भविष्य पर विचार करते हुए वर्तमान का निर्धारण करने का उद्देश्य है। एक में निराकरण है, दूसरे में सम्बर्द्धन। दोनों को मिलाकर ही एक पूरी बात बनती है।

प्रगति की आवश्यकता अनुभव करने वाले हर व्यक्ति को आत्मपरिष्कार के लिए, व्यक्तित्व को प्रखर बनाने के लिए उपरोक्त छहों उपायों का अवलम्बन करना चाहिए। आत्म-निरीक्षण, आत्म सुधार, आत्म निर्माण और आत्म विकास के लिए मनन, चिन्तन की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए और इस आत्म चिन्तन के लिए गुरुवार को प्रातःकाल का समय विशेष रूप से निर्धारित करना चाहिए। उस दिन सभी नैष्ठिक साधकों को दो घण्टे का मौन, अस्वाद व्रत एवं ब्रह्मचर्य का त्रिविध व्रत पालन करना पड़ता है। सर्वसाधारण को इस आत्म चिन्तन के लिए गुरुवार का अथवा कोई अन्य सुविधा का दिन निर्धारित करके दो घण्टे सर्वथा एकांत में बैठकर अपने आप से बात करनी चाहिए, अपने ही द्वारा अपने को सुधारा और बढ़ाया जा सकता है। आत्मनिर्माण की यह प्रक्रिया हर दिन प्रातः उठते और रात को सोते समय आत्मबोध, तत्त्वबोध साधना के अन्तर्गत जारी रखी जा सकती है। इतना न बन पड़े तो कम से कम सप्ताह में एक दिन तो आत्मसाधना का यह उपाय-उपचार अपनाया ही जाना चाहिए।

शाखाओं का एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह संगठन खड़े करें, सदस्यों की संख्या बढ़ायें, साप्ताहिक आयोजनों को प्रेरणाप्रद बनायें तथा संस्कार-पर्व और जन्म दिवसोत्सवों का सुनियोजित कार्यक्रम बनायें और उन्हें अधिकाधिक प्रभावी सफल बनाने के लिए तत्परता पूर्वक प्रयत्न करें। यह प्रयत्नशीलता जहाँ जितने उत्साह से चलेगी वहाँ नवनिर्माण की आधारशिला उतनी ही सुदृढ़ होती चलेगी।

वा. ४८/२.१०९

सृजन की सत्प्रवृत्तियों का अगला चरण

परिवार निर्माण का शुभारम्भ, श्रीगणेश घरों में धार्मिक वातावरण बनाने और उसके लिए सामूहिक उत्साह उत्पन्न करने के लिए स्थान-स्थान पर संगठन खड़े किये गये हैं। इतने व्यापक, भारी और महत्वपूर्ण कार्य को संगठित प्रयत्नों से ही सम्पन्न किया जा सकता है। इसलिए हर संगठन को सफल बनाने, महिला सत्संग चलाने और उनमें अधिक उपस्थिति का प्रयत्न करने के लिए कहा गया है। परिवार निर्माण में सहयोग तो पुरुषों का भी चाहिए, पर उसका नेतृत्व उसी क्षेत्र की अधिष्ठात्री गृहलक्ष्मी जाग्रत महिला ही कर सकती है। इसलिए यह महाक्रान्ति की लाल मशाल उसी के हाथ में थमाई गई है और नवयुग का तुमुल शंखनाद करने की जिम्मेदारी भी उसी पर लादी गई है। आरम्भ में क्या करना होगा, इसका संक्षिप्त कार्यक्रम सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया जा चुका है।

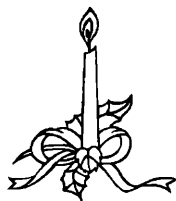
बलिवैश्व की पाँच आहुतियों को प्रतीक मानकर पारिवारिक पंचशीलों को चिन्तन एवं व्यवहार में उतारने के लिए कहा गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए भावनात्मक, चारित्रिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में पालन करने योग्य पाँच पंचशील अनुबन्ध अनुशासन हैं। उनका पालन करना मानवी कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का अंग है। इन्हें न केवल विचारणा में प्रमुख रखा जाय वरन् व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए भी सामर्थ्य भर प्रयत्न किया जाय। इस धर्मधारणा को निरन्तर स्मरण रखने और उसके प्रति प्रगाढ़ आस्था व्यक्त करने के लिए बलिवैश्व की पाँच आहुतियाँ देने की परम्परा है। इसे वैयक्तिक जीवन में सामाजिक उत्तरदायित्वों की साझेदारी का प्रतीक भी समझा जा सकता है। घर में धार्मिक वातावरण बनाये रखने के लिए नित्य नमन, वन्दन, आरती, कथा-कीर्तन की परम्परायें बनाने चलाने के लिए कहा गया है। समय-समय पर भावनात्मक वातावरण में परिवार गोष्ठियों के उपक्रम प्राचीनकाल में जन्मदिनों और संस्कारों के नाम पर चलते थे। वह पद्धति बहुत ही प्रेरक और प्रभावोत्पादक है। सत्प्रवृत्तियाँ उभारने के लिए उनका पुनर्जागरण किया जाना चाहिए। इसी प्रकार गाँव-मुहल्ले की धर्म गोष्ठियाँ पर्व-त्यौहारों के उल्लास भरे अवसरों पर करते रहने से सद्भाव सम्बर्द्धन के लिए सामूहिक उत्साह उभारने की दृष्टि से बहुत महत्व रखती हैं।

समय-समय पर बड़े आयोजन गायत्री यज्ञों और युग निर्माण सम्मेलनों के आधार पर किये जाते रहें। तीर्थ-यात्रा के लिए धर्म प्रचारकों की मण्डलियाँ निकलती रहें, परिव्राजकों की टोलियाँ नव जागरण की चेतना उत्पन्न करने के लिए घर-घर पहुँचें और जन-जन से सम्पर्क साधें। यह सभी कार्यक्रम ऐसे हैं जो व्यक्ति और समाज को उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करने, परिवारों में शालीनता उत्पन्न करने की दृष्टि से अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। वा. ४८/२.११५

आत्मविकास का मोटा-सा अर्थ है 'अपनत्व की भावना का विस्तार कर, संकीर्णता-स्वार्थपरता का भाव दूर करना, जिससे कि यह भावना व्यापक बन सके।' परिवार इसमें सहायक होता है। परिवार वह उद्यान है, जहाँ छोटे-बड़े, कँटीले-कोमल, सुरभित-गन्धविहीन, सभी प्रकार के पुष्प-पौधे लगे होते हैं और उन सबकी समग्र सत्ता ही उद्यान को एक इकाई बनाती है। उस उद्यान की शोभा-सुषमा इसी में होती है कि उसके सभी पौधे सुरक्षित रहें, उन्हें कोई काटे-उखाड़े नहीं।

सहयोग-संवेदना, आत्मीयता-स्नेह की यह प्रक्रिया, जो संयुक्त परिवार की आधारभूत प्रेरणा है, आज उसकी भी आवश्यकता है। यदि उसे समझा और अपनाया जाय, तो हमारे विकास की नयी सम्भावनाएँ सामने आती चली जायेंगी।

वा. ४८/३.१९



पता-

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
शान्तिकुंज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

फोन- 91-01334-260602, 261955 फैक्स-01334-260866

Website: www.awgp.org E-mail: shantikunj@awgp.org